आधुनिक हिन्दी काव्य

(Modern Hindi Poetry)

जागृति सिंह

आधुनिक हिन्दी काव्य

आधुनिक हिन्दी काव्य
(Modern Hindi Poetry)

जागृति सिंह

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5612-7

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

नवजागरण काव्य आधुनिक हिन्दी काव्य का शुरुआती दौर था, जिसके प्रमुख कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और मैथिलीशरण गुप्त थे। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा का काल छायावादी काव्य का काल रहा, जबकि राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के प्रमुख कवि रामधारी सिंह दिनकर छायावादोत्तर काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। नागार्जुन, गजानन माधव मुक्तिबोध और सुदामा प्रसाद पाण्डेय 'धूमिल' को हिन्दी कविता के प्रगतिशील काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय तथा श्रीकांत वर्मा का दौर नयी कविता का दौर रहा।

भारतेन्दु युग से पहले हिन्दी की जिस कविता से हमारा परिचय होता है, उसे रीति काव्य के नाम से जाना जाता है। इस युग का काव्य अपने स्वरूप और संरचना की दृष्टि से रुढ़िबद्ध, श्रृंगारपरक और सामंत वर्ग का अनुरंजन (दिल-बहलाव) करने वाला काव्य था। इस काल की कविताओं का सृजन, अधिकांशतः दरबारियों, राजाओं और मनसबदारों की चाटुकारिता, स्तुति गायन और उन्हें प्रसन्न करने के लिए वीरता की झूठी प्रशंसा हेतु किया गया। काव्य का सृजन हंसाने, चमत्कृत करने और उनकी रंगरेलियों को और अधिक मधुर बनाने के लिए काव्य के परंपरागत लक्षणों के आधार पर होता रहा। समाज के व्यापक भावबोध से ये कविताएं कटी हुयी थीं। सीधे शब्दों में कहें तो साहित्य का संबंध समाज से नहीं था। इसलिए इनका ऐतिहासिक महत्त्व भले हो, किंतु इनमें सामाजिक और सांस्कृतिक चिंताओं के न होने से इनका महत्त्व कम हो जाता है। हालांकि भक्ति, वीर और नीति काव्य की

रचनाएं भी इस दौर में हुई, पर मुख्य धारा रीति बद्धता की रही।

आधुनिक हिन्दी कविता का आरंभ 19वीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ था। यह वह समय था, जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सक्रिय थे। इस समय बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब में सामाजिक-सांस्कृतिक सुधार आन्दोलन की गूंज चारों दिशाओं में फैल रही थी। इस समय धर्म-समाज सुधारक आन्दोलन की गतिविधियों से हिन्दी साहित्य भी काफी प्रभावित हुआ। कविताओं के माध्यम से नवजागरण, यानी फिर से सजग होने की अवस्था या भाव, की अभिव्यक्ति हुई। भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की रचनाएं नवजागरण का स्रोत और माध्यम रही हैं। यह युग हिन्दी के मध्यकाल से सर्वथा भिन्न था और आधुनिक युग के रूप में अपनी नयी पहचान बना सका। हिन्दी की आधुनिक कविता की प्रक्रिया इसी युग से शुरू होती है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है, मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**विषय बोध**	**1**
	भारतेंदु युग	2
	द्विवेदी युग	3
	छायावाद	4
	प्रगतिवादी कविता	6
	प्रयोगवाद और नई कविता	7
	साठोत्तरी कविता	8
	दलित एवं आदिवासी कविता	9
	समकालीन कविता	10
	आधुनिक हिंदी कविता और स्त्री-विमर्श	11
2.	**भारतेंदु युग**	**14**
	भारतेन्दु हरिश्चंद्र का योगदान	15
	भारतेंदु युग के काव्य की प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ)	15
	पंडित प्रताप नारायण मिश्र	22
	साहित्यिक विशेषताएं	23
	लाला श्रीनिवास दास	27
	पंडित रविदत्त शुक्ल	31

काशी नागरी प्रचारिणी सभा 32
3. द्विवेदी युग 34
नामकरण 39
द्विवेदीजी का योगदान 40
पौराणिक पात्रों को लेकर लिखे गए नाटक 41
रोमांचकारी नाटक 42
युग निर्माता साहित्यकार और प्रेरक व्यक्तित्त्व 46
नवजागरण के सजग पुरोधा 47
कविता के नवीन वर्ण्य-विषय 50
'सरस्वती' के सम्पादक 52
सर्वाधिक प्रसिद्धि 56
प्रियप्रवास 57
खड़ी बोली काव्य-रचना 59
जीवन परिचय 61
गद्य रचनाएँ 65
गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' 66
साहित्यिक परिचय 67
साहित्यिक विशेषताएँ 68
भाषा-शैली 69
साहित्य साधना की शुरुआत 71
प्रकृति चित्रण 73
कृतियाँ 73
मैथिलीशरण गुप्त 75
महाकाव्य 77
भारत-भारती 78
अतीत-खंड 78
राष्ट्रकवि 80
पतिवियुक्ता नारी का वर्णन 83
पुरस्कार व सम्मान 90
साहित्यिक कृतित्त्व 91

4. छायावाद **96**
छायावाद का स्वरूप 97
विभिन्न आलोचकों की दृष्टि में छायावाद 98
ब्रज भाषा का काव्य 100
समाज का अन्तर्विरोध 102
मुख्य कवि और उनकी रचनाएँ 104
प्रकाशन 109
सुमित्रानंदन पंत 109
जीवन परिचय 110
प्रारम्भिक जीवन 110
साहित्यिक परिचय 111
काव्य एवं साहित्य की साधना 112
युग प्रवर्तक कवि 112
प्रकृति-प्रेमी कवि 115
शिक्षा 116
प्रमुख कृतियाँ 121
कृतियाँ 126
काव्य संग्रह 128
सम्मान और पुरस्कार 128
छायावाद– काव्य शक्ति एवं शक्ति काव्य 129
छायावाद युगीन अन्य काव्यधाराएँ 136
ब्रजभाषा-काव्य 138
गद्य-साहित्य 139
प्रेम और मस्ती का काव्य 145
छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ 146
5. प्रगतिवादी कविता **158**
प्रगतिवादी कवि और उनकी रचनाएं 162
प्रगतिवादी कवि नागार्जुन की जन प्रतिबद्धता 164
6. प्रयोगवाद एवं नई कविता **175**
प्रयोगवाद व नई कविता के कवि और उनकी रचनाएं 179
छिनाल मौसम की मुर्दार गुटरगूं 191

7. साठोत्तरी कविता **194**
साठोत्तरी कविता की नयी कविता से भिन्नता 194
प्रभाव एवं प्रकृति 195
आन्दोलनों का बाहुल्य 197
प्रमुख आन्दोलनों का परिचय 198
सनातन सूर्योदयी कविता 199
युयुत्सावादी कविता 199
अस्वीकृत कविता 200
साठोत्तरी युवालेखन 207

1

विषय बोध

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर समकालीन कविता तक की विकास यात्रा विभिन्न चरणों से गुजरी है। नवजागरण, छायावदी, छायावादोत्तर, प्रगतिशील, नयी कविता के दौर से गुजरते हुए हिन्दी कविता ने परिपक्वता की कई मंजिलें तय की हैं। हर युग, हिन्दी कविता के बदलते मिजाज, सम्प्रेषण की नयी-नयी विधियां, भाव-भाषा-संरचना के नये-नये प्रयोग के साथ, अपनी विशिष्ट पहचान और लक्षणों को लिए थे।

नवजागरण काव्य आधुनिक हिन्दी काव्य का शुरुआती दौर था, जिसके प्रमुख कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और मैथिलीशरण गुप्त थे। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा का काल छायावादी काव्य का काल रहा जबकि राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के प्रमुख कवि रामधारी सिंह दिनकर छायावादोत्तर काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। नागार्जुन, गजानन माधव मुक्तिबोध और सुदामा प्रसाद पाण्डेय 'धूमिल' को हिन्दी कविता के प्रगतिशील काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय तथा श्रीकांत वर्मा का दौर नयी कविता का दौर रहा।

भारतेन्दु युग से पहले हिन्दी की जिस कविता से हमारा परिचय होता है, उसे रीति काव्य के नाम से जाना जाता है। इस युग का काव्य अपने स्वरूप और संरचना की दृष्टि से रुढ़िबद्ध, श्रृंगारपरक और सामंत वर्ग का अनुरंजन (दिल-बहलाव) करने वाला काव्य था। इस काल की कविताओं का सृजन, अधिकांशतः दरबारियों, राजाओं और मनसबदारों की चाटुकारिता, स्तुति गायन और उन्हें प्रसन्न करने के लिए

वीरता की झूठी प्रशंसा हेतु किया गया। काव्य का सृजन हंसाने, चमत्कृत करने और उनकी रंगरेलियों को और अधिक मधुर बनाने के लिए काव्य के परंपरागत लक्षणों के आधार पर होता रहा। समाज के व्यापक भावबोध से ये कविताएं कटी हुयी थीं। सीधे शब्दों में कहें तो साहित्य का संबंध समाज से नहीं था। इसलिए इनका ऐतिहासिक महत्त्व भले हो, किंतु इनमें सामाजिक और सांस्कृतिक चिंताओं के न होने से इनका महत्त्व कम जाता है। हालाकि भक्ति, वीर और नीति काव्य की रचनाएं भी इस दौर में हुई, पर मुख्य धारा रीति बद्धता की रही।

आधुनिक हिन्दी कविता का आरंभ 19वीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ था। यह वह समय था जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सक्रिय थे। इस समय बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब में सामाजिक-सांस्कृतिक सुधार आन्दोलन की गूंज चारों दिशाओं में फैल रही थी। इस समय धर्म-समाज सुधारक आन्दोलन की गतिविधियों से हिन्दी साहित्य भी काफी प्रभावित हुआ। कविताओं के माध्यम से नवजागरण यानी फिर से सजग होने की अवस्था या भाव, की अभिव्यक्ति हुई। भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की रचनाएं नवजागरण का स्रोत और माध्यम रही हैं। यह युग हिन्दी के मध्य से सर्वथा भिन्न था और आधुनिक युग के रूप में अपनी नयी पहचान बना सका। हिन्दी की आधुनिक कविता की प्रक्रिया इसी युग से शुरू होती है।

इस युग की कविताओं में भारतीय नवजागरण के प्रमुख तत्त्व-प्राचीन संस्कृति पर निर्भरता, ईश्वर की जगह मानव केन्द्रीयता और जातीय राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी खड़ी बोली की स्वीकृति, मिलती है। नवजागरण की दृष्टि से यह युग नवजागरण का काल था। इस काल में नये-पुराने के बीच संघर्ष की स्थिति थी। जहां एक ओर प्राचीन के प्रति बरकरार मोह और नये का तिरस्कार था, वहीं दूसरी ओर नये के प्रति आकर्षण और पुराने के तिरस्कार वाली स्थिति भी थी।

इस युग का हिन्दी साहित्य में काफी महत्त्व रहा है। भारतेन्दु और द्विवेदी युग प्रकारान्तर से हिन्दी खड़ी बोली के काव्य भाषा में विकसित होने का युग रहा है। यह रास्ता आसान नहीं रहा। ब्रजभाषा के स्थान पर हिन्दी खड़ी बोली को काव्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराने में काफी संघर्ष का सामना करना पड़ा।

भारतेंदु युग

"भारतेंदुयुगीन कवियों का काव्यफलक अत्यंत विस्तृत है। उनकी रचना-प्रवृत्तियाँ एक ओर भक्तिकाल और रितिकाल से अनुबंद्ध है तो दूसरी ओर समकालीन परिवेश के प्रति जागरूकता का भी उनमें अभाव नहीं है।" इस प्रकार

हिंदी कविता के विकास के 1850 से 1900 ई. तक के प्रथम चरण को सामान्यत भारतेंदु युग कहा जाता है, और इस युग में हिंदी कविता में कई प्रकार की राष्ट्रियता से ओतप्रोत कविताएँ आने का गुणगान होने लगा था। यथा–

"भीतर-भीतर सब रस चुसे, हँसि- हँसि के तन-मन-धन मूसैद्य
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि सज्जन! नहिं अंगरेज॥"

इस प्रकार यह देखा जाता हैं कि इस उथल-पुथल से ही साहित्य में संक्रमण का दौर भी शुरू होता है क्योंकि काव्य की भाषा जो ब्रज थी एवं उसकी विषय वस्तु, भाव-भंगिमा और शैली आदि सब में धीरे-धीरे नये इतिहास बोध और राजनीतिक चेतना के साथ-साथ खड़ी बोली अपनाई जाने लगती है। भारतेंदु के दौर की कवि सक्रियता मुख्यत: तीन प्रकार की थी, सेवक, सरदार और हनुमान। आगे हम बढ़ते हैं तो सायास ही अनुभव कर सकते हैं कि यह संक्रमण का दौर था एवं कवियों की विषयवस्तु में पर्याप्त वैविध्य था, कवि रुचि के पारंपरिक विषयों के साथ-साथ लोक प्रचलित अभिव्यक्तियों का प्रयोग भी करते थे जैसे होली, कजली तीज, बारहमासा, लावनी आदि का प्राद्रूभवि हो गया यहाँ हम प्रतापनारायण मिश्र की उक्त पंक्तियों में इस भावबोध के रूप में देख सकते हैं–

"यह जिय धरकत यह न होई कहु कोउ सुनि लेई।
कछू दोष दै मारहि अरु रोवन नहिं देई॥"

इस प्रकार की परिस्थितियाँ अंग्रेजी राज में नव जागरण के लिए उत्पन्न की गई थी। एक प्रकार से आधुनिक कविता अपने पैरों पर खड़ा होने का प्रयास करने लगती हैं तभी तो अयौध्यासिंह उपाध्याय हरिओध द्विवेदी अपनी कविता में कहते हैं कि –

"मेरे प्यारे नव जलद से कंज से नेत्रवाले।
जाके आये न मधुवन से औ न भेजा संदेसा।
मैं रो-रो के प्रिय-विरह से बावली हो रही हूँ।
जा के मेरी सब दुख-कथा श्याम को तू सुना दे॥"

द्विवेदी के प्रिय प्रवास जिसको कि हिंदी खड़ी बोली का प्रथम खण्ड काव्य कहा जाता है। जिसमें हिंदी कविता का प्रार्दुभाव बड़े आगाज के साथ होता है।

द्विवेदी युग

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जब महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी के विकास और संस्कार-परिष्कार के काम की बागडोर संभाली तो हिंदी अपने पाँवों

पर खड़ी हो चुकी थी। इस युग में हिंदी कविता का कवि कर्म खड़ी बोली हिंदी में शुरू हो गया था। फिर भी कवि समुदाय में इस कवि कर्म को लेकर दुविधा एवं संकोच था। 1903 में जब द्विवेदी जी 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक बने तो उन्होंने हिंदी कविता को यथोचित स्थान दिया। हिंदी का मानक रूप तय किया एवं कवियों को दकियानूसी छोड़कर नयी बात पकड़ने का परामर्श दिया। साथ ही साथ उन्होंने कविता को केवल मनोरंजन ही नहीं अपितु उपदेशजनक बनाने की तरफ ध्यान आकृष्ट किया तभी तो कहा भी गया हैं कि–

"केवल मनोरंजन न कवि का काम होना चाहिए,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

इसलिए अब कविताएँ उपदेशात्मक होनी चाहिए क्योकि यमुना किनारे के कौतुहल का वर्णन बहुत हो चुका था। समाज और विमर्श के उस समय में समाज सुधार और राष्ट्रीय भावना का वर्चस्व था इसलिए द्विवेदी काल में यह सब उस समय के कवियों के मुख्य सरोकार और प्रेरणास्रोत बने तभी दलित समाज के प्रति हो रहे अन्याय के प्रति विद्रोह हरिओध की इन पंक्तियों में देख सकते है–

"आप आँखें खोलकर के देखिए,
आज जितनी जातियाँ हैं सिर-धरी।
पेट में उनके पड़ीं दिखलायेंगी,
जातियाँ कितनी सिसकती या मरी॥"

देखा जाता हैं कि इस युग का मूल्यांकन करते हुए लिखा भी गया हैं कि "समग्रत द्विवेदी युगीन काव्य सांस्कृतिक पुनरुत्थान, उदार राष्ट्रीयता, जागरण-सुधार एवं उच्चादर्शों का काव्य है।" इस प्रकार यह कहा जा सकता हैं कि द्विवेदी काल हिंदी कविता के आधुनिक भावबोध की दृष्टि से समृद्धि की ओर था।

छायावाद

मुकुटधर पाण्डेय अपने 'छायावाद क्या है' आलेख में छायावाद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि " 'छायावाद' एक ऐसी मायामय सूक्ष्म वस्तु हैं कि शब्दों द्वारा उसका ठीक वर्णन करना असम्भव है। उसका एक मोटा लक्षण यह हैं कि उसमें शब्द और अर्थ का सामंजस्य बहुत कम रहता है। कहीं-कहीं तो इन दोनों का परस्पर कुछ भी संबंध नहीं रहता। लिखा कुछ और ही गया है, पर मतलब उसका कुछ और ही निकलता है। किन्तु पाठक इस शब्द अर्थ के विरोध को देख अलंकार-शास्त्र के रूपक अथवा व्यंग्य का विभ्रम न होने दे।"

इस प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके शिष्य कवियों के प्रयत्नों का सुफल यह हुआ कि खड़ी बोली में कविता संभव करने का सामर्थ्य आ गया। अब यह भावों के विस्तार और बारीकियों को व्यक्त कर सकती थी। इसलिए हिंदी कविता का महत्वपूर्ण दौर को हम छायावाद कह सकते हैं। धीरे-धीरे जब छायावाद की मायामय वस्तु वाली संज्ञा प्रचलन में आयी तो विद्वानों ने इसे अलग-अलग तरह से व्याख्यायित किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे बंगाल के ब्रह्म-समाजियों के छायापदों और टैगोर की रहस्यानुभूतियों का एक प्रकार से नवरूपांतरण मानते हुए अन्योक्ति परक शब्द-प्रयोग का प्रश्रय देने वाली काव्य शैली घोषित कर दिया। इस युग में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता का विकास हुआ। तभी तो माखनलाल चतुर्वेदी अपनी अनुभूति प्रकट करते हुए कहते हैं कि –

"क्या देख न सकती जंजीरों का गहना।
हथ कड़ियाँ क्यों? यह ब्रिटिश राज्य का गहना।
कोल्हू का चर्रक चूं? जीवन की तान।
मिट्टी पर लिखे अंगुलियों ने क्या गान?
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जुआ।
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुआ।।"

छायावाद की व्यापक संज्ञा के अंतर्गत होने के बावजूद छायावादी कवियों की भावभूमि और सरोकार बहुत अलग-अलग थे। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने शुरुआत तो श्रृंगार और प्रकृति से किया लेकिन आगे चलकर आत्मसंघर्ष उनकी कविता में खासकर उनकी प्रबंध रचनाओं में सर्वोपरि रहा। छायावादी कवियों की रचनाएँ गीतों के रूप में ही अधिक होती हैं। जयशंकर प्रसाद की कविता में पुनरुत्थान की चेतना सर्वाधिक मुखर है यथा –

"शशिदृमुख पर घूँघट डाले,
अंचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल- से तुम आये।।"

यहाँ पर उन्होंने अपनी संस्कृति को अन्य संस्कृतियों के घात-प्रतिघात के बीच को पुन:आविष्कृत करने की कोशिश की है। तभी तो वे आगे फिर कहते हैं कि–

"वह रूप रूप ही केवल
या रहा हृदय भी उसमें,

जड़ता की सब माया थी,
चैतन्य समझ कर मुझमें।
विकसित सरसिज वन-वैभव
मधु-उषा के अंचल में,
उपहास करावे अपना
जो हँसी देख ले पल में॥"

इस तरह जयशंकर प्रसाद की आँसू तक पहुँचते-पहुँचते कविता का भावबोध बहुत कुछ सीधे-सीधे बयां होने लगता है। इसी कड़ी में हम सुमित्रानंदन पन्त को लेते हुए कह सकते हैं कि वो अपने असाधारण प्रकृति प्रेम, चित्रण और शिल्प कौशल के कारण विख्यात हुए। यथा –

"शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर,
विरह, अहह कराहते इस शब्द को।
किस कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोक से,
निठुर विधि ने अश्रुओं से लिखा है।"

हाँ आगे चलकर ये वर्गभावना से प्रेरित हुए और अंतिम समय में अरविंद दर्शन से प्रभावित होकर नव अध्यात्म की और मुड़ गए। इस प्रकार छायावाद एक व्यापक संज्ञा और परिधि वाला आन्दोलन था लेकिन इसके भीतर और इसके तत्काल बाद कुछ अलग पहचान रखने वाली काव्य प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान थीं। छायावादी कविता में प्रेम का जो अलौकिक और वायु समान रूप था उसमें लौकिक प्रेम के लिए जगह नहीं के बराबर थी।

प्रगतिवादी कविता

छायावादी काव्य आन्दोलन अपनी अपूर्व सौंदर्य चेतना, सूक्ष्म प्रकृति-पर्यवेक्षण और अभिनव अभिव्यक्ति-ऐश्वर्य के लिए विख्यात हुआ। बीसवीं सदी के तीसरे दशक में हिंदी कविता फिर सक्रिय हुई। इस नयी सक्रियता को ही हम प्रगतिवाद कह सकते हैं। इसे छायावाद की प्रतिक्रिया न मानकर उसके आर्विभाव में बदली हुई वैश्विक भारतीय परिस्थितियों की भूमिका के रूप में देखना चाहिए। वामपंथी विचार रखने वाले लेखकों ने प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की जिसका पहला अधिवेशन 1936 ई. में प्रेमचंद की अध्यक्षता में हुआ। इसलिए हम देखते हैं कि केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविता प्रगतिवाद के कायाकल्प की वाहक बनती है। इस युग के कवियों ने छायावाद की संकीर्ण

व्यक्तिचेतना प्रधान कविताओं की जगह सामाजिक जीवन की कविताएँ लिखीं। इन्होंने अपने समय के विवेक और यथार्थ को खास महत्व दिया। एक देहाती मास्टर दुखरन, और उसके शिष्यों व मदरसे की तस्वीर नागार्जुन इस प्रकार खींचे हैं एक बानगी देखिये–

"घुन खाए शहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बाँचे,
फटी भीत है, छत है चूती, आले पर बिस्तुइया नाचे,
लगा-लगा बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पांच तमाचे,
इसी तरह से दुखरन मास्टर गड़ता है आदम से साँचे।"

इस प्रकार यह जोर देकर कह सकते हैं कि इस युग के कवियों के पास अपने यथार्थ को समझने की स्पष्ट वर्गसचेतन जीवन दृष्टि थी। इन कवियों को अपने परिवेश, लोक, प्रकृति और लोक जीवन से गहरा लगाव था। इस युग के कवियों को आशावादी कवि कहा जाना चाहिए क्योंकि इनका जीवन और भविष्य में विश्वास था। इनकी भाषा जीवन की हलचल से लि गई और वह उससे ही बनी थी। इस युग के कवियों में वास्तव में जीवन का ताप और गंध रची बसी हुई थी।

प्रयोगवाद और नई कविता

प्रगतिवादी काव्य आंदोलन के विकास के मंद पड़कर अन्तर्वती हो जाने के बाद प्रयोगवाद और नई कविता का आविर्भाव हुआ। नयी कविता को प्रयोगवाद का ही एक विकसित रूप माना जाना चाहिए लेकिन परिस्थितियाँ ही कुछ इस प्रकार की बनीं कि दोनों को अलग-अलग नाम से जाना जाने लगा। इसलिए नई कविता या प्रयोगवाद की वास्तविक शुरुआत हम अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' (1943 ई.)से मान सकते हैं। इस सप्तक में अज्ञेय सहित मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नेमीचंद जैन, रामबिलास शर्मा और प्रभाकर माचवे की कविताएं शामिल थीं। इस युग के कवियों ने विषयवस्तु की अपेक्षा शिल्प को ज्यादा महत्त्व दिया। नयी कविता एक प्रकार से प्रयोगवाद का विकसित रूप थी। अज्ञेय कहते हैं कि "हम प्रयोगशील प्रगतिशील आदि नहीं कहना चाहते, इसी से कहते है नयी कविता क्योंकि प्रगतिवाद राजनीतिक बिल्ला है और प्रयोगवाद आक्षेप ज्ञेय। नयी कविता नयी मनःस्थिति का प्रतिबिंब है, एक नये मूड का एक नये रागात्मक संबंध का। नयी कविता की मूल विशेषता है मानव और मानव जाति का नया संबंध। यह मानव-जाति

और सृष्टि के संबंध के परिपार्श्व में।" दरअसल यह शीतयुद्धयुगीन पश्चिमी विचारधाराओं के प्रभाव और प्रेरणा से उत्पन्न आन्दोलन था। तभी तो अज्ञेय का यह कथन स्पष्ट बयान कर रहा उस समय की स्थिति को कि "अपने अन्वेषण, चिंतन, मनन, अध्ययन और अनवरत नये प्रयोगों के द्वारा कविता को अंतर्वस्तु और शिल्प दोनों ही स्तरों पर समृद्ध करके उसे मनुष्य की सहज वृत्तियो से जोड़ने का सार्थक प्रयास किया। स्वतन्त्रचेता और सतत जागरुक कवि अज्ञेय ने पश्चिमी विचारधाराओं और आंदोलनों को यथेष्ट समर्थन देते हुए उनका अंध समर्थन नहीं किया।"

साठोत्तरी कविता

नयी कविता के विकास के साथ-साथ कुछ ऐसी भाषा रूपी शिल्प-रूढ़ियों का प्रचलन हुआ जो नई कविता के इस बने बनाये प्रारूप के लिए तो ठीक था लेकिन उसका स्वरूप बदले बिना वस्तुस्थितिक द्वंद्व को व्यक्त करना असम्भव प्रतीत होने लगा था। एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि प्रयोगवाद और नई कविता सातवें दशक तक तो अपनी व्यक्तिवादिता और जड़ीभूत सौंदर्य की अभिरुचि की चरम पर थी लेकिन कुछ कवि प्रतिमाएँ इसे व्यर्थ एवं अप्रासंगिक बताते हुए कविता को सीधे अपने समय विशेष की अराजक और विक्षिप्त मनोदशा पर एकाग्र करती हुई प्रतीत हो रही थीं और यहीं से साठोत्तरी हिंदी कविता का उभार तत्कालीन विषम भारतीय परिदृश्य के नये उभार रूप में देखने को मिलता है। स्वतंत्रता के कुछ समय बाद ही हम देखते हैं कि सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भयावह विषमताएँ दृष्टिगत होने लगीं, जिनके बीज हमारे स्वाधीनता आंदोलन में पहले से ही मौजूद थे। स्वतंत्रता के बाद सदियों पुराने जर्जर और निष्प्राण सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन अपेक्षित था क्योंकि मूल्यहीन शिक्षा एवं जातिप्रथा, सांप्रदायिकता, छुआछूत और दहेज जैसी कुप्रथाओ ने दलगत और मूल्यहीन राजनीति को पुनर्जीवन दे दिया, सितम्बर 1914 में सरस्वती में पटना के हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' जो कि मूलत: भोजपुरी में है प्रकाश में आती है यथा –

"हमनी के राती दिन दुखवा भोगत बानी,
हमनी के सहेबे से मिनती सुनाइबि।
हमनी के दु:ख भगवनओ न देखताजे,
हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।

पदरी सहेब के कचहरी में जाइबिजा,
बेधरम होके रंगरेज बनि जाइबि।
हाय राम! धरम न छोड़त बनत बाजे,
बेधरम होके कैसे मुहवा देखाइबि॥"

इस प्रकार कहा जा सकता हैं कि आधुनिक कविता में हम जब समकालीन कविता की ओर देखें तो हमें यह सायास ही आभास होता हैं कि साठोत्तरी कविता का उभार कुछ और पार्थक्य के साथ भाव देता है व आगे बढ़ने पर सातवें दशक में कुछ और कविता का विच्छेद तीव्र चेतना के साथ होते हुए अल्पजीवी कुकुरमुत्ता काव्य प्रवृत्तियों के आंदोलन को लेकर सामने आता है।

दलित एवं आदिवासी कविता

जब हम आधुनिक पर बात करते हैं तो दलित कविता का आगाज वैसे तो 1914 में हीरा डोम की इस अछूत से ही माना जाता है, जिसमें उनका प्रतिरोध मुख्यधारा के समाज द्वारा जो सामाजिक वितृष्णा उनके साथ बरतता है उसके प्रति है, लेकिन आदिवासी कविता अपना कुछ अलग ही रुख लेकर अपना पक्ष रखती है अर्थात आदिवासी कविता में अपने विषय के साथ स्वाभाविक प्रतिक्रिया की संभावना रहती है। आदिवासी प्रकृति के सान्निध्य में बेहद खुश रहते हैं। प्रकृति के सान्निध्य में ही उसे अकृत्रिम स्वतंत्रता का अनुभव होता है अत: उनका नजरिया भी अप्रतिम होता है, जैसे–

"बामणों में पैदा होगे,
लिख-लिख मरोगे।
मारवाड़ी होगे,
तोल-तोल मरोगे।
चमार होगे,
जूता घिस-घिस मरोगे।
पर होगे वारली,
तो जंगल के राजा बनोगे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिवासी प्रकृति की गोद में नाचता रहता है तो उसकी कविता भी ऐसी ही होगी और आचार्य शुक्ल ने तो कहा भी है कि 'साहित्य युग एवं प्रवृत्तियों के अनुसार बदलता रहता है'। उसी प्रकार यहाँ आधुनिक कविता में भावबोध समकालीन कविता में एक तरह से कविता और

वस्तु जगत के संबंधो में असाधारण घनिष्ठता को दर्शाता है कवि वस्तु जगत पर पहले की तरह टिप्पणी ही नहीं करता है वरन वह (कवि) उसका हिस्सा होकर उसकी अंत:प्रक्रिया के बीच अपनी स्थिति और सक्रियता को भी पहचानता है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि सदियों से आततायी और अन्यायी शक्तियों द्वारा शोषित उत्पीड़ित और आधारभूत सुविधाओं से वंचित आम आदमी इस समकालीन कविता का केंद्रीय सरोकार है क्योंकि एक तरफ हीरा डोम अपनी शिकायत 'अछूत की शिकायत' कविता के माध्यम से दर्ज कराते है। वहीं आदिवासी भी अपना विरोध अपनी मौखिक अभिव्यक्ति से दर्ज करवा रहे है।-

"ये वो लोग है, जो हमारे बिस्तर पर करते हैं
हमारी बस्ती का बलात्कार,
और हमारी ही जमीन पर खड़ा हो पूछते हैं
हमसे हमारी औकात!"

इसलिए आदिवासियों ने तो सपने में भी नहीं सोचा था की उनके साथ ऐसा होगा वे तो उन्मुक्त प्रकृति की गोद में रह रहे एक प्रकार से प्रकृति की भाव-भंगिमाओ के साथ नाचने गाने वाले प्रकृति पालक है सारांशत यह कहा जा सकता है कि आधुनिक हिंदी कविता का भावबोध भी उसी प्रकार बदल जाता है। जिस प्रकार आचार्य शुक्ल बताते हैं कि जहाँ का जैसा समाज होगा वैसा ही वहा का साहित्य होगा उसी तर्ज पर यहाँ यह कहा जा सकता हैं कि जैसे-जैसे समय की माँग होगी हिंदी कविता का भावबोध भी उसी प्रकार परिवर्तित हो जायेगा क्योंकि जिस कविता का जो इतिहास हम देखते हैं कि प्लासी के युद्ध के पश्चात लोगों का बर्ताव अपने साथ देखा उसी युग एवं परिवेश के अनुसार कविता का भावबोध परिवर्तित होता रहा। इसलिए यह एक तरह से सार्वभौमिक सत्य है कि समय की माँग आपको उस युग और प्रवृत्तियों की और मुड़ने को प्रेरित करती है और यह एक प्रकार से सामजिक मनोवृतियों के भावबोध के लिए भी उपयुक्त ही सिद्ध हो सकता है।

समकालीन कविता

समकालीन कविता वस्तुत: नई कविता के आगे की कविता है, जो 'अनुभूति की प्रामाणिकता' और 'भोगा हुआ यथार्थ' को रचना का प्रमाण मानती है, साहित्य में समकालीनता को समझने का एक ही उपाय हैं कि समकालीन मनुष्य को उसके गत्यात्मक जीवन में परखना, उसके साथ तादात्म्य करना अथवा

उसके साथ होना, उसके मन में उतरना अथवा उसके साथ 'अस्तित्त्व की एकता' स्थापित करना।

इस दृष्टि से अज्ञेय जैसे कवि समकालीन कवियों में नहीं आते, वे 'समकाल' में अपना स्थान तो रखते हैं, किन्तु समकालीन मानव जीवन के वास्तविक सुख-दु:ख, आशा-आकांक्षाओं आदि के प्रति अज्ञेय में वह तल्लीनता नहीं मिलती जो समकालीन कवियों में मिलती है, नई कहानी की तरह कविता के क्षेत्र में 'नई कविता' का ही आधिपत्य रहा है, यद्यपि नई कविता का उद्‌भव 'तारसप्तक' के बाद से माना जाता है, किन्तु आज तक की कविता को 'नई कविता' के नाम से जाना जाता है।

इसी दृष्टि से कविता को अपने काल से जीने के लिए 'समकालीन कविता' का नाम दिया गया जो सत्तर के दशक के बाद की कविताओं के लिए था, किन्तु यह नाम भी बहुत चला नहीं।

आधुनिक हिंदी कविता और स्त्री-विमर्श

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में पुरुषों के साथ-साथ नारी साहित्यकारों ने भी अपनी बहुमूल्य कृतियों से उल्लेखनीय योगदान दिया है। यहाँ अतीत भारत के इतिहास के पृष्ठ भारतीय महिलाओं की विशिष्ट कृतियों से भरे पड़े हैं। उस समय उन्हें पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता था। कालांतर में समाज में कुप्रथाएँ बढ़ने लगीं। देश की आजादी के साथ-साथ स्त्रियों की आजादी का भी अपहरण हुआ। इसमें उनसे समानता और शिक्षा का अधिकार भी छीन लिया गया।

आधुनिक युग में नवजागरण के साथ ही नारियों की शिक्षा दीक्षा शुरू हुई। साहित्य की सभी विधाओं पर नारियों ने कलम चलाई है। आधुनिक कालीन कवियों ने मध्य युग की नारियों की दुर्दशा का अनुभव किया। गुप्त जी ने नारी की दयनीय दशा के विषय में वर्णन किया है–

''अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध, और आँखों में पानी।।''

अंग्रेजी शासन के विरुद्ध नारियों ने सत्याग्रह आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। गाँधी जी ने अछूतोद्धार की तरह नारी उद्धार के लिए भी प्रयास किए। समाज सुधारकों में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द आदि ने कुपरंपराओं से मुक्त करने के लिए आंदोलन चलाया। ऐसे सुधारवादी प्रयासों से नारी स्वाभिमान

को बढ़ावा मिला और नारी ने भी अपनी पहचान बनायी। पंत ने अपनी कविता में कहा–

''मुक्त करो नारी को, मानव चिर बंदिनी नारी को
युग-युग की निर्मल धारा से जननी, सखि, प्यारी को।''

राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित होकर कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी कविता 'झाँसी की रानी' तथा 'वीरों का कैसा को वसंत' के माध्यम से नारी के सम्मान में चार चाँद लगा दिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समानता के लिए नारी संघर्ष ने अथक प्रयास किया। इस काल में नारियों ने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि क्षेत्रों में अपना प्रभाव छोड़ना शुरू कर दिया। नारीवादी आंदोलनों ने और नारीवादी साहित्य ने स्त्रियों की समस्याओं का प्रतिनिधित्व किया है। हिंदी साहित्य में आज महिला साहित्यकारों के बहुआयामी लेखन, नारी चेतना रूप में व्यक्त हुआ है। इन महिला साहित्यकारों में प्रमुख हैं-सुमित्रा कुमारी सिन्हा, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडेय, अमृता प्रीतम, कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा, महादेवी वर्मा, मन्नू भंडारी, रमणिका गुप्ता, रजनी पणिक्कर, शची रानी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

नोबेल पुरस्कार विजेता उपन्यासकार डोरिस लेसिंग अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में यह पुरस्कार प्राप्त करने वाली दुनिया की सबसे पहली महिला हैं। इन्होंनें महिला मुक्ति आंदोलन को एक नए मुकाम पर पहुँचाने के लिए प्रेरित किया। महिला आंदोलन और महिला साहित्यकारों के संघर्षों का सुपरिणाम हैं कि देश के सर्वोच्च पद पर महिला राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल आसीन हुई। आजादी के बाद महिला साहित्यकार अपनी साहित्यधर्मिता के कारण विश्व की महान लेखिकाएँ बन गई हैं।

आजादी के बाद जिन साहित्यकारों ने नारी की स्वतंत्रता के लिए अपनी लेखनी चलाई है उनमें प्रमुख हैं-नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, रांगेय राघव, त्रिलोचन, रघुवीर सहाय, कुँवर नारायण, दुष्यंत कुमार, राजेन्द्र यादव आदि। नागार्जुन ने 'भूमिजा' शीर्षक कविता में नर-नारी की समानता के स्वर को मुखरित किया है–

''नर-नारी में मर्यादा के बोध
सम-सम होंगे, सम-सम होगा न्याय।
सम-सम होंगे विद्या-बुद्धि-विवेक

टिक सकता है क्योंकर वहाँ प्रवाद
जाग्रत होगी जहाँ परख की आंच।''

भारतीय सभ्यता का मूल मंत्र सादा जीवन उच्च विचार था। परंतु आज की नारियाँ सादे जीवन से बहुत दूर हैं। आज के संक्रांति युग में जब हमारे देश की जनता को न खाने को अन्न है और न पहनने को कपड़ा, संकट के क्षणों में हमारे देश के धन का अधिकांश हिस्सा फैशन परस्ती पर लुटा दिया जाता है। जिसका कोई भी रचनात्मक मोल नहीं। पुरुषों को मोहने के लिए आज की नारियाँ पुरातन स्वभाव को नहीं छोड़ रही हैं। 'जयति नखरंजिनी' कर्त्तव्यविमुख नारी के सामाजिक फैशन के संदर्भ को रेखांकित करती है–

''ठमक गए सहसा बेचारियों के पैर
हाय इतने सुंदर, हाथ हो जायेंगे दागी
भड़क उठा परिमार्जित रुचि-बोध
कौन ले बैलेट पेपर, मतदान कौन करे।''4

सेवा भावना के धनी एवं प्रगति के महान चितेरे डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव ने अपनी कृति 'स्वयं धरित्री ही थी'' में सदियों से उपेक्षित नारी की व्यथा का मार्मिक चित्रांकन किया है–

''अमर रहेगी आर्य संस्कृति,
महा तपस्विनी
चिर दुखियारिनी
तू धरती से ही जन्मी थी
धरती में ही लीन हो गई।''5

इस प्रकार आधुनिक हिंदी कविता में नारीवादी लेखन से नारी की महत्ता प्रतिष्ठित हुई है।

2

भारतेंदु युग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। भारतेन्दु का व्यक्तित्त्व प्रभावशाली था, वे सम्पादक और संगठनकर्ता थे, वे साहित्यकारों के नेता और समाज को दिशा देने वाले सुधारवादी विचारक थे, उनके आसपास तरुण और उत्साही साहित्यकारों की पूरी जमात तैयार हुई, अत: इस युग को भारतेन्दु-युग की संज्ञा देना उचित है। डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा हैं कि 'प्राचीन से नवीन के संक्रमण काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारतवासियों की नवोदित आकांक्षाओं और राष्ट्रीयता के प्रतीक थेय वे भारतीय नवोत्थान के अग्रदूत थे।'

जिस समय खड़ी बोली गद्य अपने प्रारिम्भक रूप में थी, उस समय हिन्दी के सौभाग्य से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्होंने राजा शिवप्रसाद तथा राजा लक्ष्मण सिंह की आपस में विरोधी शैलियों में समन्वय स्थापित किया और मध्यम मार्ग अपनाया।

इस काल में हिन्दी के प्रचार में जिन पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष योग दिया, उनमें उदन्त मार्तण्ड, कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन अग्रणी हैं। इस समय हिन्दी गद्य की सर्वांगीण प्रगति हुई और उसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, आलोचना, जीवनी आदि विधाओं में अनूदित तथा मौलिक रचनाएं लिखी गयीं।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का योगदान

भारतेन्दु युग के पूर्व कविता में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। अतिशय श्रृंगारिकता, अलंकार मोह, रीति निरूपण एवं चमत्कारप्रियता के कारण कविता जन-जीवन से कट गई थी। देशी रियासतों के संरक्षण में रहने वाले कविगण रीतिकाल के व्यामोह से न तो उबरना चाहते थे और न ही उबरने का प्रयास कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में भारतेन्दु जी का काव्य-क्षेत्र में पदार्पण वस्तुतः आधुनिक हिन्दी काव्य के लिये वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने काव्य क्षेत्र को आधुनिक विषयों से संपन्न किया और रीति की बँधी-बँधायी परिपाटी से कविता-सुन्दरी को मुक्त करके ताजी हवा में साँस लेने का सुअवसर प्रदान किया। भारतेन्दु युग में परंपरागत धार्मिकता और भक्ति भावना को अपेक्षतः गौण स्थान प्राप्त हुआ, फिर भी इस काल के भक्ति काव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं-

निर्गुण भक्ति

वैष्णव भक्ति

स्वदेशानुराग-समन्वित ईश्वर-भक्ति

इस युग में हास्य-व्यंग्यात्मक कविताओं की भी प्रचुर परिणाम में रचना हुई।

भारतेन्दु युग के कवियों की सबसे बड़ी साहित्यिक देन केवल यही मानी जा सकती हैं कि उन्होंने कविता को रीतिकालीन परिवेश से मुक्त करके समसामयिक जीवन से जोड़ दिया। भारतेन्दु आधुनिक काल के जनक थे और भारतेन्दु युग के अन्य कवि उनके प्रभामंडल में विचरण करने वाले ऐसे नक्षत्र थे, जिन्होंने अपनी खुली आँखों से जन-जीवन को देखकर उसे अपनी कविता का विषय बनाया। इस काल में कविता और जीवन के निकट का संबंध स्थापित हुआ और यही इस कविता का महत्व है।

भारतेंदु युग के काव्य की प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ)

भारतेंदु युग ने हिंदी कविता को रीतिकाल केश्रृंगारपूर्ण और राज-आश्रय के वातावरण से निकाल कर राष्ट्रप्रेम, समाज-सुधार आदि की स्वस्थ भावनाओं से ओत-प्रोत कर उसे सामान्य जन से जोड़ दिया। इस युग की काव्य प्रवृत्तियाँ निम्नानुसार हैं–

1. देशप्रेम की व्यंजना–अंग्रेजों के दमन चक्र के आतंक में इस युग के कवि पहले तो विदेशी शासन का गुणगान करते नजर आते हैं–

परम दुखमय तिमिर जबै भारत में छायो,
तबहिं कृपा करि ईश ब्रिटिश सूरज प्रकटायो।

किंतु शीघ्र ही यह प्रवृत्ति जाती रही।मननशील कवि समाज राष्ट्र की वास्तविक पुकार को शीघ्र ही समझ गया और उसने स्वदेश प्रेम के गीत गाने प्रारम्भ कर दिए–

बहुत दिन बीते राम, प्रभु खोयो अपनो देस।
खोवत है अब बैठ के, भाषा भोजन भेष॥

(बालमुकुन्द गुप्त)

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, ईश्वर से स्वतंत्रता की प्रार्थना आदि रूपों में भी यह भावना व्यक्त हुई। इस युग की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक राष्ट्रीयता है, जिसमें हिंदू राष्ट्रीयता का स्वर प्रधान है।

देश–प्रेम की भावना के कारण इन कवियों ने एक ओर तो अपने देश की अवनति का वर्णन करके आंसू बहाए तो दूसरी ओर अंग्रेज सरकार की आलोचना करके देशवासियों के मन में स्वराज्य की भावना जगाई। अंग्रेजों की कूटनीति का पर्दाफाश करते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा–

सत्रु सत्रु लड़वाइ दूर रहि लखिय तमाशा।
प्रबल देखिए जाहि ताहि मिलि दीजै आसा।

इसी प्रकार जब काबुल पर अंग्रेजों की विजय होने पर भारत में दिवाली मनाई गई तो भारतेंदु ने उसका विरोध करते हुए लिखा –

आर्य्य गनन कों मिल्यौ, जो अति प्रफुलित गात।
सबै कहत जै आजु क्यों, यह नहिं जान्यौ जात।
सुजस मिलै अंग्रेज को, होय रूस की रोक।
बढ़ै ब्रिटिश वाणिज्य पै, हमको केवल सोक।

2. सामाजिक चेतना और जन-काव्य– समाज–सुधार इस युग की कविता का प्रमुख स्वर रहा। इन्होंने किसी राजा या आश्रयदाता को संतुष्ट करने के लिए काव्य–रचना नहीं की, बल्कि अपने हृदय की प्रेरणा से जनता तक अपनी भावना पहुंचाने के लिए काव्य रचना की। ये कवि पराधीन भारत को जगाना चाहते थे, इसलिए समाज–सुधार के विभिन्न मुद्दों जैसे स्त्री–शिक्षा,

विधवा-विवाह, विदेश-यात्रा का प्रचार, समाज का आर्थिक उत्थान और समाज में एक-दूसरे की सहायता आदि को मुखरित किया, यथा–

निज धर्म भली विधि जानैं, निज गौरव को पहिचानैं।
स्त्री-गण को विद्या देवें, करि पतिव्रता यज्ञ लेवैं।

(प्रताप नारायण मिश्र)

हे धनियो क्या दीन जनों की नहिं सुनते हो हाहाकार।
जिसका मरे पड़ोसी भूखा, उसके भोजन को धिक्कार॥

3. भक्ति-भावना– इस युग के कवियों में भी भक्ति-भावना दिखाई पड़ती है, लेकिन इनकी भक्ति-भावना का लक्ष्य अवश्य बदल गया। अब वे मुक्ति के लिए नहीं, अपितु देश-कल्याण के लिए भक्ति करते दिखाई देते हैं–

कहाँ करुणानिधि केशव सोए।
जगत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए।

(भारतेंदु हरिश्चंद्र)

4. हिंदू-संस्कृति से प्यार– पिछले युगों की प्रतिक्रिया स्वरूप इस युग के कवि-मानस में अपनी संस्कृति के अनुराग का भाव जाग उठा। यथा–

सदा रखें दृढ़ हिय मँह निज साँचा हिन्दूपन।
घोर विपत हूँ परे दिगै नहिं आन और मन।

(बालमुकुन्द गुप्त)

5. प्राचीनता और नवीनता का समन्वय– इन कवियों ने एक ओर तो हिंदी-काव्य की पुरानी परम्परा के सुंदर रूप को अपनाया, तो दूसरी ओर नयी परम्परा की स्थापना की। इन कवियों के लिए प्राचीनता वंदनीय थी तो नवीनता अभिनंदनीय। अत: ये प्राचीनता और नवीनता का समन्वय अपनी रचनाओं में करते रहे। भारतेंदु अपनी 'प्रबोधिनी' शीर्षक कविता में 'प्रभाती' के रूप में प्राचीन परिपाटी के अनुसार कृष्ण को जगाते हैं और नवीनता का अभिनंदन करते हुए उसमें राष्ट्रीयता का समन्वय करके कहते हैं –

डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो।

6. निज भाषा प्रेम– इस काल के कवियों ने अंग्रेजों के प्रति विद्रोह के रूप में हिंदी-प्रचार को विशेष महत्त्व दिया और कहा –

क) निज-भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
(भारतेंदु)

ख) जपो निरंतर एक जबान, हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान।
(प्रताप नारायण मिश्र)

यद्यपि इस काल का अधिकतर साहित्य ब्रजभाषा में ही है, किंतु इन कवियों ने ब्रजभाषा को भी सरल और सुव्यवस्थित बनाने का प्रयास किया। खड़ी बोली में भी कुछ रचनाएँ की गई, किंतु वे कथात्मकता और रुक्षता से युक्त हैं।

7. शृंगार और सौंदर्य वर्णन– इस युग के कवियों ने सौंदर्य और प्रेम का वर्णन भी किया है, किंतु उसमें कहीं भी कामुकता और वासना का रंग दिखाई नहीं पड़ता। इनके प्रेम-वर्णन में सर्वत्र स्वच्छता एवं गंभीरता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के काव्य से एक उदाहरण दृष्टव्य है–

हम कौन उपाय करै इनको हरिचन्द महा हठ ठानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँकियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं।

8. हास्य-व्यंग्य– भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं उनके सहयोगी कवियों ने हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति भी मिलती है। उन्होंने अपने समय की विभिन्न बुराइयों पर व्यंग्य-बाण छोड़े हैं। भारतेंदु की कविता से दो उदाहरण प्रस्तुत हैं–

(क) भीतर भीतर सब रस चूसै
हंसि-हंसि कै तन-मन-धन मूसै
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज।

(ख) इनकी उनकी खिदमत करो,
रूपया देते-देते मरो।
तब आवैं मोहिं करन खराब,
क्यों सखि सज्जन नहीं खिताब।

9. प्रकृति-चित्रण– इस युग के कवियों ने पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा प्रकृति के स्वतंत्र रूपों का विशेष चित्रण किया है। भारतेंदु के 'गंगा-वर्णन' और 'यमुना-वर्णन' इसके निदर्शन हैं। ठाकुर जगमोहन सिंह के स्वतंत्र प्रकृति के वर्णन भी उत्कृष्ट बन पड़े हैं। प्रकृति के उद्दीपन रूपों का वर्णन भी इस काल की प्रवृत्ति के रूप जीवित रहा।

10. रस– इस काल में शृंगार, वीर और करुण रसों की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति प्रबल रही, किंतु इस काल का शृंगार रीतिकाल के शृंगार जैसा नग्न शृंगार न होकर परिष्कृत रुचि का शृंगार है। देश की दयनीय दशा के चित्रण में करुण रस प्रधान रहा है।

11. भाषा और काव्य-रूप– इन कवियों ने कविता में प्रायः सरल ब्रजभाषा तथा मुक्तक शैली का ही प्रयोग अधिक किया। ये कवि पद्य तक ही

सीमित नहीं रहे बल्कि गद्यकार भी बने। इन्होंने अपनी कलम निबंध, उपन्यास और नाटक के क्षेत्र में भी चलाई। इस काल के कवि मंडल में कवि न केवल कवि था बल्कि वह संपादक और पत्रकार भी था।

इस प्रकार भारतेंदु-युग साहित्य के नव जागरण का युग था, जिसमें शताब्दियों से सोये हुए भारत ने अपनी आँखें खोलकर अंगड़ाई ली और कविता को राजमहलों से निकालकर जनता से उसका नाता जोड़ा। उसे कृत्रिमता से मुक्त कर स्वाभाविक बनाया, श्रृंगार को परिमार्जित रूप प्रदान किया और कविता के पथ को प्रशस्त किया। भारतेंदु और उनके सहयोगी लेखकों के साहित्य में जिन नये विषयों का समावेश हुआ, उसने आधुनिक काल की प्रवृत्तियों को जन्म दिया। इस प्रकार भारतेंदु युग आधुनिक युग का प्रवेश द्वार सिद्ध होता है।

भारतेन्दु युगीन प्रतिनिधि रचनाकार

भारतेन्दु युग के मूर्धन्य रचनाकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने अपने सहयोगियों का एक संगठन बनाया था जिसे 'भारतेंदु मंडल' के नाम से जाना जाता है इस मंडल में अनेक प्रमुख रचनाकार थे। इनके अलावा कुछ अन्य गौण रचनाकारों का योगदान भारतेन्दु युग को प्राप्त था।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र

भारतेंदु युग का नाम प्रमुख रचनाकार के नाम पर रखा गया। भारतेंदु ने युग में जन-जागरण ला दिया। इसीलिए इस युग को पुनर्जागरण काल भी कहा गया। भारतेंदु ने साहित्य को नवीन रूप प्रदान किया।

व्यक्तित्त्व

कविवर भारतेंदु हरिश्चन्द्र का (सन् 1850-1885 ई0) इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचंद की वंश परंपरा में जन्म हुआ था। उनके पिता बाबू गोपाल चंद्र 'गिरिधरदास' भी अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने पांच वर्ष की अवस्था में काव्य की रचना करना शुरू कर दिया था। पांच वर्ष की आयु में मां का और 10 वर्ष की अवस्था में पिता का स्वर्गवास हो गया। भारतेन्दु का मूल नाम हरिश्चन्द्र है। अल्पायु में ही हरिश्चन्द्र ने कवित्व प्रतिभा एवं सर्वतोन्मुखी रचना क्षमता का ऐसा परिचय दिया कि तत्कालीन साहित्यकारों तथा पत्रकारों ने सन् 1880 ई. में उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया। भारतेंदु,

कवि, साहित्यकार, पत्रकार सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के धनी थे। 'कवि वचन सुधा' तथा 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' भारतेंदु के संपादन में प्रकाशित होने वाली प्रसिद्ध पत्रिकाएं थीं। साहित्य में नाटक, निबंध आदि की रचना द्वारा उन्होंने खड़ी बोली की गद्य शैली के निर्धारण में विशिष्ट भूमिका निभाई। उनकी कविताएं विविध-विषय-विभूषित हैं, जिनमें भक्ति,शृंगारिकता, देश प्रेम, सामाजिक परिवेश तथा प्रकृति के विभिन्न संदर्भों को लेकर उन्होंने विपुल परिमाण में काव्य की रचना की।

कृतित्त्व

भारतेंदु ने काव्य, नाटक, स्त्री शिक्षा तथा इतिहास आदि पर लेखनी उठाई। 'भारतेंदु ग्रंथावली' उनके समग्र साहित्य का संकलन है।

काव्य

भारतेन्दु जी ने अनेक काव्य रचनाएं की जिनमें 'प्रेम मालिका', 'सतसई श्रृंगार', 'भारत वीणा', 'प्रेम तरंग', 'भक्त सर्वस्व', 'प्रेम सरोवर', 'गीत गोविंद', वर्षा विनोद', 'विनय प्रेम-पचासा', 'प्रेम फुलवारी', 'वेणुगीत', 'दशरथ विलाप', 'फूलों का गुच्छा', 'विजयिनी-विजय-वैजयंती' आदि प्रमुख काव्य रचनाएं हैं।

नाटक

भारतेन्दु की 'नील देवी', 'भारत जननी', 'भारत दुर्दशा', 'प्रेम योगिनी', 'चन्द्रावली नाटिका', 'वैदिकी', 'हिंसा, हिंसा न भवति', 'सती प्रताप', दुर्लभ बंधु एवं 'अंधेर नगरी' आदि नाट्य कृतियां हैं। अन्य पुस्तक 'काल चक्र' है।

स्त्री शिक्षा-'बालाबोधिनी'।

संपादन-'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका'।

इतिहास-'काश्मीर कुसुम', 'बादशाह दर्पण', 'अग्रवालों की उत्पत्ति', 'दिल्ली दरबार दर्पण', 'महाराष्ट्र देश का इतिहास'।

अनूदित-बंगला से हिंदी अनुवाद-'विद्या सुंदर नाटक' 'मुद्राराक्षस', 'पाखंड विडंबन', 'धनंजय विजय'।

निबंध-'सुलोचना', 'मदालसा', 'लीलावती', 'परिहास वंचक', 'कर्पूर मंजरी', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'कर्पूर मंजरी', 'सत्य हरिश्चन्द्र'।।

साहित्यिक विशेषताएं:– भारतेन्दु ने अपनी अनेक रचनाओं में जहां वे प्राचीन प्रवृत्तियों का अनुगमन करते रहे हैं वहीं नवीन काव्य धारा के प्रवर्तन का श्रेय भी इन्हीं को है। राजभक्त होते हुए भी देशभक्त हैं, दास्य भक्ति के साथ-साथ माधुर्य भक्ति का भी निर्वाह किया है। एक ओर उन्होंने नायक-नायिकाओं के सौंदर्य का चित्रण किया है तो दूसरी ओर उनके लिए नए कर्त्तव्य क्षेत्र भी निर्देशित किए हैं। शैली इतिवृत्तात्मक होते हुए हास्य-व्यंग्य का तीखा प्रहार करने वाली भी है। अभिव्यंजना क्षेत्र में भी उन्होंने परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियों को अंगीकार किया है। यह उनकी प्रयोगधर्मी मनोवृत्ति की देन है। प्रबल हिंदीवादी होते हुए भी उन्होंने उर्दू शैली को कविता के लिए चुना है। काव्य भाषा हेतु ब्रजभाषा को व्यवहार में लाया है, किन्तु खड़ी बोली में 'दशरथ विलाप' तथा 'फूलों का गुच्छा' की रचना की है। काव्य रूपों की विविधता उनकी अनन्य विशेषता है। छंदोबद्धता का निर्वाह करते हुए भी गेय पद शैली को अपनाया है। भारतेंदु काव्य क्षेत्र के नवयुग में वे अग्रदूत थे। अपनी ओजस्विता, सरलता, भाव-व्यंजना, एवं प्रभु विष्णुता में उनका काव्य इतना सशक्त एवं प्राणवान हो गया हैं कि तत्कालीन सभी कवियों को पर अत्यधिक प्रभाव डाला है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का भाषा और साहित्य दोनों पर अत्यधिक गहन प्रभाव पड़ा है। उन्होंने जिस प्रकार गद्य भाषा को परिमार्जित करके उसे अति मधुर, चलता एवं स्वच्छ स्वरूप प्रदान किया है उसी प्रकार हिंदी साहित्य को भी नए मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया है। भाषा को संस्कारित किया है। भारतेंदु को वर्तमान गद्य का प्रवर्तक कहा गया। भाषा का शिष्ट सामान्य निखरा हुआ रूप भारतेंदु की कला ने उपस्थित किया। पुराने पड़े हुए शब्दों का स्थानांतरण करके काव्य भाषा में भी वे चलतापन एवं सफाई लाने में कामयाब हुए हैं।

साहित्य को नवीन मार्ग पर लाकर उसे शिक्षित जनता का सहचर बनाया। भारतेंदु ने पुराने रास्ते पर पड़े हुए साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जन-जन के साथ जोड़ दिया। जनता एवं साहित्य के बीच बढ़ती हुई खाईं को उन्होंने पाट दिया। साहित्य को नवीन प्रवृत्ति एवं नई दिशा देने का श्रेय भारतेन्दु को है। हरिश्चन्द्र की भाषा को हरिश्चन्द्री हिंदी' की संज्ञा प्रदान की गयी। इसके आविर्भाव के साथ नए-नए लेखक तैयार होने लगे।

भारतेन्दु ने दो शैलियों को विशेष रूप से प्रयोग किया है, जिसमें पहली भावावेश की शैली और दूसरी तथ्य निरूपण की शैली है। भावावेश में उनकी भाषा में वाक्य प्रायः लघुतर होते जाते हैं तथा पदावली सरल आम बोल-चाल

की होती है, जिसमें बहु प्रचलित आम बोल चाल में प्रयोग में आने वाले अरबी फारसी शब्दों का भी समावेश कभी-कभी हो जाता है। जहां चित्त के किसी स्थायी क्षोभ की व्यंजना है तथा चिंतन हेतु अवकाश मिलते ही उनकी भाषा में साधुता एवं गंभीरता आने के साथ-साथ वाक्यों का आयाम विस्तृत होने लगता है, किन्तु अन्वय में जटिलता नहीं आने पाती है।

तथ्य निरूपण अथवा वस्तु वर्णन के अवसर पर उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ, तत्सम शब्दावली प्रधान हो जाती है, किन्तु इसे भारतेन्दु की वास्तविक भाषा नहीं कहा जा सकता। उनकी वास्तविक भाषा संस्कृतनिष्ठ नहीं थी। भाषा चाहे जैसी हो उनके वाक्यों के अन्वय में जटिलता को स्थान न मिलकर सरलता विद्यमान थी। वाग्वैदग्ध्य या चमत्कार के स्थान पर उनके भावों में हृदय स्पर्शिता एवं मार्मिकता देखने को मिलता है।

पंडित प्रताप नारायण मिश्र

भारतेंदु मंडल में भारतेंदु के पश्चात् प्रतापनारायण मिश्र का प्रमुख स्थान है।

व्यक्तित्त्व

प्रताप नारायण मिश्र प्रतिभा सम्पन्न निबंधकार थे। जिनमें रचना क्षमता की अद्वितीयता विद्यमान थी। किसी भी सामान्य से सामान्य विषय पर निबंध लिख देना इनके लिए काफी सहज कार्य था। लेखन कला में भारतेंदु हरिश्चन्द्र को अपना आदर्श माना है। फिर भी मिश्र की शैली में भारतेंदु की शैली से अत्यधिक भिन्नता परिलक्षित होती है। ये विनोदी स्वभाव के थे। वाग्वैग्ध्य इनकी वाणी की प्रमुख विशेषता थी।

कृतित्त्व

मिश्रा जी ने अनेक निबंध लिखे जिनमें प्रमुख निबंध-'नाखून क्यों बढ़ते हैं'? 'मूंछ', 'भौं', 'दांत', 'पेट' आदि शारीरिक अंगों पर लिखे गए निबंध। 'ट', 'त' जैसे वर्णमाला के अक्षरों पर लिखे गए निबंध। 'बेगार', 'रिश्वत', 'देशोन्नति', 'बाल-शिक्षा', 'धर्म और मत', 'उन्नति की धूम', 'गोरक्षा', 'बाल विवाह', 'विलायत यात्रा', 'अपव्यय' आदि विषयों से संबंधित विचार प्रधान निबंध। 'न्याय', 'ममता', 'सत्य', 'स्वतन्त्रता' आदि वैचारिक निबंध। 'घूरे क

लत्ता बिनै', 'कनातन का डौल बांधै', 'समझदार की मौत है', 'बात', 'मनोयोग', 'वृद्ध', आदि कहावतों लोकोक्तियों, सूक्तियों को शीर्षक बनाकर लिखे गए निबंध।

नाटक

'कलि कौतुक रूपक', 'कलि प्रभाव', 'हठी हमीर', 'गौ संकट', 'जुवारी खुवारी'।

साहित्यिक विशेषताएं

किसी भी सामान्य से सामान्य विषय को शीर्षक बना कर निबंध लिख देना मिश्र की प्रमुख विशेषताएं थीं। विचार प्रधान विषयों का प्रतिपादन अपेक्षाकृत संयमित ढंग से किया है अन्यथा उनका विनोदी स्वभाव ही दृष्टिगोचर होता है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता पाठकों के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाना है। उस स्तर पर वे अद्वितीय हैं। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण सदैव सुधारात्मक रहा है। रूढ़ियों का उन्होंने कहीं समर्थन नहीं किया है अपितु उनका विरोध किया है। निबंधों में इनका सच्चा देशभक्त, समाज सुधारक एवं हिंदी प्रेमी रूप ही परिलक्षित होता है। उन्होंने भारतेंदु के आदर्श को अपना आदर्श बनाया तथा आजीवन इन्हीं को प्रशस्त करने में संलग्न रहे।

मिश्र के निबंधों में उनकी स्वच्छंदता, आत्म व्यंजकता, हास्यप्रियता, सरलता, वाग्वैदम्य, लोकोन्मुखता, व्यंग्य-क्षमता, चपलता तथा सहजता सर्वत्र दिखाई देती होती है। यद्यपि उनकी प्रवृत्ति हास्य विनोद प्रधान थी किंतु जब गंभीर विषयों पर वे निबंध लिखते थे तब संयत एवं साधु भाषा का प्रयोग करते थे।

पंडित बालकृष्ण भट्ट

पंडित बालकृष्ण भट्ट (सन् 1844-1914 ई0) भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों में प्रमुख रहे हैं।

व्यक्तित्त्व

संवत् 1933 वि. में पंडित बालकृष्ण भट्ट ने गद्य साहित्य का मार्ग प्रशस्त करने हेतु 'हिन्दी प्रदीप' का संपादन शुरू किया। सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक एवं नैतिक आदि विभिन्न विषयों पर लिखे गए लघु निबंधों, जिनकी

संख्या लगभग 50 से भी अधिक रही होगी, बत्तीस वर्षों तक प्रकाशित करते रहे। भट्ट संस्कृत के ज्ञाता व पंडित थे। अंग्रेजी साहित्य का भी उन्हें भरपूर ज्ञान था। तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगति से वे पूर्णरूपेण परिचित थे। वे अपने युग के सर्वाधिक प्रगतिशील व्यक्ति थे। भट्ट अपने विचारात्मक निबंधों के लिए मशहूर हैं।

कृतित्त्व

उन्होंने छोटे-छोटे अनेक निबंध लिखे। वे कहा करते थे कि न जाने कैसे लोग बड़े-बड़े लेख लिख डालते हैं।

निबंध

वैज्ञानिक-भट्ट ने 'वायु', 'प्रकाश', 'धूम केतु', 'पेड़', 'सीसा', 'वनस्पति', 'विज्ञान', 'भूगर्भ निरूपण', 'पदार्थवाद' आदि निबंध लिखे।

शारीरिक अंग-पर निबन्ध लिखे। 'आंख', 'कान', 'नाक', आदि पर निबंध लिखे। साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है, प्रमुख निबंध हैं। 'प्रेम और भक्ति', 'तर्क और विश्वास', 'ज्ञान और भक्ति', 'विश्वास, प्रीति', 'अभिलाषा', 'आशा', 'स्पर्धा', 'धैर्य', 'माधुर्य', 'आत्म त्याग', 'सुख क्या है?' आदि प्रमुख वैचारिक निबंध हैं। 'सच्ची कविता', 'भाषा कैसी होनी चाहिए', 'उपमा'।

उपन्यास- 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' आदि।

संपादन एवं प्रकाशन-'हिन्दी प्रदीप'।

साहित्यिक विशेषताएं–उनके विचारात्मक निबंधों में उनकी खीझ, आक्रोश, भावावेश तथा झुंझलाहट स्पष्ट परिलक्षित होती है। साथ ही उनका खरापन भी उभरकर आ जाता है। देशभक्ति पर भट्ट ने सबसे अधिक बल दिया है। अंग्रेजों द्वारा लगाए जाने वाले कर, पुलिस अत्याचार, कृषि की दुर्गति, हिंदी की उपेक्षा, हिंदूओं और मुसलमानों में फूट डालने वाली नीति आदि का भट्ट ने निर्भय होकर विरोध किया है। भट्ट तिलक के समर्थक थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीतियों के विरोधी थे। वे निर्भ्रांत रूप से यह स्वीकारते थे कि कांग्रेस अंग्रेजी सरकार को दृढ़ और पुष्ट करने हेतु स्थापित की गई है। सामाजिक चेतना की दृष्टि से भट्ट ने अपने युग का अतिक्रमण किया था। वे सभी प्रकार के बाह्याडंबरों का विरोध करते थे। विधवा-विवाह का समर्थन किया। अंध-विश्वास, बाल-विवाह, छुआछूत, पर्दा प्रथा, अनमेल विवाह, जाति-पाति के भेद-भाव आदि का प्रबल विरोध किया।

भट्ट की भाषा एवं साहित्यिक निबंधों का विशेष महत्व है। भट्ट द्वारा लिखित निबंध, 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' आज भी साहित्य चिंतन के क्षेत्र में भट्ट की क्रांति दर्शिता का परिचायक बना हुआ है। शैली की दृष्टि से भट्ट के निबंधों का अत्यधिक महत्व है। निबंधकार का व्यक्तित्त्व निबंधों में पूर्ण रूपेण व्यंजित हुआ है। मानसिक दृढ़ता, देश-प्रेम, आत्म विश्वास, विवेक, खरापन, त्याग, निडरता, कष्ट सहिष्णुता, उदारता एवं निष्ठा से समृद्ध उनके व्यक्तित्त्व की आभा से उनके निबंध दीप्त हैं। निबंधों में प्रचलित वर्गीकरण की दृष्टि से उनके अधिकांश निबंध विचारात्मक कोटि के हैं। किन्तु उन्होंने वर्णात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक, कथात्मक एवं हास्य व्यंग्य प्रधान विविध प्रकार के निबंधों की रचना की है।

भट्ट की शैली व भाषा जीवंत भाव दीप्त एवं व्यावहारिक है। यत्र-तत्र समास गर्भित पदों का प्रयोग मिल जाता है। भाषा परिष्कृत एवं परिमार्जित नहीं है। भारतेंदु मंडल के अन्य रचनाकारों की भांति इसका-इस्के, उसके-उस्के, ले-लै, दे-दै, करना-किया आदि बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। अन्यत्र आकर-आय, जाकर-जाय आदि के प्रयोग भी हुए हैं। इस दृष्टि से इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि भट्ट की भाषा भारतेन्दु युगीन भाषा का पूरी तरह अतिक्रमण नहीं कर सकी है। अपनी मौज में आकर भट्ट ने अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। स्थान-स्थान पर कोष्ठकों में 'एजूकेशन', 'सोसायटी', 'नेशनल विगर एण्ड स्ट्रेन्थ', 'स्टैंडर्ड', 'करेक्टर' आदि आंग्ल भाषा के शब्दों का रोमन लिपि में प्रयोग किया गया है। यह भट्ट की शैली एवं भाषा का निरालापन है।

मुहावरों की उनकी सूझ बहुत अच्छी थी। शरीरिक अंगों से संबंधित मुहावरों की झड़ी लगा दी है। आंख को लेकर आंख आना, -जाना, -उठना -बैठना, -लड़ना, -लगना, -मारना आदि।

उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन

व्यक्तित्त्व-बदरीनारायण चौधरी का उपनाम 'प्रेमधन' था। नाम से पूर्व उपाध्याय भी लगाते थे। पंडित शब्द का प्रयोग नाम से पूर्व प्राय: सभी हिंदी रचनाकार करते थे। इनका जन्म सन् 1855 ई. में हुआ था। 68 वर्ष की अवस्था में इनकी सन् 1823 ई. में मृत्यु हो गई। गद्य और पद्य दोनों विधाओं में रचना की।

कृतित्त्व–निबंध, कविता तथा नाटक को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

नाटक–'भारत सौभाग्य', 'वारांगना-रहस्य', 'प्रयाग रामागमन', 'वृद्ध विलाप'।

समालोचना–बाबू गदाधर सिंह के अनुवाद 'वंग विजेता' तथा लाला श्रीनिवास दास के 'संयोगिता स्वयंवर' की विशद एवं कठोर समालोचना लिखकर हिंदी साहित्य में हिंदी समालोचना का सूत्रपात किया।

संपादन–'नागरी नीरद' साप्ताहिक पत्र एवं 'आनंद कादंबिनी' का संपादन किया।

साहित्यिक विशेषताएं–इनकी शैली विलक्षण थी। वे गद्य रचना को कला तथा कलम की कारीगरी स्वीकारने वाले लेखक थे। कभी-कभी ऐसे लंबे पेचीदे गद्य की रचना करते थे कि पाठक एक डेढ़ प्रघटक के लंबे वाक्यों में उलझ जाता था। ये वाक्य नहीं वाक्यातीत महाकाव्य या प्रोक्तियां होती थीं। अनुप्रास एवं अनूठे पद-विन्यास की ओर इनका विशेष ध्यान होता था। किसी बात को साधारण ढंग से कह जाने को ही वे लिखना नहीं कहते थे। लेख लिखने के बाद कई बार उसको पढ़कर उसका परिष्कार एवं परिमार्जन कर लेने के बाद ही प्रकाशन हेतु देते थे। भारतेंदु के घनिष्ठ होकर भी उनके उतावलेपन की आलोचना करने से नहीं चूकते थे।

'आनंद कादंबिनी' का संपादन अपने वैचारिक भावों के अंकन हेतु ही किया। उसमें अन्यों को छपने का अवसर यदा-कदा ही मिलता था। इसी को ध्यान में रखते हुए भारतेंदु ने कहा था यह पुस्तक नहीं, पत्र है अपने अलावा अन्यों के लेख का प्रकाशन आवश्यक है। यह आवश्यक नहीं कि सभी लेखक एक जैसे हों। समालोचना का सूत्रपात हिंदी में बदरीनारायण चौधरी ने किया।

भारतेंदु मंडल के प्रमुख साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट तथा बदरीनारायण चौधरी थे। भारतेंदु मंडल के भारतेंदु हरिश्चन्द्र, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बाल कृष्ण भट्ट एवं उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' प्रमुख साहित्यकार हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक रचनाकारों तथा संस्थाओं ने भारतेंदु युग के विभिन्न क्रियाकलापों में योगदान किया। वे निम्नलिखित हैं–

लाला श्रीनिवास दास

इन्होंने नाटक और उपन्यास लिखे। संसार को ऊँचा नीचा समझने वाले पुरुष थे। इनका जन्म सन् 1851 एवं मृत्यु 1886 में हुई।

नाटक–'तप्तासंवरण', 'संयोगिता स्वयंवर' तथा 'रणधीर-प्रेम मोहिनी'।

उपन्यास–'परीक्षा गुरु'।

साहित्यिक विशेषताएं–श्रीनिवास दास व्यावहारिक साहित्यकार थे। भाषा संयत तथा साफ सुथरी एवं रचना अति उद्देश्यपूर्ण है। अति भोजन, अत्यधिक परोपकार, अधर्मियों की सहायता, कुपात्र में भक्ति, न्यायपरता की अधिकता, अत्यंत बुद्धि वृत्ति, आदि पर करारा व्यंग्य करते हुए अति की वर्जना की है।

राजकुमार ठाकुर जगमोहन सिंह

ठाकुर जगमोहन सिंह मध्य प्रदेश की विजय राघवगढ़ रियासत के राजकुमार थे। इन्होंने काशी से संस्कृत एवं अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। अध्ययन काल में भारतेंदु हरिश्चन्द्र से उनका संपर्क हो गया किंतु भारतेंदु की रचना शैली का प्रभाव उन पर वैसा नहीं पड़ा जैसा भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों पर पड़ा। वे संस्कृत साहित्य और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता तथा हिंदी के एक प्रेम पथिक कवि एवं माधुर्यपूर्ण गद्य लेखक थे।

काव्य कृतियां–'प्रेम संपत्ति लता', 'श्याम लता', 'श्यामा सरोजिनी', एवं 'देवयानी'।

उपन्यास–'श्यामा स्वप्न'।

अनूदित–'ऋतु संहार' एवं 'मेघदूत' (ब्रजभाषा)।

साहित्यिक विशेषताएं–शृंगार वर्णन एवं प्रकृति सौंदर्य की अवधारणा उनकी मुख्य काव्य प्रवृत्तियां हैं, जो उनकी काव्य कृतियों में विद्यमान हैं। उपन्यास में प्रसंगवसात कुछ कविताओं का समावेश सुंदर बन पड़ा है। जगमोहन सिंह भावुक मनोवृत्ति के कवि थे। कल्पना लालित्य, भावुकता, चित्र शैली, और ब्रजभाषा की सरसता एवं मधुरता उनकी रचनाओं की अन्यतम विशेषताएं हैं। अपने हृदय पर अंकित भारतीय ग्राम्य जीवन के माधुर्य का जो संस्कार ठाकुर साहब ने 'श्यामा स्वप्न' में व्यक्त किया है उसकी सरसता निराली है। ठाकुर जगमोहन सिंह ने प्राचीन संस्कृत के साथ भारतभूमि की प्यारी रूपरेखा को मन में बसाने वाले पहले हिंदी रचनाकार हैं।

बाबू तोता राम

ये हरिश्चन्द्र चंद्रिका के लेखकों में से हैं। आजीवन हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में तत्पर रहे। साहित्य सृजन कर सभा के लिए अर्पित कर दिया।

सभा की स्थापना-'भाषा संवर्द्धिनी' सभा की स्थापना की।

पत्र-'भारत बंधु' साप्ताहिक पत्र।

अनूदित-'केटो कृतांत नाटक', 'स्त्री सुबोधिनी'।

साहित्यिक विशेषताएं– सामान्य भाषा का प्रयोग बाबू तोता राम की प्रमुख विशेषता रही है।

पंडित केशव राम भट्ट

इन्होंने बिहार प्रांत में हिन्दी प्रचार-प्रसार हेतु अनेक यत्न किए।

नाटक-'शमशाद सौसन' तथा 'सज्जाद संबुल'।

पत्र-'बिहार बंधु' साप्ताहिक पत्र।

साहित्यिक विशेषताएं–भाषा-उर्दू में लेखन।

पंडित राधाचरण गोस्वामी

'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' के प्रभाव से समाज सुधार एवं देशभक्ति का भाव जागृत हुआ।

कृतित्व-'विदेश यात्रा विचार' तथा 'विधवा विवाह विवरण' नामक दो पुस्तकें लिखीं।

पत्र संपादन–भारतेंदु नामक पत्र निकाला।

अंबिका दत्त व्यास

कविवर दुर्गा दत्त व्यास के पुत्र अंबिका दत्त व्यास काशी निवासी सुकवि थे। वे संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान थे तथा दोनों भाषाओं में साहित्य सृजन का कार्य करते थे।

काव्य-'पावस पचासा', 'सुकवि सतसई' तथा 'हो हो होरी' काव्य कृतियां हैं।

प्रबंध काव्य-'कंस वध' (अपूर्ण)। खड़ी बोली। 'ललिता नाटिका', 'पावस पचासा', 'गद्य मीमांसा' आदि प्रबन्ध काव्य हैं।

नाटक-'भारत सौभाग्य', 'गो संकट नाटक', 'मरहेट्टा नाटक'।

संपादन–उन्होंने पीयूष-'प्रवाह'का सम्पादन किया।

कुंडलिया-समस्यापूर्ति-'बिहारी विहार', 'अवतार मीमांसा'।

साहित्यिक विशेषताएं–ललित, ब्रजभाषा इनकी लेटान की प्रमुख विशेषता रही।

पंडित मोहन लाल विष्णु लाल पंड्या

पंडित मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या (सन् 1850-1912 ई) ने गिरती दशा में 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' को सहारा दिया था तथा उसमें अपना नाम भी जोड़ा था। लोग इनकी वेशभूषा, बोल चाल से इन्हें इतिहासवेत्ता समझते थे। कविराज श्यामल दान जी ने जब अपने 'पृथ्वीराज चरित्र' ग्रंथ के द्वारा चंदबरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' को जाली ग्रंथ प्रमाणित किया था उस समय इन्होंने 'रासो संरक्षा' की रचना कर उसे प्रामाणित महाकाव्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया था।

कृतित्व-'रासो-संरक्षा'।

पंडित भीमसेन शर्मा

पहले ये स्वामी दयानंद सरस्वती के दायें हाथ थे। संवत् 1940-1942 वि. के मध्य इन्होंने धर्म संबंधी अनेक पुस्तकें हिंदी में लिखीं एवं संस्कृत ग्रंथों के हिंदी भाष्य भी प्रकाशित किए।

कृतित्त्व–'आर्य-सिद्धान्त' नामक मासिक पत्र।

'संस्कृत भाषा की अद्भुत शक्ति' निबन्ध।

साहित्यिक विशेषताएं–आर्य भाषा के संबंध में इनका मत विलक्षण था। निबंध को आधार मानकर इन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों को संस्कृत का रूप दिया जिसके लिए अनेक तर्क उपस्थित किए-दुशमन-दुःशमन, सिफारिश-क्षिप्राशिष, चश्मा-चक्ष्मा, शिकायत-शिक्षायत्न आदि।

बाबू कार्तिका प्रसाद खत्री

कोलकाता से हिंदी का एक अच्छा पत्र और पत्रिका निकालने का सर्वप्रथम प्रयत्न करने वाले बाबू कार्तिका प्रसाद खत्री थे। उन्होंने हिन्दी में पाठक पैदा करने हेतु दौड़ धूप की। घर-घर जा-जाकर पत्र सुनाकर आते थे।

कृतित्त्व–सन् 1928 ई. में 'हिन्दी दीप्ति प्रकाश' नाम का संवाद पत्र तथा 'प्रेम विलासिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया।

पंडित गोपी नाथ

'कवि वचन सुधा' की मनोहर लेखन शैली से प्रभावित, भाषा पर मुग्ध होकर गोपीनाथ ने पत्रिका संचालन किया।

कृतित्त्व-पत्रिका- संवत 1934-'मित्र विलास'।

साहित्यिक विशेषताएं–भाषा अति सुष्ठु एवं ओजस्विनी।

पंडित दुर्गा प्रसाद मिश्र

कृतित्त्व पत्र- संवत् 135-'उचित वक्ता'-कोलकाता।

सदानंद मिश्र

कृतित्त्व पत्र- संवत् 1935-'सार सुधा निधि' कोलकाता।

राजा रामपाल सिंह- काला कांकर निवासी मनस्वी एवं देशभक्त।

कृतित्त्व पत्र- संवत् 1940-'हिंदोस्थान'- इंग्लैंड। भारतेंदु के स्वर्गवासी हो जाने पर संवत् 1942 में इस पत्र ने हिंदी दैनिक का रूप धारण कर लिया और इसके संपादक-पं. मदन मोहन मालवीय, पंडित प्रताप नारायण मिश्र एवं बाल मुकुंद गुप्त रहे।

बाबू रामकृष्ण वर्मा

कृतित्त्व पत्र- सन् 1884-'भारत जीवन' काशी।

अनूदित नाटक-वीर नारी, पद्मावती, कृष्ण कुमारी।

श्रीनिवास दास-

कृतित्त्व–उपन्यास-परीक्षा गुरू।

बाबू गदाधर सिंह

कृतित्त्व

अनूदित उपन्यास- 'बंगविजेता', 'दुर्गेशनंदिनी' बंगला से हिंदी।

राधाकृष्ण दास

भारतेंदु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई राधाकृष्ण दास (सन् 1865-1907 ई.) बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। कविता के अलावा नाटक, उपन्यास एवं आलोचना के क्षेत्रों में सराहनीय साहित्य रचना की।

कृतित्त्व

कविताएं- 'भारत बारह मासा', 'देश दशा'।

नाटक- 'दु:खिनी बाला', 'महाराणा प्रताप'।

साहित्यिक विशेषताएं–उनकी कविताओं में भक्ति,श्रृंगार एवं समकालीन सामाजिक-राजनीतिक चेतना को विशेष महत्व दिया गया है। समसामयिकता की प्रधानता है। प्रकृति के सुंदर चित्र भी दर्शनीय हैं। अंबिका दत्त व्यास की परंपरा का अनुगमन करते हुए उन्होंने रहीम के दोहों को विस्तार देते हुए कुंडलिया की रचना की। सन् 1884 ई. में हिंदी एवं नागरी के प्रचार प्रसार हेतु प्रयाग में 'हिंदी-उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा' की स्थापना हुई। **बाबू श्याम सुंदर दास, पंडित राम नारायण मिश्र, ठाकुर शिव कुमार सिंह**–जैसे उत्साही छात्रों ने संवत् 1950 में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। आदि से अंत तक बाबू श्याम सुंदर दास प्राण स्वरूप स्थित होकर तत्पर रहे। इसके प्रथम सभापति बाबू राधा कृष्ण दास हुए। इसके सहायकों में रायबहादुर पंडित लक्ष्मी शंकर मिश्र, स्वामी बाबू राम दीन सिंह, बाबू राम कृष्ण वर्मा, बाबू गदाधर सिंह तथा बाबू कार्तिका प्रसाद के नाम प्रमुख हैं। इस सभा का मूल उद्देश्य नागरी अक्षरों का प्रचार तथा हिंदी साहित्य की समृद्धि रहा है।

पंडित रविदत्त शुक्ल

'देवाक्षर चरित्र'-प्रहसन।

पंडित गौरी दत्त

मेरठ निवासी सारस्वत ब्राह्मण अध्यापक थे। 40 वर्ष की अवस्था में अपनी संपूर्ण सम्पत्ति नागरी प्रचारिणी सभा काशी के नाम लिख दी। सन्यासी हो कर नागरी प्रचार का झंडा उठा लिया। इनके व्याख्यानों के प्रभाव स्वरूप मेरठ में अनेक देवनागरी स्कूल स्थापित हो गए।

कृतित्त्व–'गौरी नागरी कोश'।

पंडित मदन मोहन मालवीय-

'अदालती लिपि और प्राइमरी शिक्षा' पुस्तक।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

कृतित्त्व

'सभा की ग्रंथ माला' में कई पुराने कवियों के अच्छे-अच्छे अप्रकाशित ग्रंथों की सूची प्रकाशित हुई।

कोश- 'वैज्ञानिक कोश', 'हिंदी शब्दसागर'।

पत्रिका- 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'।

संपादन-

ऐतिहासिक काव्य–'छत्र प्रकाश', 'सुजान चरित्र', 'जंगनामा', 'पृथ्वीराज रासो', 'परमाल रासो' आदि।

ग्रंथावली- 'तुलसी', 'जायसी', 'भूषण', 'देव'।

मनोरंजन पुस्तक माला- विभिन्न विषयों पर सैकड़ों उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

भारतेंदु युग के अन्य कवि

भारतेंदु युग में तत्कालीन विभिन्न परिवेश के प्रति जैसी जागरूकता का आविर्भाव हुआ उसका निर्वाह उस युग के गौण कवियों से नहीं हो सका। उन्होंने भक्ति-भावना एवं शृंगार वर्णन को ही अपनी रचना का विषय बनाया–

नवनीत चतुर्वेदी-'कुब्जा पचीसी', (रीति पद्धति की सरस रचना), **गोविंद गिल्ला भाई**-'शृंगार-सरोजिनी', 'पावस पयोनिधि', 'राधा मुख षोडसी' तथा 'षड्तु' (भक्ति एवं प्रेम वर्णन विषयक रचनाएं), **दिवाकर भट्ट**-'नखशिख' एवं 'नवोढ़ारत्न' (रीति-पद्धति की रचनाएं), **राम कृष्ण वर्मा 'बलबीर'**-'बलबीर पचासा'(**सूर्यपुराधीश राजेश्वरी प्रसाद सिंह 'प्यारे'**–

'प्यारे प्रमोद', **गुलाब सिंह**-'प्रेम सतसई' एवं **राव कृष्ण देव शरण सिंह 'गोप'**-'प्रेम-संदेशा' (शृंगार रस की कृति) आदि।

इनके अनेक छंदों में नायक-नायिका की मनोदशाओं का सरस प्रस्तुतीकरण किया गया है। भारतेंदु युग पुरातन और नवीन के संधि स्थल पर अवस्थित है, जिसके परिणामस्वरूप कवियों में मध्यकालीन वैयक्तिकता के साथ-साथ समाज और राष्ट्र उद्बोधनकारी, लोकमंगलकारी दृष्टि अर्थात् समष्टि या सामाजिकता

की ओर आकर्षण पैदा हुआ है। विचार-दर्शन में या तो एक प्रकार की उलझन है अथवा समकालीन परिवेश में उन्हें परस्पर विरोधी दृष्टिकोण अपनाने हेतु बाध्य कर दिया है। इस युग में प्रवृत्ति मूलक प्रेम काव्य, दास्य भक्ति या माधुर्य भक्ति की रचनाएं एवं सुधारवादी जीवन दृष्टि वाली रचनाएं तीन काव्य प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं।

3

द्विवेदी युग

महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य आधुनिक हिन्दी साहित्येतिहास का आदिकाल है। इसका पहला चरण भारतेन्दु-युग है एवं दूसरा चरण द्विवेदी-युग। महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे साहित्यकार थे, जो बहुभाषाविद् होने के साथ ही साहित्य के इतर विषयों में भी समान रुचि रखते थे। उन्होंने सरस्वती का अठारह वर्षों तक संपादन कर हिन्दी पत्रकारिता में एक महान कीर्तिमान स्थापित किया था। वे हिन्दी के पहले व्यवस्थित समालोचक थे, जिन्होंने समालोचना की कई पुस्तकें लिखी थीं। वे खड़ी बोली हिन्दी की कविता के प्रारंभिक और महत्वपूर्ण कवि थे। आधुनिक हिन्दी कहानी उन्हीं के प्रयत्नों से एक साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकी थी। वे भाषाशास्त्री थे, अनुवादक थे, इतिहासज्ञ थे, अर्थशास्त्री थे तथा विज्ञान में भी गहरी रुचि रखने वाले थे। अंततः वे युगांतर लाने वाले साहित्यकार थे या दूसरे शब्दों में कहें, युग निर्माता थे। वे अपने चिन्तन और लेखन के द्वारा हिन्दी प्रवेश में नव-जागरण पैदा करने वाले साहित्यकार थे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के पहले साहित्यकार थे, जिनको 'आचार्य' की उपाधि मिली थी। इसके पूर्व संस्कृत में आचार्यों की एक परंपरा थी। मई, 1933 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा ने उनकी सत्तरवीं वर्षगाँठ पर बनारस में एक बड़ा साहित्यिक आयोजन कर द्विवेदी का अभिनंदन किया था उनके सम्मान में द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन कर, उन्हें समर्पित किया था। इस अवसर पर द्विवेदी जी ने जो अपना वक्तव्य दिया था, वह 'आत्म-निवेदन' नाम से प्रकाशित

हुआ था। इस 'आत्म-निवेदन' में वे कहते हैं, ''मुझे आचार्य की पदवी मिली है। क्यों मिली है, मालूम नहीं। कब, किसने दी है, यह भी मुझे मालूम नहीं। मालूम सिर्फ इतना ही हैं कि मैं बहुधा-इस पदवी से विभूषित किया जाता हूँ।. ...शंकराचार्य, मध्वाचार्य, सांख्याचार्य आदि के सदृश किसी आचार्य के चरणरज-कण की बराबरी मैं नहीं कर सकता। बनारस के संस्कृत कॉलेज या किसी विश्वविद्यालय में भी मैंने कदम नहीं रखा। फिर इस पदवी का मुस्तहक मैं कैसे हो गया ?'' महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मैट्रिक तक की पढ़ाई की थी। तत्पश्चात् वे रेलवे में नौकरी करने लगे थे।

उसी समय इन्होंने अपने लिए सिद्धान्त निश्चित किए-वक्त की पाबंदी करना, रिश्वत न लेना, अपना काम ईमानदारी से करना और ज्ञान-वृद्धि के लिए सतत प्रयत्न करते रहना। द्विवेदी जी ने लिखा है, ''पहले तीन सिद्धान्तों के अनुकूल आचरण करना तो सहज था, पर चौथे के अनुकूल सचेत रहना कठिन था। तथापि सतत् अभ्यास से उसमें भी सफलता होती गई। तारबाबू होकर भी, टिकट बाबू, मालबाबू, स्टेशन मास्टर, यहाँ तक कि रेल पटरियाँ बिछाने और उसकी सड़क की निगरानी करनेवाले प्लेट-लेयर (Permanent way Inspector) तक का भी काम मैंने सीख लिया। फल अच्छा ही हुआ। अफसरों की नजर मुझ पर पड़ी। मेरी तरक्की होती गई। वह इस तरह की एक दफे मुझे छोड़कर तरक्की के लिए दरख्वास्त नहीं देनी पड़ी।'' द्विवेदी जी 15 रूपये मासिक पर रेलवे में बहाल हुए थे और जब उन्होंने 1904 ई. में नौकरी छोघ्ड़ी, उस वक्त 150 रूपये मूल वेतन एवं 50 रूपये भत्ता मिलता था, यानी कुल 200 रूपये।

उस जमाने में यह एक बहुत बड़ी राशि थी। वे 18 वर्ष की उम्र में रेलवे में बहाल हुए थे। उनका जन्म 1864 ई. में हुआ था और 1882 ई, से उन्होंने नौकरी प्रारंभ की थी। नौकरी करते हुए वे अजमेर, बंबई, नागपुर, होशंगाबाद, इटारसी, जबलपुर एवं झाँसी शहरों में रहे। इसी दौरान उन्होंने संस्कृत एवं ब्रजभाषा पर अधिकार प्राप्त करते हुए पिंगल अर्थात् छंदशास्त्र का अभ्यास किया। उन्होंने अपनी पहली पुस्तक 1895 ई. में श्रीमहिम्नस्तोत्र की रचना की, जो पुष्यदंत के संस्कृत काव्य का ब्रजभाषा में काव्य रूपांतर है। द्विवेदी जी ने सभी पद्यरचनाओं का भावार्थ खड़ी बोली गद्य में ही किया है। उन्होंने इसकी भूमिका में लिखा है, ''इस कार्य में हुशंगाबादस्थ बाबू हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ का जो सांप्रत मध्यप्रदेश राजधानी नागपुर में विराजमान हैं, मैं परम कृतज्ञ हूँ।'' अपने 'आत्म-निवेदन' में

उन्होंने लिखा है, ''बचपन से मेरा अनुराग तुलसीदास की रामायण और ब्रजवासीदास के ब्रजविलास पर हो गया था। फुटकर कविता भी मैंने सैकड़ों कंठ कर लिए थे। हुशंगाबाद में रहते समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कविवचन सुधा और गोस्वामी राधाचरण के एक मासिक पत्र ने मेरे उस अनुराग की वृद्धि कर दी। वहीं मैंने बाबू हरिश्चंद्र कुलश्रेष्ठ नाम के एक सज्जन से, जो वहीं कचहरी में मुलाजिम थे, पिंगल का पाठ पढ़ा। फिर क्या था, मैं अपने को कवि ही नहीं, महाकवि समझने लगा।

मेरा यह रोग बहुत दिनों तक ज्यों का त्यों बना रहा।'' 1889 से 1892 ई. तक द्विवेदी जी की इस प्रकार की कई पुस्तकें प्रकाशित हुई-विनय-विनोद, विहार-वाटिका, स्नेहमाला, ऋतु तरंगिनी, देवी स्तुति शतक, श्री गंगालहरी आदि। 1896 ई. में इन्होंने लॉर्ड बेकन के निबंधों का हिन्दी में भावार्थ मूलक रूपांतर किया, जो बेकन-विचार-रत्नावली पुस्तक में संकलित हैं। 1898 ई. में इन्होंने हिन्दी में कालिदास की आलोचना लिखी, जो हिन्दी की पहली आलोचनात्मक पुस्तक है। 1988 ई. में श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम पर इन्होंने नैषध-चरित-चर्चा नामक आलोचनात्मक एवं गवेषणात्मक पुस्तक लिखी। यह सिलसिला जो शुरू हुआ, वह 1930-31 ई. तक चला और द्विवेदी जी की कुल पच्चासी पुस्तकें प्रकाशित हुई।

जनवरी, 1903 ई. से दिसंबर, 1920 ई. तक इन्होंने सरस्वती नामक मासिक पत्रिका का संपादन कर एक कीर्तिमान स्थापित किया था, इसीलिए इस काल को हिन्दी साहित्येतिहास में 'द्विवेदी-युग' के नाम से जाना जाता है। अपने प्रकांड पांडित्य के कारण इन्हें 'आचार्य' कहा जाने लगा। उनके व्यक्तित्त्व के बारे में आचार्य किशोरी दास वाजपेयी ने लिखा है, ''उनके सुदृढ़ विशाल और भव्य कलेवर को देखकर दर्शक पर सहसा आतंक छा जाता था और यह प्रतीत होने लगता था कि मैं एक महान ज्ञानराशि के नीचे आ गया हूँ।'' द्विवेदी जी का मानना था कि 'ज्ञान-राशि' के संचित कोष का ही नाम साहित्य है।' द्विवेदी जी स्वयं तो एक 'महान ज्ञान-राशि' थे ही उनका संपूर्ण वांग्मय भी संचित ज्ञानराशि है, जिससे होकर गुजरना अपनी जातीय परंपरा को आत्मसात करते हुए विश्वचिन्तन के समक्ष भी होना है। डॉ. रामविलास शर्मा ने द्विवेदी जी के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है, ''द्विवेदी जी ने अपने साहित्य जीवन के आरंभ में पहला काम यह किया कि उन्होंने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। उन्होंने जो पुस्तक बड़ी मेहनत से लिखी और जो आकार में उनकी और पुस्तकों से बड़ी

है, वह संपत्तिशास्त्र है।.....अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के कारण द्विवेदी जी बहुत-से विषयों पर ऐसी टिप्पणियाँ लिख सके जो विशुद्ध साहित्य की सीमाएँ लाँघ जाती हैं।

इसके साथ उन्होंने राजनीति विषयों का अध्ययन किया और संसार में जो महत्त्वपूर्ण राजनीति घटनाएँ हो रही थीं, उन पर उन्होंने लेख लिखे। राजनीति और अर्थशास्त्र के साथ उन्होंने आधुनिक विज्ञान से परिचय प्राप्त किया और इतिहास तथा समाजशास्त्र का अध्ययन गहराई से किया। इसके साथ भारत के प्राचीन दर्शन और विज्ञान की ओर इन्होंने ध्यान दिया और यह जानने का प्रयत्न किया कि हम अपने चिन्तन में कहाँ आगे बढ़े हुए हैं और कहाँ पिछड़े हैं। इस तरह की तैयारी उनसे पहले किसी संपादक ने न की थी। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी प्रवेश में नवीन सामाजिक चेतना के प्रसार के लिए वह सबसे उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध हुए।''

ऐसे महान ज्ञान-राशि के पुंज थे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी। किन्तु रामविलास शर्मा के पूर्व जितने भी आलोचक हुए, उन्होंने द्विवेदी जी का उचित मूल्यांकन तो नहीं ही किया, अपितु उनका अवमूल्यन ही किया। इन महान आलोचकों में रामचन्द्र शुक्ल, नंददुलारे वाजपेयी एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रमुख हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास में द्विवेदी जी पर जो टिप्पणी की है, उस पर एक नजर डालें, ''द्विवेदी जी ने सन् 1903 ई. में सरस्वती के संपादन का भार लिया। तब से अपना सारा समय लिखने में ही लगाया। लिखने की सफलता वे इस बात में मानते थे कि पाठक भी उससे बहुत-कुछ समझ जाएँ। कई उपयोगी पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने फुटकर लेख भी बहुत लिखे। पर इन लेखों में अधिकतर लेख 'बातों के संग्रह' के रूप में ही हैं। भाषा के नूतन शक्ति चमत्कार के साथ नए-नए विचारों की उद्‌भावना वाले निबंध बहुत ही कम मिलते हैं।

स्थायी निबंधों की श्रेणी में चार ही लेख, जैसे 'कवि और कविता', 'प्रतिभा' आदि आ सकते हैं। पर ये लेखनकाल या सूक्ष्म विचार की दृष्टि से लिखे नहीं जान पड़ते। 'कवि और कविता' कैसा गंभीर विषय है, कहने की आवश्यकता नहीं। पर इस विषय की बहुत मोटी-मोटी बातें बहुत मोटे तौर पर कहीं गई हैं।'' इसी प्रसंग में रामचन्द्र शुक्ल आगे लिखते हैं, ''कहने की आवश्यकता नहीं कि द्विवेजी जी के लेख या निबंध विचारात्मक श्रेणी में आएँगे। पर विचार की वह गूढ़ गुंफित परंपरा उनमें नहीं मिलती जिससे पाठक की बुद्धि

उत्तेजित होकर किसी नई विचार-पद्धति पर दौड़ पड़े। शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरम उत्कर्ष वहीं कहा जा सकता है, जहाँ एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबाकर कसे गए हों और एक-एक वाक्य किसी संबद्ध विचारखंड के लिए हों। द्विवेदी जी के लेखों को पढ़ने में ऐसा जान पड़ता हैं कि लेखक बहुत मोटी अक्ल के पाठकों के लिए लिख रहा है।''

अब आप देखें कि महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेखन के प्रति रामचंद्र शुक्ल की ये टिप्पणी पढ़कर हिन्दी का कोई भी पाठक उससे विरक्त होगा या आसक्त। रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास को हिन्दी के विद्यार्थी साठ-पैंसठ वर्षों से आप्त वचनों की तरह याद करते आ रहे हैं। ऐसे में मूल पाठ से उनके आप्त वाक्यों का यदि मिलान कर परीक्षण न किया जाए, तो अनर्थ होगा ही। रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के सबसे बड़े समालोचक, सबसे बड़े साहित्येतिहास-लेखक हैं। इसी इतिहास में वे महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक योगदानों को सिर्फ भाषा-परिष्कारकर्त्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके शब्द हैं, ''यद्यपि द्विवेदी जी ने हिन्दी के बड़े-बड़े कवियों को लेकर गंभीर साहित्य समीक्षा का स्थायी साहित्य नहीं प्रस्तुत किया, पर नई निकली पुस्तकों की भाषा की खरी आलोचना करके हिन्दी साहित्य का बड़ा भारी उपकार किया है।

यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसा अव्यवस्थित, व्याकरणविरुद्ध और ऊटपटाँग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परंपरा जल्दी न रुकती। उसके प्रभाव से लेखक सावधान हो गए और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी उन्होंने अपना सुधार किया।'' दरअसल शुक्ल जी जिस आलोचना-पद्धति का सहारा लेकर उक्त बातें लिख रहे थे, उसे अंग्रेजी में Judicial Criticism और हिन्दी में निर्णयात्मक आलोचना कहते हैं और इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके आलोचना के क्षेत्र में आलोचकों का ध्यान ऐतिहासिक युग, वातावरण एवं जीवन से हटाकर अधिकांशतः कलापक्ष तक ही सीमित कर दिया है। कलापक्ष की ओर ध्यान देने वाले आलोचकों का कहना है कि युगीन परिस्थितियाँ, युगीन चेतना और युग सत्य निरंतर परिवर्तनशील हैं अतएव इन्हें आधार नहीं बनाया जा सकता। उनकी परिवर्तनशीलता के कारण इन्हें साहित्य का स्थायी मानदंड स्वीकार किया जा सकता। लेकिन इसी के साथ यह भी सत्य है कि ऐसी दशा में निर्णयात्मक आलोचना का कोई मूल्य नहीं रहेगा।

इसका मुख्य कारण है ऐसे आलोचक का रचनाकार और रचना पर फतवे जारी करना। यही कारण है कि रामचंद्र शुक्ल ने द्विवेदी जी के विचारों को, उनके

संचित ज्ञान-राशि पर ध्यान नहीं दिया और उनकी भाषा पर विचार किया। 'मोटी-मोटी बातें बहुत मोटे तौर पर'-यह अभिव्यक्ति की प्रणाली पर बात की जा रही है, जो निस्संदेह भाषा है। जब द्विवेदी जी मूर्ख या मोटे दिमाग वालों के लिए लिखते थे और मोटी तरह से लिखते थे तो उन्होंने भाषा परिष्कार कैसे किया ? जिस लेखक को भाषा की सतही समझ होगी, वह दूसरे लेखकों की भाषा को दुरुस्त कैसे करेगा ? पुनः रामचन्द्र शुक्ल की बातों पर विचार करें-महावीर प्रसाद द्विवेदी ने शाश्वत साहित्य या स्थायी साहित्य नहीं लिखा। उनका महत्त्व भाषा-सुधार में है और उनकी भाषा कैसी है-मोटी अक्लवालों के लिए है। इस तरह की बातों से आचार्य शुक्ल का इतिहास भरा हुआ है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी-नवरत्न की समीक्षा लिखते हुए लिखा है, ''इस तरह की बातें किसी इतिहास कार के ग्रंथ में यदि पाई जाएँ तो उसके इतिहास का महत्व कम हुए बिना नहीं रह सकता। इतिहास-लेखक की भाषा तुली हुई होनी चाहिए। उसे बेतुकी बातें न हाँकनी चाहिए। अतिशयोक्तियाँ लिखना इतिहासकार का काम नहीं। उसे चाहिए कि वह प्रत्येक शब्द और वाक्यांश के अर्थ को अच्छी तरह समझकर उसका प्रयोग करे।''

सन् 1933 ई. में आचार्य द्विवेदी को नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया गया। इसकी प्रस्तावना श्यामसुंदर दास एवं रायकृष्णदास के नाम से प्रकाशित हुई, किन्तु यह लिखी गई नंददुलारे वाजपेयी द्वारा। इसलिए यह 1940 ई. में प्रकाशित वाजपेयी जी की पुस्तक हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी में संकलित है। इसमें यह विचार किया गया है कि स्थायी या शाश्वत साहित्य में द्विवेदी जी का साहित्य परिगणित हो सकता है या नहीं। इस दृष्टिकोण से महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित संपूर्ण साहित्य को अयोग्य ठहरा दिया गया। सिर्फ उनके द्वारा संपादित सरस्वती के अंकों को ही महत्त्व दिया गया।

नामकरण

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही यह काल 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। इसे 'जागरण-सुधारकाल' भी कहा जाता है। इस समय ब्रिटिश दमन-चक्र बहुत बढ़ गया था। जनता में असंतोष और क्षोभ की भावना प्रबल थी। ब्रिटिश शासकों द्वारा लोगों का अर्थिक-शोषण भी चरम पर था। देश के स्वाधीनता संग्राम के नेताओं द्वारा पूर्ण-स्वराज्य की मांग की जा रही थी। गोपालकृष्ण गोखले और लोकमान्य गंगाधर तिलक जैसे नेता देश के स्वतंत्रता

संग्राम का नेतृत्व कर रहे थे। इस काल के साहित्यकारों ने न सिर्फ देश की दुर्दशा का चित्रण किया, बल्कि देशवासियों को आजादी की प्राप्ति की प्रेरणा भी दी। राजनीतिक चेतना के साथ-साथ इस काल में भारत की आर्थिक चेतना भी विकसित हुई।

द्विवेदीजी का योगदान

सन 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ। इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालमुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्णसिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं, किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है। हिन्दी कहानी का वास्तविक विकास 'द्विवेदी युग' से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी को कुछ विद्वान् हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की 'दुलाई वाली', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा भी कुछ नाटक लिखे गए।

नाट्य साहित्य

'द्विवेदी युग' नाट्य साहित्य की दृष्टि से सबसे कम समृद्ध है। इस काल में मौलिक नाटकों के सृजन में कमी आई। ऐसा लगता है कि नाटकीय गतिविधि धीरे-धीरे काफी कम हो गई थीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में जो नाटक मंडलियाँ थीं, वे व्यावसायिक तो थीं नहीं, इसलिए समय के साथ वे काल के गाल में समा गईं। इस युग के प्रसिद्ध रंगकर्मी एवं उच्च कोटि के अभिनेता माधव शुक्ल ने अव्यावसायिक रंगमंच को फिर से जिन्दा करने की कोशिश की। बात 1908 की है, जब उन्होंने इलाहाबाद की रामलीला नाटक मंडली को झाड़-पोछ कर सुरुचि सम्पन्न लोगों की पसंद लायक बनाया। यहाँ से कई नवजागरण का

संदेश देने वाले नाटकों का मंचन हुआ। राष्ट्रीय संस्कृति और सामाजिक चेतना का संस्कार करने वाले नाटकों का रंगमंच पर अभिनय प्रस्तुत किया गया।

रचनाएँ

राधाकृष्णदास द्वारा लिखित 'राणाप्रताप' और माधव शुक्ल द्वारा स्वयं लिखित 'महाभारत' नाटकों के मंचन ने तो धूम ही मचा दी। इससे रंगमंच की दुनिया में एक नई हलचल मची। इससे प्रोत्साहित होकर कई रंगनाटक लिखे गए। माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन युद्ध' (1918), बदरीनाथ भट्ट कृत 'दुर्गावती', 'कुरुवनदहन' और 'वेनचरित', बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'प्रभास मिलन' इस समय के लिखे हुए बहुत ही प्रभावशाली नाटक थे।

नाट्य लेखन

इस युग के पौराणिक नाटकों में प्रमुख थे-

भगवान श्रीकृष्ण के चरित से संबंधित नाटक -

राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदामा' (1904), शिवनंदन सहाय कृत 'सुदामा' (1907), बनवारीलाल कृत 'कृष्णकथा' और 'कंसवध' (1909)।

रामचरित संबंधी नाटक

रामनारायण मिश्र कृत 'जनक बाड़ा' (1906), गंगाप्रसाद कृत 'रामाभिषेक' (1910), गिरधरलाल कृत 'राम वनयात्रा' (1910), नारायण सहाय कृत 'रामलीला' (1911), रामगुलामलाल कृत 'धनुषयज्ञ लीला' (1912)।

पौराणिक पात्रों को लेकर लिखे गए नाटक-

महावीर सिंह कृत 'नल-दमयंती' (1905), गौरचरण गोस्वामी कृत 'अभिमन्यु बध' (1906), सुदर्शनाचार्य कृत 'अनर्घ नलचरित' (1906), बांकेबिहारी लाल कृत 'सावित्री नाटिका' (1908), बालकृष्ण भट्ट कृत 'वेणु संहार' (1909), लक्ष्मी प्रसाद कृत 'उर्वशी' (1910), हनुमंत सिंह कृत 'सती-चरित्र' (1910), शिवनंदन मिश्र कृत 'शकुंतला' (1911), जयशंकर प्रसाद कृत 'करुणालय' (1912), बदरीनाथ भट्ट कृत 'कुरुवन-दहन' (1915), माधव शुक्ल कृत 'महाभारत पूर्वार्द्ध' (1916), हरिदास माणिक कृत 'पाण्डव-प्रताप' (1917), और माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन युद्ध' (1918)।

इन नाटकों में चरित्रों के माध्यम से जनता को उपदेश देने का प्रयास किया गया है। नाटक कला का उपयुक्त विकास इनसे नहीं हुआ। अभिनय तत्त्व भी गौण ही है।

ऐतिहासिक नाटक

ऐतिहासिक नाटक में गंगाप्रसाद गुप्त कृत 'वीर जयमाल' (1903), वृंदावनलाल वर्मा कृत 'सेनापति उदल' (1909), बदरीनाथ भट्ट कृत 'चंद्रगुप्त' (1915), कृष्णप्रकाश सिंह कृत 'पन्ना' (1915), हरिदास माणिक कृत 'संयोगिताहरण' (1915), जयशंकर प्रसाद कृत 'राज्य श्री' (1915) और परमेष्ठीदास जैन कृत 'वीर चूड़ावत सरदार' (1918)।

जयशंकर प्रसाद जी के नाटक को छोड़कर किसी में इतिहास का निर्माण नहीं हो सका।

सामाजिक नाटक

सामाजिक नाटक में प्रतापनारायण मिश्र कृत 'भारत दुर्दशा' (1902), भगवती प्रसाद कृत 'वृद्ध-विवाह' (1905), जीवानंद शर्मा कृत 'भारत विजय' (1906), कृष्णानंद जोशी कृत 'उन्नति कहां से होगी' (1915), मिश्र बंधु कृत 'नेत्रोन्मीलन' (1915)।

इन नाटकों में सामाजिक विकृतियों को उभारने की कोशिश की गई है। इनका लक्ष्य समाज सुधार है। किन्तु नाट्यकला की दृष्टि से इनका महत्व अधिक नहीं है।

रोमांचकारी नाटक

इस युग में रोमांचकारी नाटक भी लिखे गए। अलौकिक घटनाओं को केन्द्र में रखकर ये नाटक पारसी रंगमंच की शैली में लिखे गए। इसकी विषयवस्तु फारसी प्रेम कथाओं पर आधारित होती थी। कुछ रोमांचकारी नाटक पौराणिक कथाओं पर भी आधारित थे। इन नाटकों की शुरुआत 'कोरस' से होती थी। मुख्य कथा के समानान्तर एक प्रहसन भी चलता रहता था। यह दर्शकों को हंसाने के लिए होता था। इन नाटकों की भाषा उर्दू मिश्रित हुआ करती थी। बाद के दिनों में साधारण बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग शुरू हो गया। इस श्रेणी के नाटकों की रचना में मुहम्मद मियां 'रौनक', सैयद मेंहदी हसन 'अहसान', नारायण प्रसाद

'बेताब', आगा मोहम्मद 'हश्र' और राधेश्याम कथावचक ने प्रमुख भूमिका निभाई।

प्रहसन नाटक

इस युग में पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, रोमांचकारी, आदि विषयों के अलावा प्रहसन नाटक भी लिखे गए। बद्रीनाथ भट्ट कृत 'चुंगी की उम्मीदवारी' (1912), गंगाप्रसाद श्रीवास्तव कृत 'उलटफेर' (1918) और 'नोंक झोंक' (1918)।

अनूदित नाटक

अनूदित नाटक की श्रेणी में संस्कृत से सदानंद अवस्थी ने 'नागानंद' (1906), लाला सीताराम ने 'मृच्छकटिक' (1913), कविरत्न सत्यनारायण ने 'उत्तर रामचरित' किया। अंग्रेजी से शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद लाला सीताराम और चतुर्भुज औदीच्य ने किया। बंगला से ब्रजनंदन सहाय ने किया।

रामचन्द्र शुक्ल की विवेचना

'द्विवेदी युग' के नाटकों की विवेचना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं- 'इन मौलिक रूपकों की सूची देखने से यह लक्षित हो जाता हैं कि नाटक की कथावस्तु के लिये लोगों का ध्यान अधिकतर ऐतिहासिक और पौराणिक प्रसंगों की ओर ही गया है। वर्तमान सामाजिक और पारिवारिक जीवन के विविध उलझे हुए पक्षों का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करके उनके मार्मिक या अनूठे चित्र खड़ा करने वाली उद्‌भावना उनमें नहीं पाई जाती।' चूंकि इस युग में भारतेन्दु से आगे बढ़कर शिल्प और संवेदना के स्तर पर कोई नया प्रयोग तो नहीं ही हुआ, इसलिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी रंगमंच की स्थापना का जो काम शुरू किया था, वह आगे न बढ़ सका। बल्कि यो कहें कि इस युग में सृजन की दृष्टि से ह्रास ही हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता की रुचि व्यावसायिक रंगमंचीय नाटकों की तरफ मुड़ गई।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1864 ईस्वी में उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव में हुआ था। इनकी आरंभिक शिक्षा गाँव में ही

हुई। तेरह वर्ष की आयु में अंग्रेजी पढ़ने के लिए इन्होंने रायबरेली के जिला स्कूल में प्रवेश लिया। यहीं इन्होंने मजबूरी में फारसी भाषा भी संस्कृत के विकल्प के रूप में पढ़ी। इस स्कूल में एक साल पढ़ने के बाद क्रमशः पुरवा, फतेहपुर और उन्नाव के स्कूलों में चार वर्ष पढ़ाई की। आर्थिक कठिनाईयों के चलते इनकी स्कूली शिक्षा यहीं समाप्त हो गई।

आजीविका के लिए द्विवेदी जी ने रेलवे में नौकरी की। इसी सिलसिले में ये मुंबई सहित नागपुर और अजमेर रहे। अपनी निष्ठा और मेहनत के बल पर द्विवेदी जी रेलवे में तरक्की पाते रहे। रेलवे की नौकरी के दौरान ही द्विवेदी जी ने स्वाध्याय से हिन्दी सहित अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी, गुजराती, बांग्ला आदि भाषाओं को सीख लिया था। इन भाषाओं के महत्वपूर्ण ग्रंथों का भी उन्होंने अध्ययन किया। एक उच्चाधिकारी से न बनने के कारण इन्होनें रेलवे की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और सन् 1903 में 'सरस्वती' के सम्पादक का पद ग्रहण कर लिया। 'सरस्वती' का संपादक बनने से पूर्व ही द्विवेदी जी अपने अनुवाद-कार्य और आलोचनात्मक लेखों के कारण हिन्दी भाषा में लिखने वाले चर्चित व्यक्ति बन चुके थे। 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा का परिष्कार करते हुए हिन्दी साहित्य के विकास को गति और दिशा प्रदान की। साथ ही हिन्दी भाषा को ज्ञान-विज्ञान के अन्य विषयों का माध्यम बनाने की कोशिश भी की। सन् 1920 ईस्वी तक 'सरस्वती' का सम्पादन करने के बाद द्विवेदी जी 18 वर्ष तक अपने पैतृक गाँव में ही रहे। इनका अंतिम समय बड़ी कठिनाई में बीता। 21 दिसंबर सन् 1938 ईस्वी द्विवेदी जी का निधन हो गया।

रचनाएं–आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने विपुल मात्र में हिन्दी भाषा में मौलिक लेखन और संस्कृत, अंग्रेजी सहित कई भाषाओं की महत्वपूर्ण पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। द्विवेदी जी की रचनाओं का महत्त्व इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं कि उनके समय में अधिकाँश साहित्यकार और विद्वान हिन्दी भाषा में साहित्य (गद्य और पद्य) की रचना तो कर रहे थे लेकिन ज्ञान-विज्ञान के अन्य विषयों को व्यक्त करने के लिए हिन्दी भाषा को माध्यम नहीं बना रहे थे। द्विवेदी जी ने यह बीड़ा उठाया और साहित्य के साथ ही अन्य विषयों से सम्बंधित लेखन भी हिन्दी भाषा में किया। उनकी रचनाएं निम्नलिखित हैं–

पद्य–मौलिक रचनाएं–'देवी स्तुति शतक', 'कान्यकुब्जावलीव्रतं', 'समाचार पत्र सम्पादक स्तवरू', 'नागरी', 'कान्यकुब्ज-अबला-विलाप', 'काव्य मंजूषा',

'सुमन', 'द्विवेदी काव्य-माला', 'कविता कलाप'। (रचनाओं का प्रकाशन काल 1892 ईस्वी से लेकर 1940 ईस्वी तक है)।

अनुदित रचनाएं–'विनय विनोद' (भर्तहरि के 'वैराग्य शतक' का अनुवाद), 'विहार वाटिका' (विद्यापति के 'गीत गोविन्द' का अनुवाद), 'स्नेह माला' (भर्तहरि के शृंगार शतक' का अनुवाद), 'श्री महिम्न स्तोत्र' (संस्कृत के 'महिम्न स्तोत्र' का अनुवाद), 'गंगा लहरी' (पंडित राज जगन्नाथ की 'गंगा लहरी' का अनुवाद), 'ऋतुतरंगिनी' (कालिदास का 'ऋतुसंहार' का अनुवाद), 'सोहागरात' (अप्रकाशित) बाइरन के 'ब्राइडल नाइट' का अनुवाद) 'कुमारसम्भवसार' (कालिदास का 'कुमारसंभव' का अनुवाद) (रचनाओं का प्रकाशन काल 1889 ईस्वी से लेकर 1902 ईस्वी तक है)।

गद्य-मौलिक रचनाएं–'तरुणोपदेश'(अप्रकाशित), 'हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना', 'नैषधचरित चर्चा', 'हिन्दी कालिदास की समालोचना', 'वैज्ञानिक कोश', 'नाट्यशास्त्र', 'विक्रमांकदेवचरितचर्चा', 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति', 'सम्पत्तिशास्त्र', 'कौटिल्य कुठार', 'कालिदास की निरंकुशता', 'वनिता-विलाप', 'औद्योगिकी', 'रसज्ञ रंजन', 'कालिदास और उनकी कविता', 'सुकवि संकीर्तन', 'अतीत स्मृति', 'साहित्य सन्दर्भ', 'अद्‌भुत आलाप', 'महिलामोद', 'आध्यात्मिकी', 'वैचित्र्य चित्रण', 'साहित्यालाप', 'विज्ञ विनोद', 'कोविद कीर्तन', 'विदेशी विद्वान', 'प्राचीन चिन्ह', 'चरित चर्या', 'पुरावृत', 'दृश्य दर्शन', 'आलोचनांजलि', 'चरित्र चित्रण', 'पुरातत्त्व प्रसंग', 'साहित्य सीकर', 'विज्ञान वार्ता', 'वाग्विलास', 'संकलन', 'विचार विमर्श' (रचनाओं का प्रकाशन काल 1899 ईस्वी से लेकर 1933 ईस्वी तक है)।

अनुदित रचनाएं–'भामिनी विलास' (पंडित राज जगन्नाथ के 'भामिनी विलास' का अनुवाद), 'अमृत लहरी' (पंडित राज जगन्नाथ के 'यमुनास्तोत्र' का भावानुवाद), 'बेकन विचार रत्नावली' (बेकन के प्रसिद्ध निबंधों का अनुवाद), 'शिक्षा' (हर्बर्ट स्पेंसर के 'एज्युकेशन' का अनुवाद), 'स्वाधीनता' (जॉन स्टुअर्ट मिल के 'ऑन लिबर्टी' का अनुवाद), 'जल चिकित्सा' (जर्मन लेखक की पुस्तक 'लुई कोने' के अंग्रेजी अनुवाद का अनुवाद), 'हिन्दी महाभारत' (संस्कृत से अनुवाद), 'रघुवंश' (कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य का भाषानुवाद), 'वेणी-संहार' (संस्कृत कवि भट्टनारायण के 'वेणीसंहार' नाटक का अनुवाद), 'कुमार संभव' (कालिदास के 'कुमारसंभव' का अनुवाद), 'मेघदूत' (कालिदास के 'मेघदूत' का अनुवाद), 'किरातार्जुनियम' (भारवि के

'किरातार्जुनियम' का अनुवाद), 'प्राचीन पंडित और कवि' (अन्य भाषाओं के लेखों के आधार पर प्राचीन कवियों और पंडितों का परिचय), 'आख्यायिका सप्तक' (अन्य भाषाओं की चुनिन्दा सात आख्यायिकाओं का छायानुवाद) (रचनाओं का प्रकाशन काल 1891ईस्वी से लेकर 1927 ईस्वी तक है)।

युग निर्माता साहित्यकार और प्रेरक व्यक्तित्त्व

द्विवेदी जी का व्यक्तित्त्व आत्मसंयमी, अध्ययनशील और निष्ठावान था। हिन्दी भाषा और साहित्य के माध्यम से लोक-रुचि का परिष्कार करना इनका ध्येय था। द्विवेदी जी अपने समय में सम्पादक, लेखक, हिन्दी भाषा प्रचारक, निबंधकार, आलोचक के रूप में प्रसिद्ध थे। महत्वपूर्ण बात यह है कि इनसे प्रेरणा पाकर कई साहित्यकार हिन्दी में प्रतिष्ठित हुए। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, सत्यनारायण कविरत्न, मुंशी प्रेमचंद, अध्यापक पूर्ण सिंह आदि साहित्यकारों की एक लम्बी सूची है, जिन्होंने द्विवेदी जी से हिन्दी भाषा और उसकी विभिन्न शैलियों के प्रयोग के सम्बन्ध में प्रेरणा, परामर्श और शिक्षा ली। हिन्दी साहित्य में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के महत्वपूर्ण कार्य का प्रभाव इतना गहरा पड़ा कि उनके हिन्दी साहित्य सेवा काल (1918 -1920 ईस्वी) को 'द्विवेदी युग' नाम दिया गया। द्विवेदी जी ने स्वंय साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन करते हुए अपने समकालीन साहित्यकारों के सामने हिन्दी भाषा का व्याकरणसम्मत वैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए खड़ी बोली हिन्दी को एकरूपता प्रदान करने की कोशिश की। विषय वस्तु की दृष्टि से भी द्विवेदी जी निरंतर भारत की सही तस्वीर दर्शाने वाले साहित्य की रचना करते रहे और अपनी रचनाओं के माध्यम से जनता को यथासंभव तत्कालीन स्थितियों के अनुरूप उचित दिशा दिखाने की कोशिश करते रहे। यहाँ रामविलास शर्मा का कथन उल्लेखनीय है–द्विवेदी जी के इस कोटि के लेखन का सीधा सम्बन्ध 'भारत-भारती' से वैसे ही है, जैसे भारत की वर्तमान आर्थिक अवस्था का चित्रण करते हुए वे भुखमरी, जमींदारों के अत्याचार, महाजनों की सूदखोरी और किसानों की तबाही की बातें करते हैं तो लगता हैं कि हम प्रेमचन्द के कथा-संसार में घूम रहे हैं। द्विवेदी जी कथा-लेखक नहीं थे और मैथिलीशरण गुप्त की तुलना में कवि भी बहुत साधारण थे, किन्तु वैचारिक स्तर पर वह इन दोनों से आगे हैं, इन दोनों के काव्य-संसार और कथा-संसार की रूप-रेखाएं उनके गद्य में स्पष्ट दिखाई देती हैं।

इस दृष्टि से उन्हें युगानिर्माता कहना पूर्णत: संगत है। "(पृष्ठ-121, महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण- रामविलास शर्मा) रामविलास शर्मा से बहुत पहले आचार्य नंददुलारे वाजपेयी भी कुछ इसी तरह के विचार प्रकट कर चुके थे।" द्विवेदी जी अपने युग के साहित्यिक आदर्शवाद के जनक हैं, जो समय पाकर प्रेमचन्द आदि के उपन्यास-साहित्य में फूला-फला. .... द्विवेदीजी और उनके अनुयायियों का आदर्श, यदि संक्षेप में कहा जाय तो समाज में एक सात्विक ज्योति जगाना था। दीनता और दरिद्रता के प्रति सहानुभूति, समय की सामाजिक और राजनीतिक प्रगति का साथ देना,श्रृंगार के विलास वैभव का निषेध, ये सब द्विवेदी-युग की आधार-शिला है।"(पृष्ठ-44-45, हिन्दी साहित्य–बीसवीं शताब्दी) द्विवेदी युग की रचनाओं का यदि हम अध्ययन करें तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि वह समय समाज-सुधार, नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का था, जिसकी अगुवाई द्विवेदी जी ने की। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने द्विवेदी जी को अपना गुरु माना है–"मेरी उल्टी–सीधी प्राम्भिक रचनाओं का पूर्ण शोधन करके उन्हें 'सरस्वती' में प्रकाशित करना और पत्र द्वारा मेरे उत्साह को बढ़ाना द्विवेदी महाराज का ही काम था।"(पृष्ठ- 439, आचार्य द्विवेदी, बी।आर. धर्मेन्द्र)

गुप्त जी के अतिरिक्त अनेक रचनाकारों की रचनाओं को द्विवेदी जी सुधारते थे और उन्हें नित-नवीन लिखने के लिए उत्साहित करते थे। इस प्रकार हम पाते हैं कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी अपने समकालीन साहित्यकारों के लिए प्रेरणा-स्वरूप थे।

नवजागरण के सजग पुरोधा

द्विवेदी जी तत्कालीन भारत की निरंतर गिरती आर्थिक स्थिति और सामाजिक-सांस्कृतिक अधोपतन के प्रति सचेत थे। उनकी राजनीतिक समझ भी काफी गहरी थी और अर्थशास्त्र के भी वे अच्छे ज्ञाता थे। अंग्रेजी व्यवस्था द्वारा रौंदे गए भारत को पुन: खड़ा करने की दिशा में वे गहराई से चिंतन-मनन किया करते थे। तत्कालीन भारत में किसानों और मजदूरों की दयनीय और शोचनीय दशा से वे भली-भाँति परिचित थे। द्विवेदी जी की इस सजगता का परिचय उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'सम्पत्तिशास्त्र' में देखने को मिलता है। भारत के गाँवों में किसानों की बदहाली के सम्बन्ध में द्विवेदी जी लिखते हैं–"आप देहात में जाकर देखिए, सौ किसानों में कहीं एक-आध आपको ऐसा मिलेगा जिसे रोटी-कपड़े की

तकलीफ न हो। यहाँ हम समय सुकाल की बात कहते हैं। अकाल में तो जो दृश्य देहात में दिखाई पड़ता वह बहुत ही द्रावक होता है।" (सम्पत्तिशास्त्र)

भारत की इस दयनीय हालत और गिरी हुई अर्थव्यवस्था को उबारने का उपाय भी द्विवेदी जी सुझाते हैं –"कलकारखाने खोलने में मिलकर कम्पनियां खड़ी करें तो यथेष्ट पूंजी एकत्र हो सकती है। उससे यदि कारखाने खोले जाएं तो चीजें सस्ती हो जाएं और विदेश से आने वाले माल की कटती कम हो जाएं। देश का धन देश में ही रहे।" (सम्पत्तिशास्त्र)

'सम्पत्तिशास्त्र' में द्विवेदी जी ने संपत्ति के स्वरूप का विस्तार से विश्लेषण किया है। साथ ही, संपत्ति की वृद्धि, विनिमय-वितरण और इसके उपयोग की गहन समीक्षा भी की है। व्यवसाय-व्यापार, बैंकिंग-बीमा, कर-साख आदि को भी इस पुस्तक में विस्तार से बताया गया है। आज भी यह पुस्तक उपयोगी है।

द्विवेदी जी ने निरंतर अपनी भाषा और संस्कृति में निजता की भावना को प्रमुखता देते हुए राष्ट्रीयता की भावना को बल दिया और हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण की पृष्ठभूमि तैयार की। भारतीय जनता को सचेत करने के लिए उन्होंने कभी नरम शब्दों का इस्तेमाल किया तो कभी उसे आंदोलित करने के लिए ललकारा और कभी व्यंग्य का सहारा भी लिया। भारतीयों को अपनी दशा और जिम्मेवारी का अहसास द्विवेदी जी इन शब्दों में करवाते हैं–"मनुष्य अपना इतिहास खुद बनाता है, इतिहास का निर्माता ईश्वर नहीं है। ज्ञान से मनुष्य उन्नति करता है तो अज्ञान से अवनत भी होता है। प्राकृतिक कारणों से विपत्ति पड़े, किसी देश का नाश हो, वहां लाचारी है, परन्तु जिनका पराभव उन्हीं की मूर्खता और बेपरवाही के कारण दूसरों के द्वारा हो जाता है उन्हें तो डूब मरना चाहिए।"(पृष्ठ-121, महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण- रामविलास शर्मा) ध्यातव्य है कि भारतेंदु हरिश्चन्द्र भी 'भारत दुर्दशा' नाटक में सोये हुए भारत को जगाने के लिए ऐसे ही शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। इस रूप में कह सकते हैं कि साहित्य के माध्यम से जिस 'जागरण' की शुरुआत अपने समय में भारतेंदु कर गए थे, द्विवेदी जी भी उसी 'जागरण' में मनोयोग से लगे हुए थे। इस रूप में द्विवेदी जी उस कड़ी के रूप में भी दिखाई देते हैं, जो पूर्ववर्ती और परवर्ती हिन्दी साहित्य को जोड़ती है।

उस समय चल रहे विभिन्न सुधारवादी आन्दोलनों और संस्थाओं की तर्कसंगत बातों का समर्थन वह अपने लेखों के माध्यम से करते थे। नारी को द्विवेदी जी ने पुरुष के समतुल्य माना और लगातार नारी उत्थान, नारी-शिक्षा तथा

नारी जागरण की बात की। तत्कालीन समय में नारी की स्थिति के चित्रण के साथ ही उन्होंने पुराण और इतिहास के उन नारी-पात्रों पर लिखने की मुहिम छेड़ी जिन्हें सामान्य समाज और साहित्यकार-समाज ने अब तक उपेक्षित कर रखा था। इस सन्दर्भ में उनका 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' नामक निबन्ध काफी चर्चित हुआ। द्विवेदी जी से ही प्रेरणा लेते हुए अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों ने राधा, यशोधरा, विधृता आदि नारी पात्रों को युग की आवश्यकता के अनुकूल नवीन सामाजिक स्वरूप में प्रस्तुत करते हुए नारी के महत्व को प्रतिपादित किया।

नवजागरण के उस दौर में शिक्षा का महत्त्व बहुत अधिक था। द्विवेदी जी इस बात को भली-भाँति समझते थे। अतः भारत की सामाजिक दशा सुधारने के लिए उन्होंने आधुनिक शिक्षा पर जोर दिया और 'सरस्वती' में लगातार ऐसे लेखों को प्रकाशित करने की मुहिम चलाई जिनमे भारत में अशिक्षा की स्थिति और उसके कारण, उनसे जुड़ी समस्याओं, विद्यालयों की कमी इत्यादि का विश्लेषण होता था। इसी सिलसिले में उन्होंने अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई शिक्षा नीति और भेद-नीति की पोल खोलते हुए जनता को जागरूक किया।

द्विवेदी जी विज्ञान के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने लगातार विज्ञान विषयक सामग्री स्वंय लिखकर और प्रकाशित कर अपने पाठकों को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करने की कोशिश की। द्विवेदी जी प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति पर गर्व करते हुए पश्चिम के आधुनिक विज्ञान और विकासवाद की महत्ता को भी स्वीकारते हैं और दोनों के विवेकपूर्ण इस्तेमाल की बात करते हैं।

द्विवेदी जी की सामाजिक दृष्टि आदिवासियों को भी अपने में समावेशित करके चलती है। जिन आदिवासियों को आज सवतंत्रता के 67 साल बाद भी मुख्यधारा में शामिल नहीं किया जा सका है, उन आदिवासियों को 100 साल पहले द्विवेदी जी अपने सहयोगी लेखकों के साथ 'सरस्वती' में शामिल कर चुके थे। यही नहीं, उनकी दृष्टि अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका के आदिवासियों और कबीलाईयों तक गई है। आदिवासियों के खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाजों, मनोरंजन, स्त्रियों की स्थिति, शारीरिक-सौष्ठव आदि को बताते हुए इन्होनें साधारण जनता से उनका परिचय कराने की कोशिश की। उनकी इस भूमिका के आधार पर हम कह सकते हैं कि "द्विवेदी जी सीमित अर्थ में साहित्यकार नहीं हैं। उनका उद्देश्य हिन्दी प्रदेश में नवीन सामाजिक चेतना का प्रसार करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह समाज-विज्ञान, प्रकृति-विज्ञान, दर्शनशास्त्र

और साहित्य, इन सभी के विकास के लिए प्रयत्न करते हैं। साहित्य उनमें से एक है, शिक्षा-प्रसार के लिए आवश्यक अन्य विषय उसके अंतर्गत नहीं हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदी की भूमिका एक महान शिक्षक की भूमिका है, केवल साहित्यकार की नहीं।"(पृष्ठ-270, महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण-रामविलास शर्मा)

कविता के नवीन वर्ण्य-विषय

कविता के क्षेत्र में द्विवेदी जी ने कवियों को नए-नए विषयों और भावों के साथ नवीन शैली में रचना करने के लिए प्रेरित किया और यथासंभव उनका मार्गदर्शन भी किया। द्विवेदी जी स्वयं कोई बड़े कवि नहीं थे लेकिन हिन्दी कविता की भाषा को प्रतिष्ठित करने में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

खड़ी बोली हिन्दी में कालिदास के भावों की सरसता और अभिव्यक्ति की व्यंजना का आदर्श रखने के लिए द्विवेदी जी ने 'कुमारसंभव' के प्रथम पांच सर्गों का पद्यात्मक सारांश हिन्दी में प्रस्तुत किया। द्विवेदी जी की कविताओं का काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से महत्त्व कम ही है, लेकिन एतिहासिक दृष्टि से महत्त्व अवश्य है। द्विवेदी जी ने कविता की परिभाषा इस प्रकार दी है–"अंत:करण की वृतियों के चित्रण का नाम कविता है। नाना प्रकार के योग से उत्पन्न हुए मनोभाव जब मन में नहीं समाते तब वे आप ही आप मुख मार्ग से बाहर निकलने लगते हैं, वहीं कविता है।" (पृष्ठ-68, आचार्य द्विवेदी, बी.आर. धर्मेन्द्र)

कविता के विषय में द्विवेदी जी द्वारा लिखी गई निम्न पंक्तियाँ हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रसिद्ध हैं, जिनको लेकर आलोचकों ने द्विवेदी युगीन कविता को नीरस और इतिवृतात्मक घोषित किया है–

सुरम्यरूपे! रसराशिरंजिते! विचित्रवर्णाभरणे ! कहाँ गई?
अलौकिककानंदविधायिनी! महाकवीन्द्रकांते! कविते ! अहो कहाँ?
सुरम्यता ही कमनीय कान्ति है अमूल्य आत्मा रस है मनोहरे?
शरीर तेरा सब शब्दमात्र है, नितांत निष्कर्ष यही यही, यही। (पृष्ठ-291, काव्यमाला)

यह बात सच हैं कि द्विवेदी जी की अधिकाँश कवितायेँ वर्णनात्मक और इतिवृतात्मक हैं, रस का उनमें अभाव है। हाँ, भाव और विचार को सीधे-साधे ढंग से कहने में वे सफल हैं। उनकी कविताओं में जीवन की सच्चाई वर्णित है। जन-समाज को स्वस्थ और सही दिशा की ओर ले जाना उनकी कविताओं का

उद्देश्य है। द्विवेदी जी ने जहां भी अलंकारों को कविता में शामिल करने की कोशिश की है वहीं पर वे बोझिल हो गई हैं। इनकी रचनाओं में काव्योचित लालित्य नहीं आ पाया है। द्विवेदी जी अपनी क्षमता से भली-भांति परिचित थे। इसीलिए विनम्र शब्दों में कहते हैं–"कविता करना आप लोग चाहे जैसा समझें हमें तो एक तरह दुस्साध्य ही जान पड़ता है। अग्यता और अविवेक के कारण कुछ दिन हमने भी तुकबंदी का आयास किया था। पर कुछ समझ आते ही हमने अपने को इस काम का अनाधिकारी समझा। अतएव उस मार्ग से जाना ही प्रायः बंद कर दिया।" (पृष्ठ- 20, रसज्ञरंजन)

भारतेंदु के समय से ही हिन्दी साहित्य समाज-सुधार की दिशा में रचना करने की ओर प्रवृत हो रहा था। द्विवेदी जी ने इस दिशा में और कार्य किया। उन्होंने साहित्य का एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करने की कोशिश की जिसमें भारतीय संस्कृति की महानता, धार्मिक और जातीय उदारता और पीड़ित मनुष्यों के प्रति सहानुभूति का भाव था। सुधारवादी आन्दोलनों के उस दौर में भी कुछ कवि रीतिकालीन कविता से प्रेरित होकर रचना कर रहे थे, द्विवेदीजी ने उन्हें नहीं बख्शा और व्यंग्यात्मक तरीके से उन्हें खरी-खरी सुनाई-"कविता का विषय मनोरंजक और उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यंत पशुय भिक्षुक से लेकर राजा पर्यंत मनुष्य, बिंदु से लेकर समुद्र पर्यंत जल, अनन्त आकाश, अनंत पृथ्वी, अनंत पर्वत–सभी पर कविता हो सकती है, सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरंजन हो सकता है। फिर क्या कारण हैं कि इन विषयों को छोड़कर स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन करना ही कोई-कोई कवि कविता की चरमसीमा समझते हैं? केवल अविचार और अंध परम्परा!" (कवि-कर्त्तव्य)

द्विवेदी जी ने कवियों के समक्ष रीतिवादी काव्यशास्त्र की तुलना में काव्य-रचना के नए सिद्धांत प्रस्तावित किए। उन्होंने अलंकार, छंद आदि की कड़ी नियमबद्धता के स्थान पर कवि की प्रतिभा, कल्पना और सामाजिक सरोकारों को प्रमुखता दी, छंदों में परिवर्तन के साथ ही अतुकांत छंद लिखने के लिए प्रेरित किया। श्रोताओं/पाठकों को आकृष्ट करने के लिए चमत्कार पैदा करने की प्रवृति के स्थान पर भावों की गहराई को महत्वपूर्ण माना। उन्होंने साहित्य को जातीय स्वरूप प्रदान करने के लिए साहित्यकारों से आग्रह किया।

द्विवेदी जी के नेतृत्व में जब हिन्दी कविता ने रीतिकालीन स्वरूप का त्याग करते हुए देश-हित की भावना और सामाजिक सरोकारों को धारण किया तो वह राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा में तब्दील हो गई और नए-नए उत्साही कवियों का आविर्भाव हिन्दी साहित्य-जगत में हुआ।

'सरस्वती' के सम्पादक

द्विवेदी जी सन् 1903 में 'सरस्वती' के सम्पादक नियुक्त हुए। 'सरस्वती' के सम्पादक का पद ग्रहण करते समय द्विवेदी जी ने अपने लिए चार आदर्श निर्धारित किए। पहला, समय का पालन करना। दूसरा, मालिकों का विश्वास-पात्र बनने की कोशिश करना। तीसरा, अपने हानि-लाभ की परवाह न करके पाठकों के हानि-लाभ के बारे में सोचना। चौथा, न्याय के पथ से कभी विचलित न होना।

'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में द्विवेदी जी एक महती दायित्व को अपने कन्धों पर लेकर चले। "राजनीति और अर्थशास्त्र के साथ उन्होंने आधुनिक विज्ञान से परिचय प्राप्त किया और इतिहास तथा समाजशास्त्र का अध्ययन गहराई से किया। इसके साथ भारत के प्राचीन दर्शन और विज्ञान की ओर उन्होंने ध्यान दिया और यह जानने का प्रयत्न किया कि हम अपने चिंतन में कहाँ आगे बढ़े हुए हैं और कहाँ पिछड़े हैं। इस तरह की तैयारी उनसे पहले किसी सम्पादक या साहित्यकार ने न की थी। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी प्रदेश में नवीन सामाजिक चेतना के प्रसार के लिए वह सबसे उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध हुए।" (पृष्ठ- 16, महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण- रामविलास शर्मा) 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में द्विवदी जी ने लेखकों का ऐसा समूह तैयार किया जो नवीन सामाजिक चेतना के प्रसार के लिए उनका सहायक बना। इस समूह के लेखकों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन के साथ ही वैचारिक लेख भी सरस्वती में प्रकाशित किए। द्विवेदी जी ने अपने संपादकत्व में नए लेखकों को खोजा और उन्हें निरंतर नया लिखने के लिए प्रोत्साहित भी किया। गणेशशंकर विद्यार्थी, हरिऔध, श्री राधाकृष्ण दास, राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक, रामचन्द्र शुक्ल, सत्यनारायण कविरत्न, मैथिलीशरण गुप्त, जैसे लेखक 'सरस्वती' से जुड़े रहे और इनमें से अधिकाँश ने अपनी क्षमता को द्विवेदी जी के सानिध्य में विकसित किया। सरस्वती के सम्पादक के रूप में द्विवेदी जी लेखकों को न केवल आवश्यक परामर्श देते थे, बल्कि उनकी रचनाओं में स्वयं भी समुचित कांट-छांट और सुधार कर दिया करते थे। कई बार तो रचना का काया-पलट ही हो जाता

था। अपना नाम कहीं अधिक बार न आ जाए, इस चिंता में द्विवेदी जी ने दूसरे नामों से भी अनेक लेख लिखे।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार–"संस्कृत साहित्य का पुनरुत्थान, खड़ी बोली कविता का उन्नयन, नवीन पश्चिमी शैली की सहायता से भावाभिव्यन्जना, संसार की वर्तमान प्रगति का परिचय, साथ ही प्राचीन भारत के गौरव की रक्षा प्रभृति जो कुछ उनके लक्ष्य थे, उनकी प्राप्ति अपनी निश्चित धारणा के अनुसार 'सरस्वती' के द्वारा करना उनका सिद्धांत था। अतः 'द्विवेदी' काल की 'सरस्वती' में केवल द्विवेदी जी की भाषा की प्रतिमा ही गठित नहीं है, उनके विचारों का व्यापक प्रतिबिम्ब भी उसमें पड़ा है। द्विवेदीजी के दार्शनिक और अध्यात्मिक लेखों पर उनके कर्मठ जीवन और अंतर की अनुभूति की छाप लगीं है, उनमें विचारों की शृंखला भी है और उनका क्रम भी निर्धारित है।"(पृष्ठ-37, हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी)

द्विवेदी जी का लक्ष्य अपने पाठकों का ज्ञानवर्द्धन करना था। उन्होंने 'सरस्वती' में निरंतर ऐसी सामग्री प्रकाशित की जो पाठकों को समाज और इतिहास की नई दृष्टि और दिशा प्रदान करती थी। उन्होंने 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी में ऐसा सजग और सचेत पाठक वर्ग तैयार करने का संकल्प लिया जो विचार-प्रधान गद्य में भी कथा और कविता जैसा रस ले सके, जो तत्कालीन भारत की परिस्थिति को अच्छी तरह समझकर अपनी एक सुचिंतित समझ बना सके। द्विवेदी जी ने लगन, निष्ठा और मनोयोग से इस दिशा में कार्य किया और सफलता भी पाई। मात्र लेखों के स्तर पर ही नहीं बल्कि एक सम्पादक के रूप में द्विवेदी जी विज्ञापन सहित कोई भी ऐसी सामग्री 'सरस्वती' में प्रकाशित नहीं होने देते थे जो पाठकों को दिग्भ्रमित करती हो।

खड़ीबोली हिन्दी का परिष्कार और प्रचार-प्रसार

तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में द्विवेदी जी जो महत्वपूर्ण कार्य कर रहे थे, वह था–खड़ी बोली हिन्दी को व्याकरण-सम्मत बनाते हुए उसके स्वरूप का परिष्कार करना और एकरूपता प्रदान करना। खड़ी बोली के प्रचार-प्रसार तथा गद्य और पद्य की भाषा एक ही करने के लिए द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' के माध्यम से एक प्रकार का आन्दोलन खड़ा कर दिया। कविता की भाषा ब्रज भाषा के स्थान पर खड़ी बोली स्थापित करने और साहित्य से रीतिवाद को बाहर कर विविध विषयों पर लेखन से उसे अधिकाधिक समाजोन्मुख बनाने के लिए

द्विवेदी लगातार प्रयासरत रहे। "द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा के विकास के अनेक पक्षों पर ध्यान दिया। भारत में अंग्रेजी की स्थिति, भारतीय भाषाओं की शिक्षा का माध्यम बनाने की समस्या, भारतीय भाषाओं के बीच संपर्क-भाषा की समस्या, हिन्दी-उर्दू की समानता और आपसी भेद, हिन्दी और जनपदीय उपभाषाओं के सम्बन्ध आदि पर उन्होंने बहुत गहराई से विचार किया।" (पृष्ठ-17, महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण- रामविलास शर्मा)

द्विवेदी जी ने दूसरों की भाषा का सुधार करने के साथ ही अपनी भाषा का भी सुधार करने में संकोच नहीं किया। यदि उनकी आरंभिक रचनाओं की तुलना बाद की रचनाओं से की जाए तो इस बात को आसानी से समझा जा सकता हैं कि उनकी शुरुआती रचनाओं में हिंदी अपने अपरिष्कृत रूप में है और व्याकरण सम्मत भी नहीं है, लेकिन द्विवेदी जी ने दूसरों की भाषा के साथ ही अपनी भाषा का भी मार्जन करने में कोइ संकोच नहीं किया। "द्विवेदी जी ने चार प्रकार से भाषा-सुधार करके खड़ीबोली के परिष्कृत और परिमार्जित रूप की प्रतिष्ठा की। उन्होंने दूसरों के दोषों की तीव्र, आलोचना की, सम्पादक-पद से 'सरस्वती' के लेखकों की रचनाओं का संशोधन किया और कराया, अपने पत्रों, संभाषणों, भाषणों, भूमिकाओं और सम्पादकीय निवेदनों द्वारा कवियों और लेखकों को उनके दोषों के प्रति सावधान किया और साहित्यकारों के ग्रंथों की भाषा का भी समय समय पर संशोधन किया।"(पृष्ठ-208, महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग- डॉ उदयभानु सिंह)

हिन्दी भाषा के स्वरूप निर्धारण के मसले पर वे अपने समकालीन साहित्यकारों और विद्वानों के साथ स्वस्थ बहस के लिए हमेशा तैयार रहते थे।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी और भारत की अन्य भाषाओं के द्वंद्व और उनके पीछे छुपी राजनीति से भली-भाँति परिचित थे। वे भारत की प्रादेशिक भाषाओं के विकास और प्रयोग के पक्षधर थे लेकिन बात जब संपर्क भाषा की आती थी तो अनेक तर्कों के साथ हिंदी का समर्थन करते थे-"एक भाषा होने का विलक्षण प्रभाव होता है बहुत भारी असर होता है। यह देश हमारा ही है। इसकी उन्नति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। देश का हित हमारा हित है। एक भाषा के न होने से सच्चा देशाभिमान कभी नहीं उत्पन्न हो सकता! हिन्दी हिन्दुस्तान की जनता की भाषा है। बोलने, लिखने तथा समझने में वह सरल है। हिन्दी का क्षेत्र व्यापक है।" (पृष्ठ- 40, आचार्य द्विवेदी, बी. आर. धर्मेन्द्र) राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के साथ ही हिन्दी सहित भारत की प्रादेशिक भाषाओं

का संघर्ष अंग्रेजी के विरोध में चल रहा था। साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी ने इस संघर्ष की अगुवाई की और राजनीति के क्षेत्र में गांधी जी ने इस आन्दोलन को आगे बढाया। उस समय स्वाधीनता और राष्ट्रभाषा का संघर्ष मिलकर एक हो गया था। उस समय सारे राजनेताओं में गांधी जी एक ऐसे नेता थे जो इस बात को भली-भाँति समझते थे कि अंग्रेजों के साथ-साथ सरकार की भाषा के रूप में अंग्रेजी को हटाना होगा ताकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद केंद्र का काम हिंदी में और प्रदेशों का काम प्रादेशिक भाषाओं में हो सके। गांधी की यह चिंता आज भी दूर नहीं हो पायी है। "उन दिनों भारत में दो ही व्यक्ति थे जो अंग्रेजी की जगह राजभाषा, केन्द्रीय भाषा अथवा संपर्क भाषा के रूप में अखिल भारतीय व्यवहार के लिए हिन्दी का समर्थन कर रहे थे और इसके साथ-साथ प्रादेशिक स्तर पर अंग्रेजी के विरुद्ध भारतीय भाषाओं के व्यवहार का समर्थन कर रहे थे। एक थे महात्मा गांधी और दूसरे महावीरप्रसाद द्विवेदी।"(पृष्ठ-182, महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण- रामविलास शर्मा) इसी क्रम में द्विवेदी जी ने अपने और अपने सहयोगियों के लेखों के माध्यम से हिन्दी-उर्दू की समानता और एकता पर जोर दिया।

द्विवेदी जी का मानना था कि जब हिंदुस्तान की भाषा को ज्ञान-विज्ञान का माध्यम नहीं बनाया जाएगा भारत का समुचित विकास हो ही नहीं पाएगा। इस स्थिति को हम आज भी देख सकते हैं। द्विवेदी जी जिस समय 'सरस्वती' के सम्पादक बने उस समय "हिन्दी के साथ विशेष समस्या यह थी कि उसे अपना जातीय स्वरूप ही स्थिर न करना था वरन इस जातीय स्वरूप के माध्यम से सारे देश के लिए राष्ट्रभाषा का कार्य भी करना था। .....हिन्दी का जातीय स्वरूप जितना ही अनिश्चित और अनिर्धारित रहता है, उतना ही जातीय विकास में बाधा पड़ती है, उतना ही राष्ट्रीय एकीकरण में बाधा पड़ती है। इससे सिद्ध हैं कि द्विवेदी जी ने हिन्दी को परिनिष्ठित रूप देने का जो प्रयत्न किया वह जातीय और राष्ट्रीय महत्व का कार्य है। "(पृष्ठ-251, महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण- रामविलास शर्मा) उन्होंने हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा को माध्यम बनाते हुए क्रांतिकारी परिवर्तन का रास्ता जन-समाज को दिखलाने की कोशिश की।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का नाम खड़ी बोली को काव्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले कवियों में बहुत आदर से लिया जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में 1890 ई. के आस-पास अयोध्यासिंह उपाध्याय ने साहित्य सेवा के क्षेत्र में पदार्पण किया।

परिवार और शिक्षा

अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म जिला आजमगढ़ के निजामाबाद नामक स्थान में सन् 1865 ई. में हुआ था। हरिऔध के पिता का नाम भोलासिंह और माता का नाम रुक्मणि देवी था। अस्वस्थता के कारण हरिऔध जी का विद्यालय में पठन-पाठन न हो सका अतः इन्होंने घर पर ही उर्दू, संस्कृत, फारसी, बांग्ला एवं अंग्रेजी का अध्ययन किया। 1883 में ये निजामाबाद के मिडिल स्कूल के हेडमास्टर हो गए। 1890 में कानूनगो की परीक्षा पास करने के बाद आप कानून गो बन गए। सन् 1923 में पद से अवकाश लेने पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक बने।

कार्यक्षेत्र

खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्यकार हरिऔध जी का सृजनकाल हिन्दी के तीन युगों में विस्तृत है–

1. भारतेन्दु युग
2. द्विवेदी युग
3. छायावादी युग।

इसीलिये हिन्दी कविता के विकास में 'हरिऔध' जी की भूमिका नींव के पत्थर के समान है। उन्होंने संस्कृत छंदों का हिन्दी में सफल प्रयोग किया है। 'प्रियप्रवास' की रचना संस्कृत वर्णवृत्त में करके जहाँ 'हरिऔध' जी ने खड़ी बोली को पहला महाकाव्य दिया, वहीं आम हिन्दुस्तानी बोलचाल में 'चोखे चौपदे' तथा 'चुभते चौपदे' रचकर उर्दू जुबान की मुहावरेदारी की शक्ति भी रेखांकित की।

सर्वाधिक प्रसिद्धि

हरिऔध को कवि रूप में सर्वाधिक प्रसिद्धि उनके प्रबन्ध काव्य 'प्रियप्रवास' के कारण मिली। 'प्रियप्रवास' की रचना से पूर्व की काव्य कृतियाँ कविता की दिशा में उनके प्रयोग की परिचायिका हैं। इन कृतियों में प्रेम और शृंगार के विभिन्न पक्षों को लेकर काव्य रचना के लिए किए गए अभ्यास की

झलक मिलती है। 'प्रियप्रवास' को इसी क्रम में लेना चाहिए। 'प्रियप्रवास' के बाद की कृतियों में 'चोखे चौपदे' तथा 'वैदेही बनवास' उल्लेखनीय हैं। 'चोखे चौपदे' लोकभाषा के प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। 'प्रियप्रवास' की रचना संस्कृत की कोमल कान्त पदावली में हुई है और उसमें तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। 'चोखे चौपदे' में मुहावरों के बाहुल्य तथा लोकभाषा के समावेश द्वारा कवि ने यह सिद्ध कर दिया हैं कि वह अपनी सीधी सादी जबान को भूला नहीं है। 'वैदेही बनवास' की रचना द्वारा एक और प्रबन्ध सृष्टि का प्रयत्न किया गया है। आकार की दृष्टि से यह ग्रन्थ छोटा नहीं है, किन्तु इसमें 'प्रियप्रवास' जैसी ताजगी और काव्यत्व का अभाव है।

प्रियप्रवास

प्रियप्रवास –अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

'प्रियप्रवास' एक सशक्त विप्रलम्भ काव्य है। कवि ने अपनी इस कृति में कृष्ण कथा के एक मार्मिक पक्ष को किंचित् मौलिकता और एक नूतन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्ण के मथुरा–गमन के उपरान्त ब्रजवासियों के विरहसन्तप्त जीवन तथा मनोभावों का हृदयस्पर्शी अंकन प्रस्तुत करने में उन्हें बहुत ही सफलता प्राप्त हुई है। संस्कृत की समस्त तथा कोमल–कान्त पदावली से अलंकृत एवं संस्कृत वर्ण वृत्तों में लिखित यह रचना खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। रामचन्द्र शुक्ल ने इसे आकार की दृष्टि से बड़ा कहा किन्तु उन्हें इस कृति में समुचित कथानक का अभाव प्रतीत हुआ और इसी अभाव का उल्लेख करते हुए उन्होंने इसके प्रबन्धत्व एवं महाकाव्यत्व को अस्वीकार कर दिया है। शुक्ल जी से सरलतापूर्वक सहमत नहीं हुआ जा सकता। प्रबन्ध काव्य सम्बन्धी कुछ थोड़ी–सी रूढ़ियों को छोड़ दिया जाए तो इस काव्य में प्रबन्धत्व का दर्शन आसानी से किया जा सकता है। यह सच हैं कि ऊपर से देखने पर इसका कथानक प्रवास प्रसंग तक ही सीमित है, किन्तु 'हरिऔध' ने अपने कल्पना कौशल के द्वारा, इसी सीमित क्षेत्र में श्री कृष्ण के जीवन की व्यापक झाकियाँ प्रस्तुत करने के अवसर ढूँढ निकाले हैं। इस काव्य की एक और विशेषता यह हैं कि इसके नायक श्रीकृष्ण शुद्ध मानव रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। वे लोकसंरक्षण तथा विश्वकल्याण की भावना से परिपूर्ण मनुष्य अधिक हैं और अवतार अथवा ईश्वर नाम मात्र के।

अन्य साहित्यिक कृतित्त्व

हरिऔध के अन्य साहित्यिक कृतित्त्व में उनके ब्रजभाषा काव्य संग्रह 'रसकलश' को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। इसमें उनकी आरम्भिक स्फुट

कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँश्रृंगारिक हैं और काव्य-सिद्धान्त निरूपण की दृष्टि से लिखी गयी हैं। इन्होंने गद्य और आलोचना की ओर भी कुछ-कुछ ध्यान दिया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय हिन्दी के अवैतनिक अध्यापक पद पर कार्य करते हुए इन्होंने 'कबीर वचनावली' का सम्पादन किया। 'वचनावली' की भूमिका में कबीर पर लिखे गए लेखों से इनकी आलोचना दृष्टि का पता चलता है। इन्होंने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' शीर्षक एक इतिहास ग्रन्थ भी प्रस्तुत किया, जो बहुत ही लोकप्रिय हुआ।

विरासत

हरिऔध जी ने गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में हिन्दी की सेवा की। वे द्विवेदी युग के प्रमुख कवि हैं। उन्होंने सर्वप्रथम खड़ी बोली में काव्य-रचना करके यह सिद्ध कर दिया कि उसमें भी ब्रजभाषा के समान खड़ी बोली की कविता में भी सरसता और मधुरता आ सकती है। हरिऔध जी में एक श्रेष्ठ कवि के समस्त गुण विद्यमान थे। 'उनका प्रिय प्रवास' महाकाव्य अपनी काव्यगत विशेषताओं के कारण हिन्दी महाकाव्यों में 'माइल-स्टोन' माना जाता है। श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के शब्दों में हरिऔध जी का महत्त्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है—इनकी यह एक सबसे बड़ी विशेषता हैं कि ये हिन्दी के सार्वभौम कवि हैं। खड़ी बोली, उर्दू के मुहावरे, ब्रजभाषा, कठिन-सरल सब प्रकार की कविता की रचना कर सकते हैं।

कृतियाँ

'हरिऔध' जी आरम्भ में नाटक तथा उपन्यास लेखन की ओर आकर्षित हुए। 'हरिऔध' जी की दो नाट्य कृतियाँ 'प्रद्युम्न विजय' तथा 'रुक्मणी परिणय' क्रमशः 1893 ई. तथा 1894 ई. में प्रकाशित हुई। 1894 ई. में ही इनका प्रथम उपन्यास 'प्रेमकान्ता' भी प्रकाशन में आया। बाद में दो अन्य औपन्यासिक कृतियाँ 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (1899 ई.) और 'अधखिला फूल' (1907 ई.) नाम से प्रकाशित हुई। ये नाटक तथा उपन्यास साहित्य के उनके प्रारम्भिक प्रयास होने की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इन कृतियों में नाट्यकला अथवा उपन्यासकला की विशेषताएँ ढूँढना तर्कसंगत नहीं है। उपाध्याय जी की प्रतिभा का विकास वस्तुतः कवि रूप में हुआ। खड़ी बोली का प्रथम महाकवि होने का श्रेय 'हरिऔध' जी को है। 'हरिऔध' के उपनाम

से इन्होंने अनेक छोटे-बड़े काव्यों की सृष्टि की, जिनकी संख्या पन्द्रह से ऊपर है–

सन्	काव्य
1899 ई.	'रसिक रहस्य'
1900 ई.	'प्रेमाम्बुवारिधि', 'प्रेम प्रपंच'
1901 ई.	'प्रमाम्बु प्रश्रवण', 'प्रेमाम्बु प्रवाह'
1904 ई.	'प्रेम पुष्पहार'
1906 ई.	'उद्बोधन'
1909 ई.	'काव्योपवन'
1914 ई.	'प्रियप्रवास'
1916 ई.	'कर्मवीर'
1917 ई.	'ऋतु मुकुर'
1925 ई.	'पद्मप्रसून'
1927 ई.	'पद्मप्रमोद'
1932 ई.	'चोखेचौपदे'
1940 ई.	'वैदेही बनवास'
	'चुभते चौपदे'
	'रसकलश'

खड़ी बोली काव्य-रचना

अयोध्यासिंह उपाध्याय खड़ी बोली काव्य के निर्माताओं में आते हैं। इन्होंने अपने कवि कर्म का शुभारम्भ ब्रजभाषा से किया। 'रसकलश' की कविताओं से पता चलता हैं कि इस भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था, किन्तु इन्होंने समय की गति शीघ्र ही पहचान ली और खड़ी बोली काव्य-रचना करने लगे। काव्य भाषा के रूप में इन्होंने खड़ी बोली का परिमार्जन और संस्कार किया। 'प्रियप्रवास' की रचना करके इन्होंने संस्कृत गर्भित कोमल-कान्तपदावली संयुक्त भाषा का अभिजात रूप प्रस्तुत किया। 'चोखे चौपदे' तथा 'चुभते चौपदे' द्वारा खड़ी बोली के मुहावरा सौन्दर्य एवं उसके लौकिक स्वरूप की झाँकी दी। छन्दों की दृष्टि से इन्होंने संस्कृत हिन्दी तथा उर्दू सभी प्रकार के छन्दों का धड़ल्ले से प्रयोग किया। ये प्रतिभासम्पन्न मानववादी कवि थे। इन्होंने 'प्रियप्रवास' में

श्रीकृष्ण के जिस मानवीय स्वरूप की प्रतिष्ठा की है, उससे इनके आधुनिक दृष्टिकोण का पता चलता है। इनके श्रीकृष्ण 'रसराज' या 'नटनागर' होने की अपेक्षा लोकरक्षक नेता हैं।

सम्मान

जीवनकाल में इन्हें यथोचित सम्मान मिला था। 1924 ई. में इन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान पद को सुशोभित किया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने इनकी साहित्य सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए इन्हें हिन्दी के अवैतनिक अध्यापक का पद प्रदान किया। एक अमेरिकन 'एनसाइक्लोपीडिया' ने इनका परिचय प्रकाशित करते हुए इन्हें विश्व के साहित्य सेवियों की पंक्ति प्रदान की। खड़ी बोली काव्य के विकास में इनका योगदान निश्चित रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है तो 'हरिऔध' खड़ी बोली के प्रथम महाकवि।

मृत्यु

16 मार्च, 1947 को अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने इस दुनिया से लगभग 76 वर्ष की आयु में विदा ली।

कहें क्या बात आंखों की, चाल चलती हैं मनमानी
सदा पानी में डूबी रह, नहीं रह सकती हैं पानी
लगन है रोग या जलन, किसी को कब यह बतलाया
जल भरा रहता है उनमें, पर उन्हें प्यासी ही पाया।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' भारत के प्रसिद्ध कवियों में से एक थे। उन्हें आधुनिक युग के श्रेष्ठ ब्रजभाषा के कवियों में गिना जाता है। प्राचीन संस्कृति, मध्यकालीन हिन्दी काव्य, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, हिन्दी, आयुर्वेद, संगीत, ज्योतिष तथा दर्शनशास्त्र इन सभी की अच्छी जानकारी जगन्नाथदास जी को थी। इन्होंने प्रचुर साहित्य सेवा की थी। ब्रजभाषा काव्यधारा के अंतिम सर्वश्रेष्ठ कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' आधुनिक हिंदी साहित्य में अनुभूतियों के सशक्त चित्रकार, ब्रजभाषा के समर्थ कवि और एक अद्वितीय भाष्यकार के रूप में विख्यात हैं। उन्होंने खड़ीबोली के युग में जीवित व्यक्ति की तरह हृदय के प्रत्येक

स्पंदन को महसूस करने वाली ब्रजभाषा का आदर्श खड़ा किया, जिसके हर शब्द की अपनी गति और लय है।

जीवन परिचय

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म संवत 1923 (1866 ई.) में भाद्रपद शुक्ल पक्ष पंचमी को काशी (वर्तमान बनारस) के शिवाला घाट मोहल्ले में हुआ था। इनके पिता पुरुषोत्तमदास दिल्ली वाले अग्रवाल वैश्य थे और पूर्वज पानीपत के रहने वाले थे, जिनका मुगल दरबारों में बड़ा सम्मान था। लेकिन परिस्थितिवश उन्हें काशी आकर रहना पड़ा। पुरुषोत्तमदास फारसी भाषा के अच्छे विद्वान् थे और हिन्दी फारसी कवियों का बड़ा सम्मान करते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र उनके मित्र थे और इनके यहाँ बहुधा आया-जाया करते थे। रत्नाकर जी ने बाल्यावस्था में भारतेंदु हरिश्चंद्र का सत्संग भी किया था। भारतेंदु जी ने कहा भी था कि, 'किसी दिन यह बालक हिन्दी की शोभा वृद्धि करेगा'।

शिक्षा

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के रहन-सहन में राजसी ठाठ-बाट था। इन्हें हुक्का, इत्र, पान, घुड़सवारी आदि का बहुत शौक था। हिन्दी का संस्कार उन्हें अपने हिन्दी-प्रेमी पिता से मिला था। स्कूली शिक्षा में उन्होंने कई भाषाओं का ज्ञान अर्जित किया। काशी के क्वींस कॉलेज से रत्नाकर जी ने सन् 1891 ई. में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की, जिसमें अंग्रेजी के साथ दूसरी भाषा फारसी भी थी। ये फारसी में एम.ए. की परीक्षा देना चाहते थे, पर कुछ कारणों से न दे सके।

जीविकोपार्जन

जगन्नाथदास जी ने 'जकी' उपनाम से फारसी में कविताएँ लिखना प्रारंभ किया। इस सम्बन्ध में इनके उस्ताद मुहम्मद हसन फायज थे। जब रत्नाकर जी जीविकोपार्जन की तरफ मुड़े तो वे अबागढ़ के खजाने के निरीक्षक नियुक्त हुए। सन् 1902 में वे अयोध्या नरेश के निजी सचिव नियुक्त हुए, किन्तु सन् 1906 में महाराजा का स्वर्गवास हो गया। लेकिन इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर महारानी जगदंबा देवी ने इन्हें अपना निजी सेक्रेटरी नियुक्त किया तथा मृत्युपर्यंत रत्नाकर जी इस पद पर रहे। अयोध्या में रहते हुए जगन्नाथदास रत्नाकर की कार्य-प्रतिभा समय-समय पर विकास के अवसर पाती रही। महारानी जगदंबा देवी की कृपा

से उनकी काव्य कृति 'गंगावतरण' सामने आई। इन्होंने हिन्दी काव्य का अभ्यास प्रारंभ किया और ब्रजभाषा में काव्य रचना की।

लेखन कार्य

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' हिन्दी लेखन की ओर उस समय प्रवृत्त हुए, जब खड़ी बोली हिन्दी को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने का व्यापक अभियान चल रहा था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, पं. नाथूराम शंकर शर्मा जैसे लोग खड़ी बोली हिन्दी को भारी समर्थन दे रहे थे, लेकिन काव्य भाषा की बदलती लहर रत्नाकर जी के ब्रजभाषा-प्रेम को अपदस्थ नहीं कर सकी। वे ब्रजभाषा का आँचल छोड़कर खड़ी बोली के पाले में जाने को किसी भी तरह तैयार नहीं हुए। जब उनके समकालीन खड़ी बोली के परिष्कार और परिमार्जन में संलग्न थे, तब वे ब्रजभाषा की त्रुटियों का परिष्कार कर साहित्यिक ब्रजभाषा के रूप की साज-सँवार कर रहे थे। उन्होंने ब्रजभाषा का नए शब्दों, मुहावरों से ऐसाशृंगार किया कि वे सूरदास, पद्माकर और घनानंद की ब्रजभाषा से अलग केवल उनकी ब्रजभाषा बन गई, जिसमें उर्दू और फारसी की रवानगी, संस्कृत का आभिजात्य और लोकभाषा की शक्ति समा गई। जिसके एक-एक वर्ण में एक-एक शब्द में और एक-एक पर्याय में भावलोक को चित्रित करने की अदम्य क्षमता है।

कवित्त

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की संवेदनशीलता ने बचपन में ही कविता में ढलना शुरू कर दिया था। विद्यार्थी जीवन में ही उन्होंने उर्दू व फारसी के साथ हिन्दी में कवित्त लिखना शुरू कर दिया था। वे 'जकी' उपनाम से उर्दू शायरी करते थे। बाद में उन्होंने ब्रजभाषा काव्य को ही अपना क्षेत्र बना लिया। काव्य सृजन के साथ-साथ उन्होंने अपनी पठन रुचि को भी बराबर विकसित किया। वे साहित्य, दर्शन, अध्यात्म, पुराण-सब पढ़ डालते। रत्नाकर जी का भावों का वैभव है। उनके काव्य-विषय विशुद्ध पौराणिक हैं। आपने इन कथानकों में नवीनता भरकर उन्हें नवीन रूप प्रदान किया। उन्होंने प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य लिखे। वे विशेषत:शृंगार के कवि हैं, परन्तु इनकेशृंगार में न तो रीति काल की अफीमची मादकता है और न नायिका भेद की बारीकी ही है। इनकाशृंगार भक्ति-परक होकर मर्यादित रूप में सामने आया। विशुद्धशृंगार में भी

हृदय की अनुभूतिपूर्ण भावनाओं ही का तीव्र वेग है। राधा-कृष्ण के हृदय में स्वाभाविक प्रेम के उदय पर रत्नाकर जी की कलम का एक दृष्टव्य –

आवन लगीं है दिन द्वैक ते हमारे धाम,
रहे बिनु काम काज आई अरुझाई है।
कहैं रत्नाकर खिलौननी सम्हारि राखि,
बार-बार जननी चितावत कन्हाई है।
देखी सुनु ग्वारिनी किती ब्रजवासिन पै,
राधा सी न और अभिहारिन लखाई है।
हेरत ही हेरत हरयौ तौ है हमारो कछु,
काहि धौं हिरानी पै न परत जनाई है।

विरह विरहिरिनों के हृदय को विदीर्ण कर देता है। विरह-विपत्ति का झेलना अत्यंत कठिन है। इसी की अनुभूति पूर्ण अवस्था का एक उदाहरण निम्नलिखित है–

पीर सों धीर धरावत वीर, कटाक्ष हूँ कुंतल सेल नहीं है।
ज्वाल न याकी मिटे रत्नाकर, नेह कछू तिल तेल नहीं है।
जानत अंग जो झेलत हैं, यह रंग गुलाल की झेल नहीं है।
थामे थमें न बहें अंसुवा, यह रोयबो है, हंसी-खेल नहीं है।

शृंगार रस के पश्चात् जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी के काव्य में वीर रस को प्रमुख स्थान मिला है। करुण रस की सुन्दर व्यंजना 'हरिश्चंद्र' में हुई है। इसके अतिरिक्त वीभत्स तथा वात्सल्य आदि रसों का यथास्थान सफलता से चित्रण हुआ है। रत्नाकर जी को भावों के चित्रण में विशेष सफलता मिली है। क्रोध, हर्ष, उत्साह, शोक, प्रेम, घृणा आदि मानवीय व्यापारों की अभिव्यंजना रत्नाकर जी ने बड़ी सफलता से की है। आधुनिक युग के होते हुए भी रत्नाकर जी ने भक्ति काल एवं रीति काल के आदर्शों को अपनाया। इनके काव्य में भक्ति कवियों के भाव की सी भावुकता, रसमग्नता तथा रीति कालीन कवियों जैसा शब्द-कौशल तथा चमत्कार प्रियता मिलती है। इनके काव्य पर आधुनिक युग के बुद्धिवाद का भी प्रभाव है। इनकी 'उद्धवशतक', गंगावतरण', 'हरिश्चंद्र' आदि रचनायें प्राचीन युग का उच्चादर्श उपस्थित करती हैं।

भाषा-शैली

रत्नाकर जी की काव्य भाषा नवीनता से परिपूर्ण है। उन्होंने ब्रजभाषा को संयत और परिष्कृत रूप प्रदान किया है। ब्रजभाषा के अप्रचलित प्रयोगों को

उन्होंने सर्वथा छोड़ दिया। इस प्रकार ब्रजभाषा को खड़ी बोली के समान प्रतिष्ठित करने का उनका सराहनीय प्रयास रहा। उनकी शब्द योजना सर्वथा दोष मुक्त है। भाषा क्लिष्ट भावों की चेरी बन कर चलती है। इसमें इतनी सरलता और स्वाभाविकता हैं कि भावों को समझने में कठिनाई नहीं पड़ती। भाषा में ओज और माधुर्य गुण मिलता है। इसमें कहीं भी शिथिलता नहीं है। अनुप्रास योजना भाषा को स्वाभाविकता प्रदान करती है। रत्नाकर जी की कविता में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है, परन्तु इससे उनकी भाषा में कृत्रिमता और शिथिलता नहीं आने पायी। साहित्यिक स्वरूप में घनानंद की भाषा ही रत्नाकर जी की भाषा की समता कर सकती है। रत्नाकर जी को 'आधुनिक ब्रजभाषा का पद्माकर' कहा जा सकता है। उन्होंने जिस शैली को अपनाया, उसमें मानवीय व्यापारों को सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है। उनकी शैली में सर्वत्र ही कलात्मकता और स्वाभाविकता मिलती है।

कृतियाँ

राजनीतिक उलझनों और कचहरी के मामलों में उनके काव्य-सृजन को मनमाना विस्तार भले ही न मिल पाया हो, लेकिन व्यस्तता के बावजूद उन्होंने आधुनिक हिंदी साहित्य संपदा की वृद्धि करने वाली कृतियाँ रचीं। इनके द्वारा रचित, सम्पादित तथा प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं–

पद्य रचनाएँ

1. हरिश्चंद्र (खंडकाव्य)
2. गंगावतरण (पुराख्यान काव्य)
3. उद्धवशतक (प्रबंध काव्य)
4. हिंडोला (मुक्तक)
5. कलकाशी (मुक्तक)
6. समालोचनादर्श (पद्यनिबंध)
7. श्रृंगारलहरी
8. गंगालहरी
9. विष्णुलहरी (मुक्तक)
10. रत्नाष्टक (मुक्तक)

11. वीराष्टक (मुक्तक)
12. प्रकीर्णक पद्यावली (मुक्तक संग्रह)।

गद्य रचनाएँ

साहित्यिक लेख

1. रोला छंद के लक्षण
2. महाकवि बिहारीलाल की जीवनी
3. बिहारी सतसई संबंधी साहित्य
4. साहित्यिक ब्रजभाषा तथा उसके व्याकरण की सामग्री
5. बिहारी सतसई की टीकाएँ
9. बिहारी पर स्फुट लेख।

ऐतिहासिक लेख

1. महाराज शिवाजी का एक नया पत्र
2. शुगवंश का एक शिलालेख
3. शुंग वंश का एक नया शिलालेख
4. एक ऐतिहासिक पापाणाश्व की प्राप्ति
5. एक प्राचीन मूर्ति
6. समुद्रगुप्त का पाषाणाश्व
7. घनाक्षरी निय रत्नाकर
8. वर्ण
9. सवैया
10. छंद

सम्पादित रचनाएँ

1. सुधासागर (प्रथम भाग)
2. कविकुल कंठाभरण
3. दीपप्रकाश
4. सुंदर श्रृंगार
5. नृपशंमुकृत नखशिख

6. हम्मीर हठ
7. रसिक विनोद
8. समस्यापूर्ति (भाग 1)
9. हिततरंगिणी
10. केशवदासकृत नखशिख
11. सुजानसागर
12. बिहारी रत्नाकर
13. सूरसागर।

प्रकाशित रचनाएँ

1. 'हिंडोल'
2. 'हरिश्चंद्र'
3. 'गंगावतरण'
4. 'उद्धवशतक'
5. 'कलकाशी'
6. 'समस्यापूर्ति'
7. 'जयप्रकाश'
8. 'सर्वस्व'
9. 'घनाक्षरी नियम रत्नाकर'
10. 'गंगा विष्णु लहरी'
11. 'रत्नाष्टक'
12. 'वीराष्टक'
13. 'प्रकीर्ण पदावली'।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि थे। पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी का जन्म श्रावण शुक्ल त्रयोदशी, संवत 1940 में उन्नाव जिले के हडहा नामक ग्राम में हुआ। यह गाँव बैसवाड़ा क्षेत्र के अंतर्गत है। सनेही जी के पिता पं. अक्सेरीलाल शुक्ल बड़े साहसी और देशभक्त व्यक्ति थे। 1850 ई. के स्वातंर्त्य संग्राम में उन्होंने भी जमकर भाग लिया और ब्रिटिश सरकार के कोपभाजन बने। देशभक्ति और वीरभाव की यह परंपरा सनेही जी को अपने पिता

से ही प्राप्त हुई। सनेही जी आरम्भ से ही मेधावी छात्र रहे। काव्यरचना का शौक इन्हें बचपन से ही था। काव्यशास्त्र का सम्यक अनुशील इन्होंने हडहा निवासी लाला गिरधारी लाल के चरणों में बैठकर किया। लालाजी रीतिशास्त्र के बड़े पंडित और ब्रजभाषा के सिद्धस्त कवि थे।

कार्यक्षेत्र

सनेही जी ने अपनी जीविका के लिए शिक्षक की वृति अपनाई। सन् 1902 में ये शिक्षण पद्धति का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए दो वर्ष लखनऊ आकर रहे। यहाँ इनकी प्रतिभा का और भी विकास हुआ तथा ये ब्रजभाषा, खड़ीबोली एवं उर्दू के कवियों के संपर्क में आये। सनेही जी इन तीनों भाषाओं में काव्यरचना करते थे परन्तु रससिद्ध कविता की दृष्टि से ये प्रमुखत: ब्रजभाषा के ही कवि थे। इनकी प्रसिद्धि होने पर पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें खड़ीबोली काव्यरचना की ओर प्रेरित किया और इस क्षेत्र में भी सनेही जी का अद्वितीय स्थान रहा परन्तु ब्रजभाषा में भी ये आजीवन लिखते रहे। शिक्षा विभाग में नौकरी करने के कारण इन्होंने अपनी राष्ट्रीय कविताएं 'त्रिशूल' उपनाम से लिखीं। सनेही नाम से ये परंपरागत और रससिद्ध कवितायें करते थे और त्रिशूल उपनाम से ये समाजसुधार और स्वाधीनता प्रेम की रचनाएं लिखते थे। 'तरंगी' और 'अलमस्त' ये दोनों भी सनेही जी के उपनाम हैं। असहयोग आन्दोलन के समय इन्होंने टाउन स्कूल की हेड मास्टरी से त्यागपत्र दे दिया और कानपुर को अपना कर्मक्षेत्र बनाकर स्वाधीनता के कार्यों में अपने को खपा दिया।

साहित्यिक परिचय

सनेही जी की आरंभिक रचनाएं 'रसिक रहस्य', 'साहित्य सरोवर', 'रसिकमित्र' आदि पत्रों में प्रकाशित होती थीं। बाद में सरस्वती में भी लिखने लगे थे। 'प्रताप' में इनकी क्रांतिकारी रचनाएं प्रकाशित होती थीं। 'दैनिक वर्तमान' के संस्थापकों में से ये एक थे। गोरखपुर से निकलने वाले 'कवि' का संपादन इन्होंने वर्षों किया। सन् 1928 में इन्होंने कविता प्रधान पत्र 'सुकवि' निकाला। संपादन, संचालन सनेही जी 22 वर्षों तक करते रहे। इस पत्र में पुराने और नए-दोनों श्रेणियों के कवियों की रचनाएं प्रकाशित होती थीं। समस्यापूर्ति इसका स्थायी स्तम्भ था, जिसके कारण कविता का प्रचार, प्रसार तो हुआ ही, न जाने कितने सहृदयों को सनेही जी ने रचनाकार भी बना दिया। सनेही जी ने अपने जीवन में असंख्य कवियों

को काव्याभ्यास कराकर सत्काव्यरचना में प्रवृत किया। वर्तमान के अनेक प्रसिद्ध कवि अपने को सनेही जी का शिष्य कहने में गौरव का अनुभव करते हैं। इन्होंने कवि सम्मेलनों की परंपरा का भी विकास किया और जीवन में अनेक कवि सम्मेलनों का सभापतित्त्व भी किया।

रचनाकाल एवं रचनाएँ

सनेही जी का रचनाकाल और रचना का विषय क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। इनकी प्रकाशित रचनाओं में प्रेम पच्चीसी, कुसुमांजलि, कृषक क्रंदन, त्रिशूल तरंग, राष्ट्रीय मन्त्र, संजीवनी, राष्ट्रीय वाणी, कलामे त्रिशूल तथा करुणा-कादम्बिनी हैं। स्पष्ट हैं कि सनेही जी का रससिद्ध व्यक्तित्त्व उनके ब्रजभाषा काव्य में ही परागत हुआ है। आचार्य पं. रामचंद्र शुक्ल ने लिखा भी है–

पं गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के प्रभाव से कानपुर में ब्रजभाषा काव्य के मधुस्त्रोत अब भी बराबर वैसे ही चल रहे हैं, जैसे 'पूर्ण' जी के समय में चलते थे।

सनेही जी की प्रथम कृति 'प्रेम पच्चीसी' का प्रकाशन सन् 1905 के आस-पास हुआ था। इसमेंश्रृंगार रस के ब्रजभाषा में लिखे पच्चीस छंदों का संकलन किया गया था। 'प्रेमपच्चीसी' का एक छंद यहाँ प्रस्तुत है–

जेहि चाह सों चाह्यो तुम्हें प्रथमै
अबहूँ तेहि चाह सों चाहनौ है।
तुम चाहौ न चाहौ लला हमको
कछु दीबो न याकौ उराहनौ है।
दु:ख दीजै कि कीजै दया दिल में
हर रंग तिहारौ सिराहनौ है।
मन भावै करौ मनभावन सो
हमें नेह कौ नातौ निभावनौ है।

साहित्यिक विशेषताएँ

समय के साथ सनेही जी का ब्रजभाषा काव्य भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से समृद्धतर होता गया। प्रेमव्यंजना को इन्होंने ब्रजभाषा काव्य में सर्वप्रमुख स्थान दिया है। इस प्रेमवर्णन में ये भक्तिकाल के कवियों की अपेक्षा रीतिकाल के कवियों से अधिक प्रभावित हैं। इतना अवश्य हैं कि इनमें रीतिकाल के

अधिकाँश कवियों के सामान हृदयानुभूति का अभाव और केवल कलात्मकता ही नहीं है, अपितु इनकी रचनाएं प्रसाद गुण लिए हुए अनुभूतियों का विषद वर्णन ही हैं। प्रेम के विषय में श्रीकृष्ण की निस्संगता को आधार बनाकर सनेही जी ने विरहणी गोपियों की स्थिति को किस प्रकार आमने-सामने रखकर इस छंद को प्रस्तुत किया है, यह देखते ही बनता है–

नव नेह कौ नेम निबाहत चातक, कानन ही में मवासौ रहै
रट 'पी कहाँ' 'पी कहाँ' की ही लगे, भरो नीर रहै पै उपासौ रहै
तजि पूरबी पौन न संगी कोऊ, कछु देत हिए कौं दिलासौ रहै
लगीं डोर सदैव पिया सों रहै, चहे बारहु मॉस पियासौ रहै

भाषा-शैली

सरल और सहज अभिव्यक्ति होते हुए भी ब्रजभाषा कवियों की अलंकार प्रियता की रीति सनेही जी ने भी निबाही है। उक्त छंद में 'पियासौ' में यमक अलंकार कितना स्वाभाविक ढंग से आ बैठा है। सनेही जी के काव्य में कलात्मकता भी कम नहीं है। समस्यापूर्ति के निमित्त लिखी गयी रचनाओं में चमत्कार का प्रदर्शन स्वभावत: अधिक होता है, परन्तु सनेही जी का यह पांडित्य केवल शब्दों में न होकर उनकी कल्पनाशीलता में है, परिणामत: इनके छंद अनुभूति को ही विशेष रूप से जाग्रत करने में समर्थ होते हैं। सनेही जी की ब्रजभाषा की रचनाओं मेंशृंगार रस के अतिरिक्त शांत, वीर, करुण, हास्य एवं अन्य रसों की भी कवितायें हैं। इनकी भाषा में अवधी, बैसवाड़ी, बुन्देलखंडी प्रयोगों के साथ अरबी-फारसी के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं इसलिए इनकी भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा नहीं कहीं जा सकती। यही नहीं खड़ी बोली का पुट भी जहाँ तहां इनकी भाषा में मिलता है। इन सब प्रयोगों से इनकी ब्रजभाषा सरल और प्रसादगुण युक्त भी बनी है यही सनेही जी की विशेषता है। इनकी कथन भंगिमाएं सहज और विविध हैं, इनका अलंकार विधान स्वाभाविक है, छंद योजना में ये प्राय: रीतिकाल के अनुवर्ती हैं। अर्थात् इस विवेच्य युग में भी सनेही जी ब्रज से बाहर रहकर भी ब्रजभाषा के एक बहुत बड़े स्तम्भ माने जाते हैं।

निधन

पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी का निधन 20 मई, 1972 को 89 वर्ष की अवस्था में कानपुर के उर्सला अस्पताल में हो गया।

रामनरेश त्रिपाठी

रामनरेश त्रिपाठी (जन्म- 4 मार्च, 1881, कोइरीपुर, जौनपुर, उत्तर प्रदेशय मृत्यु- 16 जनवरी, 1962, प्रयाग) प्राक्छायावादी युग के महत्त्वपूर्ण कवि हैं, जिन्होंने राष्ट्रप्रेम की कविताएँ भी लिखीं। इन्होंने कविता के अलावा उपन्यास, नाटक, आलोचना, हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास तथा बालोपयोगी पुस्तकें भी लिखीं। इनकी मुख्य काव्य कृतियाँ हैं–'मिलन, 'पथिक, 'स्वप्न तथा 'मानसी। रामनरेश त्रिपाठी ने लोक-गीतों के चयन के लिए कश्मीर से कन्याकुमारी और सौराष्ट्र से गुवाहाटी तक सारे देश का भ्रमण किया। 'स्वप्न' पर इन्हें हिंदुस्तान अकादमी का पुरस्कार मिला।

जीवन परिचय

'हे प्रभो! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए' जैसा प्रेरणादायी गीत रचकर, प्रार्थना के रूप में स्कूलों में छात्रों व शिक्षकों की वाणी में बसे, महाकवि पंडित रामनरेश त्रिपाठी साहित्य के आकाश के चमकीले नक्षत्र थे। रामनरेश त्रिपाठी का जन्म जिला जौनपुर के कोइरीपुर नामक गाँव में 4 मार्च, सन् 1881 ई. में एक कृषक परिवार में हुआ था। उनके पिता 'पंडित रामदत्त त्रिपाठी' परम धर्म व सदाचार परायण ब्राह्मण थे। पंडित रामदत्त त्रिपाठी भारतीय सेना में सूबेदार के पद पर रह चुके थे, उनका रक्त पंडित रामनरेश त्रिपाठी की रगों में धर्मनिष्ठा, कर्त्तव्यनिष्ठा व राष्ट्रभक्ति की भावना के रूप में बहता था। उन्हें अपने परिवार से ही निर्भीकता और आत्मविश्वास के गुण मिले थे। पंडित त्रिपाठी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के प्राइमरी स्कूल में हुई। जूनियर कक्षा उत्तीर्ण कर हाईस्कूल वह निकटवर्ती जौनपुर जिले में पढ़ने गए मगर वह हाईस्कूल की शिक्षा पूरी नहीं कर सके। पिता से अनबन होने पर अट्ठारह वर्ष की आयु में वह कलकत्ता चले गए।

हे प्रभो आनन्ददाता की रचना

पंडित त्रिपाठी में कविता के प्रति रुचि प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करते समय जाग्रत हुई थी। वह कलकत्ता में संक्रामक रोग हो जाने की वजह से अधिक समय तक नहीं रह सके। वह स्वास्थ्य सुधार के लिए एक व्यक्ति की सलाह मानकर जयपुर के सीकर ठिकाना स्थित फतेहपुर ग्राम में 'सेठ रामवल्लभ नेवरिया' के

पास चले गए। यह एक संयोग ही था कि मरणासन्न स्थिति में वह अपने घर परिवार में न जाकर सुदूर अपरिचित स्थान राजपूताना के एक अजनबी परिवार में जा पहुँचे जहाँ शीघ्र ही इलाज व स्वास्थ्यप्रद जलवायु पाकर रोगमुक्त हो गए। पंडित त्रिपाठी ने सेठ रामवल्लभ के पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा की जिम्मेदारी को कुशलतापूर्वक निभाया। इस दौरान उनकी लेखनी पर मां सरस्वती की मेहरबानी हुई और उन्होंने "हे प्रभो! आनन्ददाता.।" जैसी बेजोड़ रचना कर डाली जो आज भी अनेक स्कूलों में प्रार्थना के रूप में गाई जाती है।

साहित्य साधना की शुरुआत

पंडित त्रिपाठी की साहित्य साधना की शुरुआत फतेहपुर में होने के बाद उन्होंने उन दिनों तमाम छोटे-बड़े बालोपयोगी काव्य संग्रह, सामाजिक उपन्यास और हिन्दी महाभारत लिखे। उन्होंने हिन्दी तथा संस्कृत के सम्पूर्ण साहित्य का गहन अध्ययन किया। पंडित त्रिपाठी ज्ञान एवं अनुभव की संचित पूंजी लेकर वर्ष 1915 में पुण्यतीर्थ एवं ज्ञानतीर्थ प्रयाग गए और उसी क्षेत्र को उन्होंने अपनी कर्मस्थली बनाया। उन्होंने थोड़ी पूंजी से प्रकाशन का व्यवसाय भी आरम्भ किया। पंडित त्रिपाठी ने गद्य और पद्य दोनों में रचनाएँ की तथा मौलिकता के नियम को ध्यान में रखकर रचनाओं को अंजाम दिया। हिन्दी जगत में वह मार्गदर्शी साहित्यकार के रूप में अवरित हुए और सारे देश में लोकप्रिय हो गए।

हिन्दी के प्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट राष्ट्रीय खण्डकाव्य "पथिक" की रचना उन्होंने वर्ष 1920 में 21 दिन में की। इसके अतिरिक्त उनके प्रसिद्ध मौलिक खण्डकाव्यों में "मिलन" और "स्वप्न" भी शामिल हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम से 'कविता कौमुदी' के सात विशाल एवं अनुपम संग्रह-ग्रंथों का भी सम्पादन एवं प्रकाशन किया। पंडित त्रिपाठी कलम के धनी ही नहीं बल्कि कर्मशूर भी थे। महात्मा गाँधी के निर्देश पर त्रिपाठी जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार मंत्री के रूप में हिन्दी जगत के दूत बनकर दक्षिण भारत गए थे। वह पक्के गांधीवादी देशभक्त और राष्ट्र सेवक थे। स्वाधीनता संग्राम और किसान आन्दोलनों में भाग लेकर वह जेल भी गए। पंडित त्रिपाठी को अपने जीवन काल में कोई राजकीय सम्मान तो नहीं मिला पर उससे भी कहीं ज्यादा गौरवपद लोक सम्मान तथा अक्षय यश उन पर अवश्य बरसा।

स्वच्छन्दतावादी कवि

रामनरेश त्रिपाठी स्वच्छन्दतावादी भावधारा के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। इनसे पूर्व श्रीधर पाठक ने हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावाद (रोमाण्टिसिज्म) को जन्म दिया था। रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी रचनाओं द्वारा उक्त परम्परा को विकसित किया और सम्पन्न बनाया। देश प्रेम तथा राष्ट्रीयता की अनुभूतियाँ इनकी रचनाओं का मुख्य विषय रही हैं। हिन्दी कविता के मंच पर ये राष्ट्रीय भावनाओं के गायक के रूप में बहुत लोकप्रिय हुए। प्रकृति-चित्रण में भी इन्हें अदभुत सफलता प्राप्त हुई है।

काव्य कृतियाँ

इनकी चार काव्य कृतियाँ उल्लेखनीय हैं–

1. 'मिलन' (1918 ई.)
2. 'पथिक' (1921 ई.)
3. 'मानसी' (1927 ई.)
4. 'स्वप्न' (1929 ई.)। इनमें 'मानसी' फुटकर कविताओं का संग्रह है और शेष तीनों कृतियाँ प्रेमाख्यानक खण्ड काव्य है।

खण्ड काव्य

इन्होंने खण्ड काव्यों की रचना के लिए किन्हीं पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथा सूत्रों का आश्रय नहीं लिया है, वरन् अपनी कल्पना शक्ति से मौलिक तथा मार्मिक कथाओं की सृष्टि की है। कवि द्वारा निर्मित होने के कारण इन काव्यों के चरित्र बड़े आकर्षक हैं और जीवन के साँचे में ढाले हुए जान पड़ते हैं। इन तीनों ही खण्ड काव्यों की एक सामान्य विशेषता यह हैं कि इनमें देशभक्ति की भावनाओं का समावेश बहुत ही सरसता के साथ किया गया है। उदाहरण के लिए 'स्वप्न' नामक खण्ड काव्य को लिया जा सकता है। इसका नायक वसन्त नामक नवयुवक एक ओर तो अपनी प्रिया के प्रगाढ़ प्रेम में लीन रहना चाहता है, मनोरम प्रकृति के क्रोड़ में उसके साहचर्य-सुख की अभिलाषा करता है और दूसरी ओर समाज का दुख-दर्द दूर करने के लिए राष्ट्रोद्धार की भावना से आन्दोलित होता रहता है। उसके मन में इस प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व बहुत समय तक चलता है। अन्ततः वह अपनी प्रिया के द्वारा प्रेरित किये जाने पर राष्ट्र प्रेम को प्राथमिकता देता है और शत्रुओं द्वारा

पदाक्रान्त स्वेदश की रक्षा एवं उद्धार करने में सफल हो जाता है। इस प्रकार की भावनाओं से परिपूर्ण होने के कारण रामनरेश त्रिपाठी के काव्य बहुत दिनों तक राष्ट्रप्रेमी नवयुवकों के कण्ठहार बन हुए थे।

प्रकृति चित्रण

रामनरेश त्रिपाठी अपनी काव्य कृतियों में प्रकृति के सफल चितेरे रहे हैं। इन्होंने प्रकृति चित्रण व्यापक, विशद और स्वतंत्र रूप में किया है। इनके सहज-मनोरम प्रकृति-चित्रों में कहीं-कहीं छायावाद की झलक भी मिल जाती है। उदाहरण के लिए 'पथिक' की दो पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

"प्रति क्षण नूतन वेष बनाकर रंग-विरंग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद माला॥"

भाषा

प्रकृति चित्र हों, या अन्यान्य प्रकार के वर्णन, सर्वत्र रामनरेश त्रिपाठी ने भाषा का बहुत ख्याल रखा है। इनके काव्यों की भाषा शुद्ध, सहज खड़ी बोली है, जो इस रूप में हिन्दी काव्य में प्रथम बार प्रयुक्त दिखाई देती है। इनमें व्याकरण तथा वाक्य-रचना सम्बन्धी त्रुटियाँ नहीं मिलतीं। इन्होंने कहीं-कहीं उर्दू के प्रचलित शब्दों और उर्दू-छन्दों का भी व्यवहार किया है–

"मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में॥
बनकर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू।
मैं देखता तुझे था माशूक के बदन में"॥

कृतियाँ

उपन्यास तथा नाटक

रामनरेश त्रिपाठी ने काव्य-रचना के अतिरिक्त उपन्यास तथा नाटक लिखे हैं, आलोचनाएँ की हैं और टीका भी। इनके तीन उपन्यास उल्लेखनीय हैं–

1. 'वीरागंना' (1911 ई.),
2. 'वीरबाला' (1911 ई.),
3. 'लक्ष्मी' (1924 ई.)

नाट्य कृतियाँ

तीन उल्लेखनीय नाट्य कृतियाँ हैं–

1. 'सुभद्रा' (1924 ई.),
2. 'जयन्त' (1934 ई.),
3. 'प्रेमलोक' (1934 ई.)

अन्य कृतियाँ

आलोचनात्मक कृतियों के रूप में इनकी दो पुस्तकें 'तुलसीदास और उनकी कविता' तथा 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' विचारणीय हैं। टीकाकार के रूप में अपनी 'रामचरितमानस की टीका' के कारण स्मरण किये जाते हैं। 'तीस दिन मालवीय जी के साथ' त्रिपाठी जी की उत्कृष्ट संस्मरणात्मक कृति है। इनके साहित्यिक कृतित्त्व का एक महत्त्वपूर्ण भाग सम्पादन कार्यों के अंतर्गत आता है। सन् 1925 ई. में इन्होंने हिन्दी, उर्दू, संस्कृत और बांग्ला की लोकप्रिय कविताओं का संकलन और सम्पादन किया। इनका यह कार्य आठ भागों में 'कविता कौमुदी' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसी में एक भाग ग्राम-गीतों का है। ग्राम-गीतों के संकलन, सम्पादन और उनके भावात्मक भाष्य प्रस्तुत करने की दृष्टि से इनका कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है। ये हिन्दी में इस दिशा में कार्य करने वाले पहले व्यक्ति रहे हैं और इन्हें पर्याप्त सफलता तथा कीर्ति मिली है। 1931 से 1941 ई. तक इन्होंने 'वानर' का सम्पादन तथा प्रकाशन किया था। इनके द्वारा सम्पादित और मौलिक रूप में लिखित बालकोपयोगी साहित्य भी बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध है।

प्रसिद्धि

इनकी प्रसिद्धि मुख्यतः इनके कवि-रूप के कारण हुई। ये 'द्विवेदीयुग' और 'छायावाद युग' की महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में आते हैं। पूर्व छायावाद युग के खड़ी बोली के कवियों में इनका नाम बहुत आदर से लिया जाता है। इनका प्रारम्भिक कार्य-क्षेत्र राजस्थान और इलाहाबाद रहा। इन्होंने अन्तिम जीवन सुल्तानपुर में बिताया।

मृत्यु

रामनरेश त्रिपाठी ने 16 जनवरी, 1962 को अपने कर्मभूमि प्रयाग में ही अंतिम सांस ली। पंडित त्रिपाठी के निधन के बाद आज उनके गृह जनपद

सुलतानपुर में एक मात्र सभागार स्थापित है, जो उनकी स्मृतियों को ताजा करता है।

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त खड़ी बोली के प्रथम महत्वपूर्ण कवि थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से आपने खड़ी बोली को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया और अपनी कविता के द्वारा खड़ी बोली को एक काव्य-भाषा के रूप में निर्मित करने में अथक प्रयास किया। इस तरह ब्रजभाषा जैसी समृद्ध काव्य भाषा को छोड़कर समय और संदर्भों के अनुकूल होने के कारण नये कवियों ने इसे ही अपनी काव्य-अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। हिन्दी कविता के इतिहास में गुप्त जी का यह सबसे बड़ा योगदान है।

जीवन परिचय

मैथिलीशरण गुप्त जी का जन्म 3 अगस्त 1886 चिरगाँव, झाँसी, उत्तर प्रदेश में हुआ था। संभ्रांत वैश्य परिवार में जन्मे मैथिलीशरण गुप्त के पिता का नाम 'सेठ रामचरण' और माता का नाम 'श्रीमती काशीबाई' था। पिता रामचरण एक निष्ठावान् प्रसिद्ध राम भक्त थे। इनके पिता 'कनकलता' उप नाम से कविता किया करते थे और राम के विष्णुत्व में अटल आस्था रखते थे। गुप्त जी को कवित्व प्रतिभा और राम भक्ति पैतृक देन में मिली थी। वे बाल्यकाल में ही काव्य रचना करने लगे। पिता ने इनके एक छंद को पढ़कर आशीर्वाद दिया कि 'तू आगे चलकर हमसे हजार गुनी अच्छी कविता करेगा' और यह आशीर्वाद अक्षरशः सत्य हुआ। मुंशी अजमेरी के साहचर्य ने उनके काव्य-संस्कारों को विकसित किया। उनके व्यक्तित्त्व में प्राचीन संस्कारों तथा आधुनिक विचारधारा दोनों का समन्वय था। मैथिलीशरण गुप्त जी को साहित्य जगत् में 'दद्दा' नाम से सम्बोधित किया जाता था।

शिक्षा

मैथिलीशरण गुप्त की प्रारम्भिक शिक्षा चिरगाँव, झाँसी के राजकीय विद्यालय में हुई। प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त गुप्त जी झाँसी के मेकडॉनल हाईस्कूल में अंग्रेजी पढ़ने के लिए भेजे गए, पर वहाँ इनका मन न लगा और दो वर्ष पश्चात् ही घर पर इनकी शिक्षा का प्रबंध किया। लेकिन पढ़ने

की अपेक्षा इन्हें चकई फिराना और पतंग उड़ाना अधिक पसंद था। फिर भी इन्होंने घर पर ही संस्कृत, हिन्दी तथा बांग्ला साहित्य का व्यापक अध्ययन किया। इन्हें 'आल्हा' पढ़ने में भी बहुत आनंद आता था।

काव्य प्रतिभा

इसी बीच गुप्तजी मुंशी अजमेरी के संपर्क में आये और उनके प्रभाव से इनकी काव्य-प्रतिभा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। अत: अब ये दोहे, छप्पयों में काव्य रचना करने लगे, जो कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में प्रकाशित होने वाले 'वैश्योपकारक' पत्र में प्रकाशित हुई। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जब झाँसी के रेलवे ऑफिस में चीफ क्लर्क थे, तब गुप्तजी अपने बड़े भाई के साथ उनसे मिलने गए और कालांतर में उन्हीं की छत्रछाया में मैथिलीशरण जी की काव्य प्रतिभा पल्लवित व पुष्पित हुई। वे द्विवेदी जी को अपना काव्य गुरु मानते थे और उन्हीं के बताये मार्ग पर चलते रहे तथा जीवन के अंत तक साहित्य साधना में रत रहे। उन्होंने राष्ट्रीय आंदलनों में भी भाग लिया और जेल यात्रा भी की।

लोकसंग्रही कवि

मैथिलीशरण गुप्त जी स्वभाव से ही लोकसंग्रही कवि थे और अपने युग की समस्याओं के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील रहे। उनका काव्य एक ओर वैष्णव भावना से परिपोषित था, तो साथ ही जागरण व सुधार युग की राष्ट्रीय नैतिक चेतना से अनुप्राणित भी था। लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल, गणेश शंकर विद्यार्थी और मदनमोहन मालवीय उनके आदर्श रहे। महात्मा गांधी के भारतीय राजनीतिक जीवन में आने से पूर्व ही गुप्त का युवा मन गरम दल और तत्कालीन क्रान्तिकारी विचारधारा से प्रभावित हो चुका था। 'अनघ' से पूर्व की रचनाओं में, विशेषकर जयद्रथ वध और भारत भारती में कवि का क्रान्तिकारी स्वर सुनाई पड़ता है। बाद में महात्मा गांधी, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू और विनोबा भावे के सम्पर्क में आने के कारण वह गांधीवाद के व्यावहारिक पक्ष और सुधारवादी आंदोलनों के समर्थक बने। 1936 में गांधी ने ही उन्हें मैथिली काव्य-मान ग्रन्थ भेंट करते हुए राष्ट्रकवि का सम्बोधन दिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी के संसर्ग से गुप्तजी की काव्य-कला में निखार आया और उनकी रचनाएँ 'सरस्वती' में निरन्तर प्रकाशित होती रहीं। 1909 में उनका पहला काव्य जयद्रथ-वध आया। जयद्रथ-वध की लोकप्रियता ने उन्हें लेखन और

प्रकाशन की प्रेरणा दी। 59 वर्षों में गुप्त जी ने गद्य, पद्य, नाटक, मौलिक तथा अनूदित सब मिलाकर, हिन्दी को लगभग 74 रचनाएँ प्रदान की हैं। जिनमें दो महाकाव्य, 20 खंड काव्य, 17 गीतिकाव्य, चार नाटक और गीतिनाट्य हैं।

देश प्रेम

काव्य के क्षेत्र में अपनी लेखनी से संपूर्ण देश में राष्ट्रभक्ति की भावना भर दी थी। राष्ट्रप्रेम की इस अजस्र धारा का प्रवाह बुंदेलखंड क्षेत्र के चिरगांव से कविता के माध्यम से हो रहा था। बाद में इस राष्ट्रप्रेम की धारा को देश भर में प्रवाहित किया था, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने।

जो भरा नहीं है भावों से जिसमें बहती रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

पिताजी के आशीर्वाद से वह राष्ट्रकवि के सोपान तक पदासीन हुए। महात्मा गांधी ने उन्हें राष्ट्रकवि कहे जाने का गौरव प्रदान किया। भारत सरकार ने उनकी सेवाओं को देखते हुए उन्हें दो बार राज्यसभा की सदस्यता प्रदान की। हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-साधना सदैव स्मरणीय रहेगी। बुंदेलखंड में जन्म लेने के कारण गुप्त जी बोलचाल में बुंदेलखंडी भाषा का ही प्रयोग करते थे। धोती और बंडी पहनकर माथे पर तिलक लगाकर संत के रूप में अपनी हवेली में बैठे रहा करते थे। उन्होंने अपनी साहित्यिक साधना से हिन्दी को समृद्ध किया। मैथिलीशरण गुप्त के जीवन में राष्ट्रीयता के भाव कूट-कूट कर भर गए थे। इसी कारण उनकी सभी रचनाएं राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत हैं। वे भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के परम भक्त थे, परन्तु अंधविश्वासों और थोथे आदर्शों में उनका विश्वास नहीं था। वे भारतीय संस्कृति के नवीनतम रूप की कामना करते थे।

महाकाव्य

मैथिलीशरण गुप्त को काव्य क्षेत्र का शिरोमणि कहा जाता है। मैथिलीशरण जी की प्रसिद्धि का मूलाधार भारत-भारती है। भारत-भारती उन दिनों राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का घोषणापत्र बन गई थी। साकेत और जयभारत, दोनों महाकाव्य हैं। साकेत रामकथा पर आधारित है, किन्तु इसके केन्द्र में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला है। साकेत में कवि ने उर्मिला और लक्ष्मण के दाम्पत्य जीवन के हृदयस्पर्शी प्रसंग तथा उर्मिला की विरह दशा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया

है, साथ ही कैकेयी के पश्चात्ताप को दर्शाकर उसके चरित्र का मनोवैज्ञानिक एवं उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया है। यशोधरा में गौतम बुद्ध की मानिनी पत्नी यशोधरा केन्द्र में है। यशोधरा की मन:स्थितियों का मार्मिक अंकन इस काव्य में हुआ है। विष्णुप्रिया में चैतन्य महाप्रभु की पत्नी केन्द्र में है। वस्तुत: गुप्त जी ने रबीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा बांग्ला भाषा में रचित 'काव्येर उपेक्षित नार्या' शीर्षक लेख से प्रेरणा प्राप्त कर अपने प्रबन्ध काव्यों में उपेक्षित, किन्तु महिमामयी नारियों की व्यथा-कथा को चित्रित किया और साथ ही उसमें आधुनिक चेतना के आयाम भी जोड़े।

विविध धर्मों, सम्प्रदायों, मत-मतांतरों और विभिन्न संस्कृतियों के प्रति सहिष्णुता व समन्वय की भावना गुप्त जी के काव्य का वैशिष्ट्य है। पंचवटी काव्य में सहज वन्य-जीवन के प्रति गहरा अनुराग और प्रकृति के मनोहारी चित्र हैं, तो नहुष पौराणिक कथा के आधार के माध्यम से कर्म और आशा का संदेश है। झंकार वैष्णव भावना से ओतप्रोत गीतिकाव्य है, तो गुरुकुल और काबा-कर्बला में कवि के उदार धर्म-दर्शन का प्रमाण मिलता है। खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण और विकास में गुप्त जी का अन्यतम योगदान रहा।

भारत-भारती

'भारत-भारती', मैथिलीशरण गुप्तजी द्वारा स्वदेश प्रेम को दर्शाते हुए वर्तमान और भावी दुर्दशा से उबरने के लिए समाधान खोजने का एक सफल प्रयोग है। भारतवर्ष के संक्षिप्त दर्शन की काव्यात्मक प्रस्तुति 'भारत-भारती' निश्चित रूप से किसी शोध कार्य से कम नहीं है। गुप्तजी की सृजनता की दक्षता का परिचय देने वाली यह पुस्तक कई सामाजिक आयामों पर विचार करने को विवश करती है। यह सामग्री तीन भागों में बाँटी गयी है।

अतीत-खंड

भारत-भारती

यह भाग भारतवर्ष के इतिहास पर गर्व करने को पूर्णत: विवश करता है। उस समय के दर्शन, धर्म-काल, प्राकृतिक संपदा, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, सामाजिक-व्यवस्था जैसे तत्त्वों को संक्षिप्त रूप से स्मरण करवाया गया है। अतिशयोक्ति से दूर इसकी सामग्री संलग्न दी गयी टीका-टिप्पणियों के प्रमाण

के कारण सरलता से ग्राह्य हो जाती हैं। मेगस्थनीज से लेकर आर. सी. दत्त. तक के कथनों को प्रासंगिक ढंग से पाठकों के समक्ष रखना एक कुशल नियोजन का सूचक है। निरपेक्षता का ध्यान रखते हुए निन्दा और प्रशंसा के प्रदर्शन हुए है, जैसे मुगल काल के कुछ क्रूर शासकों की निंदा हुई है तो अकबर जैसे मुगल शासक का बखान भी हुआ है। अंग्रेजों की उनके विष्कार और आधुनिकीकरण के प्रचार के कारण प्रशंसा भी हुई है।

भारतवर्ष के दर्शन पर वे कहते हैं–
पाये प्रथम जिनसे जगत् ने दार्शनिक संवाद हैं–
गौतम, कपिल, जैमिनी, पतंजली, व्यास और कणाद हैं।
नीति पर उनके द्विपद ऐसे हैं–
सामान्य नीति समेत ऐसे राजनीतिक ग्रन्थ हैं–
संसार के हित जो प्रथम पुण्याचरण के पंथ हैं।
सूत्रग्रंथ के सन्दर्भ में ऋषियों के विद्वत्ता पर वे लिखते हैं–
उन ऋषि-गणों ने सूक्ष्मता से काम कितना है लिया,
आश्चर्य है, घट में उन्होंने सिन्धु को है भर दिया।

वर्तमान-खंड

दारिद्रर्य, नैतिक पतन, अव्यवस्था और आपसी भेदभाव से जूझते उस समय के देश की दुर्दशा को दर्शाते हुए, सामाजिक नूतनता की माँग रखी गयी है।

अपनी हुई आत्म-विस्मृति पर वे कहते हैं–
हम आज क्या से क्या हुए, भूले हुए हैं हम इसे,
है ध्यान अपने मान का, हममें बताओ अब किसे!
पूर्वज हमारे कौन थे, हमको नहीं यह ज्ञान भी,
है भार उनके नाम पर दो अंजली जल-दान भी।

नैतिक और धार्मिक पतन के लिए गुप्तजी ने उपदेशकों, संत-महंतों और ब्राह्मणों की निष्क्रियता और मिथ्या-व्यवहार को दोषी मान शब्द बाण चलाये हैं। इस तरह कविवर की लेखनी सामाजिक दुर्दशा के मुख्य कारणों को खोज उनके सुधार की माँग करती है। हमारे सामाजिक उत्तरदायित्व की निष्क्रियता को उजागर करते हुए भी 'वर्तमान खंड' आशा की गाँठ को बाँधे रखती है।

भविष्यत-खंड

अपने ज्ञान, विवेक और विचारों की सीमा को छूते हुए राष्ट्रकवि ने समस्या समाधान के हल खोजने और लोगों से उसके के लिए आह्वान करने का भरसक प्रयास किया है।

आर्य वंशज हिन्दुओं को देश पुनर्स्थापना के लिए प्रेरित करते हुए वे कहते हैं–

हम हिन्दुओं के सामने आदर्श जैसे प्राप्त हैं–
संसार में किस जाति को, किस ठौर वैसे प्राप्त हैं,
भव-सिन्धु में निज पूर्वजों के रीति से ही हम तरें,
यदि हो सके वैसे न हम तो अनुकरण तो भी करें।

पुस्तक की अंत की दो रचनाएं 'शुभकामना' और 'विनय' कविवर की देशभक्ति की परिचायक हैं। तन में देश सद्भावना की ऊर्जा का संचार करने वाली यह दो रचनाएं किसी प्रार्थना से कम नहीं लगतीं।

वह अमर लेखनी ईश्वर से प्रार्थना करती है–
इस देश को हे दीनबन्धो!आप फिर अपनाइए,
भगवान! भारतवर्ष को फिर पुण्य-भूमि बनाइये,
जड़-तुल्य जीवन आज इसका विघ्न-बाधा पूर्ण है,
हेरम्ब! अब अवलंब देकर विघ्नहर कहलाइए।

राष्ट्रकवि

अपने साहित्यिक गुरु महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से गुप्त जी ने 'भारत-भारती' की रचना की। 'भारत-भारती' के प्रकाशन से ही गुप्त जी प्रकाश में आये। उसी समय से आपको 'राष्ट्रकवि' के नाम से अभिनंदित किया गया। उनकी साहित्य साधना सन् 1921 से सन् 1964 तक निरंतर आगे बढ़ती रही। गुप्त जी युग-प्रतिनिधि राष्ट्रीय कवि थे। इस अर्ध-शताब्दी की समस्त सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक हलचलों का प्रतिनिधित्व इनकी रचनाओं में मिल जाता है। इनके काव्य में राष्ट्र की वाणी मुखर हो उठी है। देश के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या दासता से मुक्ति थी। गुप्त जी ने 'भारत-भारती' तथा अपनी अन्य रचनाओं के माध्यम से इस दिशा में प्रेरणा प्रदान की। इन्होंने अतीत गौरव का भाव जगाकर वर्तमान को सुधारने की प्रेरणा दी। अपनी अभिलाषा अभिव्यक्त करते हुए वे कहते हैं–

मानव-भवन में आर्यजन, जिसकी उतारें आरती।
भगवान् भारतवर्ष में, गूंजे हमारी भारती।'

इस युग की प्रमुख समस्या हिन्दू-मुस्लिम एकता थी। गुप्त जी ने अपनी अनेक रचनाओं में दोनों की एकता पर बल दिया। 'काबा और कर्बला' में उन्होंने मुसलमानों की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास किया है। इस प्रकार गुप्त जी ने समस्त समस्याओं का राष्ट्रीय दृष्टि से समाधान प्रस्तुत किया है।

काव्य सौन्दर्य

मैथिलीशरण गुप्त अपनी भाव रश्मियों से हिन्दी साहित्य को प्रकाशित करने वाले युग कवि थे। 40 वर्ष तक निरंतर इनकी रचनाओं में युग स्वर गूंजता रहा। इन्होंने गौरवपूर्ण अतीत को प्रस्तुत करने के साथ-साथ भविष्य का भी भव्य रूप प्रस्तुत किया-

मैं अतीत नहीं भविष्यत् भी हूँ आज तुम्हारा।

गुप्त जी मानवतावाद के पोषक और समर्थक थे। इनकी भगवत भावना महान् थी। इनके काव्य में निर्गुण नारायण ही पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए भूतल पर आते हैं।

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल ही को स्वर्ग बनाने आया।

गुप्त जी का काव्य मानस की प्रेरणा और प्रवृत्ति का स्रोत है। आधुनिक काल का यह समन्वित रूप है। मानवीय चरित्र की जितनी भी संभावनाएँ संभव हैं, उस सबकी सृष्टि राम का चरित्र है।

भाषा-शैली

शैलियों के निर्वाचन में मैथिलीशरण गुप्त ने विविधता दिखाई, किन्तु प्रधानता प्रबंधात्मक इतिवृत्तमय शैली की है। उनके अधिकांश काव्य इसी शैली में हैं-'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'नहुष', 'सिद्धराज', 'त्रिपथक', 'साकेत' आदि प्रबंध शैली में हैं। यह शैली दो प्रकार की है-'खंड काव्यात्मक' तथा 'महाकाव्यात्मक'। साकेत महाकाव्य है तथा शेष सभी काव्य खंड काव्य के अंतर्गत आते हैं।

गुप्त जी की एक शैली विवरण शैली भी है। 'भारत-भारती' और 'हिन्दू' इस शैली में आते हैं।

तीसरी शैली गीत शैली है। इसमें गुप्त जी ने नाटकीय प्रणाली का अनुगमन किया है। 'अनघ' इसका उदाहरण है।

आत्मोद्‌गार प्रणाली गुप्त जी की एक और शैली है, जिसमें 'द्वापर' की रचना हुई है।

नाटक, गीत, प्रबंध, पद्य और गद्य सभी के मिश्रण एक मिश्रित शैली है, जिसमें 'यशोधरा' की रचना हुई है।

इन सभी शैलियों में गुप्त जी को समान रूप से सफलता नहीं मिली। उनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह हैं कि उसमें इनका व्यक्तित्त्व झलकता है। पूर्ण प्रवाह है। भावों की अभिव्यक्ति में सहायक होकर उपस्थित हुई हैं। मैथिलीशरण गुप्त की काव्य भाषा खड़ी बोली है। इस पर उनका पूर्ण अधिकार है। भावों को अभिव्यक्त करने के लिए गुप्त जी के पास अत्यंत व्यापक शब्दावली है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं की भाषा तत्सम है। इसमें साहित्यिक सौन्दर्य कला नहीं है। 'भारत-भारती' की भाषा में खड़ी बोली की खड़खड़ाहट है, किन्तु गुप्त जी की भाषा क्रमशः विकास करती हुई सरस होती गयी। संस्कृत के शब्द भंडार से ही उन्होंने अपनी भाषा का भण्डार भरा है, लेकिन 'प्रियप्रवास' की भाषा में संस्कृत बहुला नहीं होने पायी। इसमें प्राकृत रूप सर्वथा उभरा हुआ है। भाव व्यंजना को स्पष्ट और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए संस्कृत का सहारा लिया गया है। संस्कृत के साथ गुप्त जी की भाषा पर प्रांतीयता का भी प्रभाव है। उनका काव्य भाव तथा कला पक्ष दोनों की दृष्टि से सफल है।

काव्यगत विशेषताएँ

इनके काव्य की विशेषताएँ इस प्रकार उल्लेखित की जा सकती हैं–

1. राष्ट्रीयता और गांधीवाद की प्रधानता।
2. गौरवमय अतीत के इतिहास और भारतीय संस्कृति की महत्ता।
3. पारिवारिक जीवन को भी यथोचित महत्ता।
4. नारी मात्र को विशेष महत्व।
5. प्रबंध और मुक्तक दोनों में लेखन।
6. शब्द शक्तियों तथा अलंकारों के सक्षम प्रयोग के साथ मुहावरों का भी प्रयोग।

पतिवियुक्ता नारी का वर्णन

स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रकवि के आसंदी पर आरूढ़ मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपने साठ वर्षीय काव्य साधना, कला में लगभग सत्तर कृतियों की रचना करके न केवल हिन्दी साहित्य की अपितु सम्पूर्ण भारतीय समाज की अमूल्य सेवा की है। उन्होंने अपने काव्य में एक ओर भारतीय राष्ट्रवाद, संस्कृति, समाज तथा राजनीति के विषय में नये प्रतिमानों को प्रतिष्ठित किया, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के अंत:सम्बंधों के आधार पर इन्हें नवीन अर्थ भी प्रदान किया है। गुप्तजी द्विवेदी युग के प्रमुख कवि थे। वह युग जातीय जागरण और राष्ट्रीय उन्मेष का काल था। वे अपने युग और उसकी समस्याओं के प्रति अत्यंत संवेदनशील थे। उनका संवेदनशील और जागरूक कवि हृदय देश की वर्तमान दशा से क्षुब्ध था। वे धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों को इस दुर्दशा का मूल कारण मानते थे। अत: उनके राष्ट्रवाद की प्रथम जागृति धार्मिक और सामाजिक सुधारवाद के रूप में दिखाई देती है। नारियों की दुरवस्था तथा दु:खियों दीनों और असहायों की पीड़ा ने उनके हृदय में करुणा के भाव भर दिये थे। यही वजह हैं कि उनके अनेक काव्य ग्रंथों में नारियों की पुनर्प्रतिष्ठा एवं पीड़ित के प्रति सहानुभूति झलकती है। नारियों की दशा को व्यक्त करती उनकी ये पंक्तियां पाठकों के हृदय में करुणा उत्पन्न करती है–

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

एक समुन्नत, सुगठित और सशक्त राष्ट्रीय नैतिकता से युक्त आदर्श समाज, मर्यादित एवं स्नेहसिक्त परिवार और उदात्त चरित्र वाले नर–नारी के निर्माण की दिशा में उन्होंने प्राचीन आख्यानों को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाकर उनके सभी पात्रों को एक नया अभिप्राय दिया है। जयद्रथवध, साकेत, पंचवटी, सैरन्ध्री, बक संहार, यशोधरा, द्वापर, नहुष, जयभारत, हिडिम्बा, विष्णुप्रिया एवं रत्नावली आदि रचनाएं इसके उदाहरण हैं। गुप्त जी मर्यादा प्रेमी भारतीय कवि हैं। उनके ग्रंथों के सुपात्र वारिक व्यक्ति हैं। उन्होंने संयुक्त परिवार को सर्वोपरि महत्व दिया है तथा नैतिकता और मर्यादा से युक्त सहज सरल पारिवारिक व्यक्ति को श्रेष्ठ माना है। ऐसे ही व्यक्ति में उदात्त गुणों का प्रादुर्भाव हो सकता है। इस संदर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कथन द्रष्टव्य है–मैथिलीशरण गुप्त ने सम्पूर्ण भारतीय पारिवारिक वातावरण में उदात्त चरित्रों का निर्माण किया है। उनके काव्य शुरू से अंत तक प्रेरणा देने वाले

हैं। उनमें व्यक्तित्त्व का स्वतः समुच्छित उच्छ्वास नहीं है, पारिवारिक व्यक्तित्त्व का और संयत जीवन का विलास है। वस्तुतः गुप्तजी पारिवारिक जीवन के कथाकार हैं। परिवार का अस्तित्त्व नारी के बिना असंभव है। इसीलिए वे नारी को जीवन का महत्वपूर्ण अंग मानते हैं। नारी के प्रति उनकी दृष्टि रोमानी न होकर मर्यादावादी और सांस्कृतिक रही है। वे अपने नारी पात्रों में उन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा करते हैं, जो भारतीय कुलवधू के आदर्श माने गये हैं। उनकी दृष्टि में नारी भोग्य मात्र नहीं अपितु पुरुष का पूरक अंग है। इसीलिए उनके काव्य में नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्त्व स्वाभिमान, दर्प और स्वावलम्बन का समुचित चित्रण हुआ है। उनके काव्य में नारी, अधिकारों के प्रति सजग, शीलवती, मेधाविनी, समाजसेविका, साहसवती, त्यागशीलता और तपस्विनी के रूप में उपस्थित हुई। इस अनुपम सृष्टि, इसके सर्जक और इसके महत्वपूर्ण घटक नर-नारी के प्रति गुप्तजी की पूर्ण आस्था है। इस आस्था के दर्शन उनके काव्य में होते हैं। आस्था का विखंडन गुप्तजी के लिए असहनीय है। नारी के प्रति पुरुष का अनुचित आचरण उन्हें अस्वीकार है। इसीलिए 'द्वापर' में विधृता के माध्यम से इन पंक्तियों को प्रस्तुत करते हैं–

नर के बांटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई।
माँ बेटी या बहिन हाय, क्या संग नहीं लाई।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी गुप्तजी के काव्य-गुरु थे। द्विवेदी जी के कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता के विमर्श ने गुप्त जी को साकेत महाकाव्य लिखने के लिए प्रेरित किया। भारत वर्ष में गूंजे हमारी भारती की प्रार्थना करने वाले कवि कालान्तर में, विरहिणी नारियों के दुःख से द्रवित हो जाते हैं। परिवार में रहती हुई पतिवियुक्ता नारी की पीड़ा को जिस शिद्दत के साथ गुप्तजी अनुभव करते हैं और उसे जो बानगी देते हैं, वह आधुनिक साहित्य में दुर्लभ है। उनकी वियोगिनी नारी पात्रों में उर्मिला (साकेत महाकाव्य), यशोधरा (काव्य) और विष्णुप्रिया खण्डकाव्य प्रमुख हैं। उनका करूण विप्रलम्भ तीनों पात्रों में सर्वाधिक मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। उनके जीवन संघर्ष, उदात्त विचार और आचरण की पवित्रता आदि मानवीय जिजीविषा और सोद्देश्यता को प्रमाणित करते हैं। गुप्तजी की तीनों विरहिणी नायिकाएं विरह ताप में तपती हुई भी अपने तन-मन को भस्म नहीं होने देती वरन् कुंदन की तरह उज्ज्वल वर्णी हो जाती हैं। साकेत की उर्मिला रामायण और रामचरितमानस की सर्वाधिक उपेक्षित पात्र है। इस विरहिणी नारी के जीवन वृत्त और पीड़ा की अनुभूतियों का विशद वर्णन

आख्यानकारों ने नहीं किया है। उर्मिला लक्ष्मण की पत्नी है और अपनी चारों बहनों में वहीं एक मात्र ऐसी नारी है, जिसके हिस्से में चौदह वर्षों के लिए पतिवियुक्ता होने का दु:ख मिला है। उनकी अन्य तीनों बहनों में सीता, राम के साथ, मांडवी भरत के सान्निध्य में तथा श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्न के संग जीवन यापन करती हैं। उर्मिला का जीवन वृत्त और उसकी विरह-वेदना सर्वप्रथम मैथिलीशरण गुप्त जी की लेखनी से साकार हुई हैं। डॉ. जगीनचन्द सहगल लिखते हैं–साकेत मैथिलीशरण गुप्त का निज कवि धन है। यह उनका जीवन कार्य है। डॉ. सहगल कवि के लक्ष्य की ओर इंगित करते हुए आगे लिखते हैं साकेत के कवि का लक्ष्य रामकथा के उपेक्षित पात्रों को प्रकाश में लाना तथा उसके देवत्व गुणयुक्त पात्रों को मानव रूप में उपस्थित करना है। गुप्तजी ने अपने काव्य का प्रधान पात्र राम और सीता को न बनाकर लक्ष्मण, उर्मिला और भरत को बनाया है। गुप्तजी ने साकेत में उर्मिला के चरित्र को जो विस्तार दिया है, वह अप्रतिम है। कवि ने उसे मूर्तिमति उषा, सुवर्ण की सजीव प्रतिमा कनक लतिका, कल्पशिल्पी की कला आदि कहकर उसके शारीरिक सौंदर्य की अनुपम झांकी प्रस्तुत की है। उर्मिला प्रेम एवं विनोद से परिपूर्ण हास-परिहास मयी रमणी है। उसका हास-परिहास बुद्धिमत्तापूर्ण है–लक्ष्मण जब उर्मिला की मंजरी सी अंगुलियों में यह कला देखकर अपना सुधबुध भूल जाते हैं और मत्त गज सा झूम कर उर्मिला से अनुनय करते हैं–

कर कमल लाओ तुम्हारा चूम लूं।

इसके प्रत्युत्तर में उर्मिला अपना कमल सा हाथ पति की ओर बढ़ाती हुई मुस्कराती है और विनोद भरे शब्दों में कहती है-

मत्त गज बनकर, विवेक न छोड़ना।
कर कमल कह, कर न मेरा तोड़ना।

एक ओर उसका दाम्पत्य जीवन अत्यन्त आल्हाद एवं उमंगों से भरा हुआ है तो दूसरी ओर उसमें त्याग, धैर्य एवं बलिदान की भावना अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है। लक्ष्मण के वन गमन का समाचार सुनकर उसके हृदय में भी सीता की भांति वन-गमन की इच्छा होती है, परन्तु लक्ष्मण की विवशता देखकर वह अपने प्रिय के साथ चलना उचित नहीं समझती। वह अपने हृदय में धैर्य धारण करके अपने मन को यह कह कर समझा लेती है–

तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन
आज स्वार्थ है त्याग धरा।

हो अनुराग विराग भरा।
तू विकार से पूर्ण न हो।
शोक भार से चूर्ण न हो।

किन्तु उर्मिला अत्यन्त भोली-भाली सुकुमार एवं कोमल हृदयवाली भी है। राजसुखों में पली हुई वह नवयौवना वियोग का दु:ख क्या होता है, उसे नहीं जानती। इसीलिए अपने प्रियतम पति लक्ष्मण के बिछुड़ते ही वह अपने धैर्य को सम्हाल नहीं पाती और एक मुग्धानारी की भांति हाय कहकर धड़ाम से धरती पर गिर जाती है। उसका मूर्च्छित होना स्वाभाविक है, किन्तु सचेत होने पर उसकी बौद्धिकता पुन: जागृत हो जाती है और अपनी मूर्च्छा को वह नारी सुलभ दुर्बलता मानकर अपने पति के बारे में यही कामना करती है–

करना न सोच मेरा इससे। व्रत में कुछ विघ्न पड़े जिससे।

उर्मिला के चौदह वर्षों का विरहकाल व्यतीत करना आसान नहीं है। उसके पास लक्ष्मण के साथ बिताये हुए सुखमय जीवन की स्मृतियों के सिवाय कुछ भी नहीं है। एक-एक पल पर्वत सा प्रतीत होता है, किन्तु विरह के इस वृहत काल को तो गुजारना ही होगा। यह निश्चय करके उर्मिला सेवा का मार्ग अपना लेती है। वह अपनी सासों की सेवा करती है, रसोई बनाती है, किसानों की दशा पूछती रहती है–

पूछी थी सुकालदशा मैंने आज देवर से

इतना ही नहीं। वह नगर की जितनी प्रोषित पतिकाएं हैं, उनकी सुध-बुध लेती है। उनके हाल चाल जानने के लिए आतुर रहती है। इस तरह एक विरह-विदग्धा सर्व सुविधा सम्पन्न राज वधु को एक लोक सेविका के रूप में रूपान्तरित करके राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने नारी को एक दिशा दी है। जीवन के प्रति अटूट आस्था स्थापित की है।

यशोधरा खण्डकाव्य

गुप्तजी की यशोधरा खण्डकाव्य में राजकुमार सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा के मनोभावों का बखूबी चित्रण हुआ है। यशोधरा भी एक वियोगिनी नारी है। सिद्धार्थ के द्वारा रात्रि में उसे सोती हुई छोड़कर राजप्रसाद से चुपचाप संन्यास हेतु निकल जाने से उसका मन आहत हो जाता है। यशोधरा को इसी बात का दु:ख था कि उसके पति समझते थे कि वह उनके मार्ग की बाधा बनेगी इसीलिए उसे बिना बताए घर छोड़कर चले गये। यही पीड़ा इसलिए और अधिक गहरी हो जाती

है कि जो पत्नी सहधर्मिणी थी, जो उसके हर काम में सहयोग देती थी, उस पर सिद्धार्थ ने अविश्वास किया। यशोधरा का कहना हैं कि यदि वे उस पर विश्वास करते और गृहत्याग की बात बता देते तो वह उन्हें पूरा सहयोग देती। उसने अपने आहत अभिमान की व्यंजना-सखि वे मुझसे कहकर जाते। गीत में करती है, वह गा उठती है–

सिद्धि हेतु स्वामी गये यह गौरव की बात।
पर चोरी चोरी गये यह बड़ी आघात
सखी वे मुझसे कहकर जाते।

विरहिणी यशोधरा की आंखों का पानी कभी नहीं सूखता, राहुल के प्रति कर्त्तव्य भार को वहन करते हुए जल-जलकर काया को जीवित रखती है। एक तो वह पीड़ा का स्वागत करती है। वेदना तू भी भली बनी तो दूसरी वह मृत्यु का वरन् सुन्दर बन आयारी। गुप्तजी के नारी पात्र में घोर संकट और विषम परिस्थितियों में भी धीरता, कर्मण्यता और कर्त्तव्य भावना का परित्याग नहीं करते। वे कर्त्तव्यनिष्ठा, त्यागशील और सहिष्णु नारी है। यशोधरा अपने श्वसुर शुद्धोदन से भी अधिक धैर्यवान, सहिष्णु है और वह स्वनिर्मित मर्यादा में तल्लीन रहती है। गौतम द्वारा उनका परित्याग कर देने पर भी यशोधरा यही कामना करती है–

व्यर्थ न दिव्य देह वह तप-वर्षा-हिम-वात सहे।

उसकी सहिष्णुता का यह रूप हैं कि वह विरहिणी के असहाय दु:ख को भी अपने लिए मूल्यवान मानती है।

होता सुख का क्या मूल्य, जो न दु:ख रहता।
प्रिय हृदय सदय हो तपस्ताप क्यों सहता।
मेरे नयनों से नीर न यदि यह बहता।
तो शुष्क प्रेम की बात कौन फिर कहता।
रह दु:ख प्रेम परमार्थ दया मैं लाऊँ।
कह मुक्ति भला किसलिए तुम्हें मैं पाऊँ।

विष्णुप्रिया खण्डकाव्य

गुप्तजी की विष्णुप्रिया भी उर्मिला और यशोधरा के समान ही एक पतिवियुक्ता नारी हैं। पश्चिम बंगाल के प्रसिद्ध संत महाप्रभु चैतन्य की पत्नी के रूप में वह प्रतिष्ठित हैं। महाप्रभु चैतन्य के साथ उनका विवाह मात्र 12 वर्ष की आयु में हुआ और पति के संन्यासी बन जाने के कारण

वह 26 वर्षों तक पतिवियुक्ता बन कर विरहाग्नि में जलती रही। वह सामान्य मध्यम परिवार की नारी है और निरूसंतान है। गुप्तजी ने विष्णुप्रिया खण्डकाव्य में भी एक भारतीय नारी की विवशता को दर्शाया है। श्री चैतन्य के संन्यास लेने के प्रसंग में विष्णुप्रिया के कथन-रो-रो कर मरना नारी लिखा लायी है। इसका प्रमाण है। इसी तरह अनेक पंक्तियां एक सामान्य नारी के रूप में विष्णुप्रिया की विवशता को प्रकट करती हैं। यथा-देव ने लिखाया सुख फिर भी दिया नहीं, मेरी मति और गति केवल तुम्हीं-तुम्हीं आदि। यशोधरा की तरह उसके हृदय को भी यह सोचकर ठेस लगती है—हाय मैं छली गयी हूं, छिपकर भागे वे। चैतन्य के संन्यास ग्रहण करने हेतु चले जाने पर विष्णुप्रिया पति वियोग के सन्ताप को सहती हुई जीविकोपार्जन, सास की सेवा और पति-चिंतन के सहारे समय व्यतीत करती है।

इस तरह गुप्त जी ने विष्णुप्रिया में प्रेम, पीड़ा और कर्त्तव्य भावना का समन्वय किया है। स्वप्न दर्शन के माध्यम से उसके आत्मबल को अभिव्यक्त किया है और पर्वोत्सवों के माध्यम से उसकी करुणामयी सामाजिक चेतना, वेदना तथा उदार भावना को प्रकट किया है। पति और सास के स्वर्गारोहण के बाद विष्णुप्रिया नितान्त अकेली रह जाती है। वह हताश होकर इस दुनिया को छोड़ देना चाहती है, किन्तु वह मर नहीं पाती क्योंकि वह पति-स्मरण छोड़ नहीं पाती थी। उसे चैतन्य की मूर्ति में विलीन होने का स्वप्न आता है। वह सती भी नहीं हो सकती क्योंकि स्वप्न में चैतन्य का आदेश था-आयु शेष रहते मरण आत्मघात है, मेरी एक मूर्ति रखो निज गृह कक्ष में। इस आदेश के अनुसार विष्णुप्रिया ने एक मंदिर बनवाया-मंदिर बनाया निज गेह उस देवी ने। इस तरह विरहिणी विष्णुप्रिया एकान्तवासिनी होकर जितने मंत्र, श्लोक जपती थी, उतने ही धान्य-कणों का भोजन करती हुई पति और सास का चिन्तन करती है। इस तरह गुप्तजी की विष्णुप्रिया पतिवियुक्ता विरहिणी होकर भी भारतीय मध्यमवर्गीय परिवार की सहनशीला, सेवाभावी, पतिपरायणा और सदा गृहस्थ नारी के रूप में चित्रित हुई है।

प्रमुख कृतियाँ

मैथिलीशरण के नाटकों में 'अनघ' जातक कथा से सम्बद्ध बोधिसत्व की कथा पर आधारित पद्य में लिखा गया नाटक है।

प्रमुख कृतियाँ

नाम	प्रकाशित वर्ष
जयद्रथ वध	1910
भारत-भारती	1912
पंचवटी	1925
साकेत	1933
यशोधरा	1932
विष्णुप्रिया	1957
झंकार	1929
जयभारत	1952
द्वापर	1936
कुणाल गीत	
अजित	
अर्जन और विसर्जन	

प्रमुख नाटक

मौलिक नाटक	भास नाटक
अनघ	स्वप्नवासवदत्ता
चरणदास	प्रतिमा
तिलोत्तमा	अभिषेक
निष्क्रिय प्रतिरोध	अविमारक
विसर्जन	

गुप्त जी की 52 से भी अधिक काव्य रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें से कुछ अनूदित भी हैं। उन्होंने 'मधुप' उपनाम से 'विरहणी ब्रजांगन', 'प्लासी का युद्ध' और 'मेघनाद वध' नामक बंगला काव्य कृतियों का अनुवाद किया है तथा कुछ संस्कृत नाटकों के अनुवाद भी किये। इसी प्रकार 'रुबाइयात उमरखय्याम' भी उमर खयाम की रुबाइयों का हिन्दी रूपान्तर है। इनकी उल्लेखनीय मौलिक रचनाओं की तालिका में- रंग में भंग, जयद्रथ वध, पद्य प्रबंध, भारत भारती, शकुंतला, तिलोत्तमा, चंद्रहास, पत्रावली, वैतालिका, किसान, अनघ, पंचवटी, स्वदेश संगीत, हिन्दू, विपथगा, शक्ति विकटभट, गुरुकुल,

झंकार, साकेत, यशोधरा, सिद्धराज, द्वापर, मंगलघट, नहुष, कुणालगीत, काबा और कर्बला, प्रदक्षिणा, जयभारत, विष्णुप्रिया आदि आते हैं।

पुरस्कार व सम्मान

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि कहे जाते हैं। सन् 1936 में इन्हें काकी में अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया था। इनकी साहित्य सेवाओं के उपलक्ष्य में आगरा विश्वविद्यालय तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने इन्हें डी. लिट. की उपाधि से विभूषित भी किया। 1952 में गुप्त जी राज्य सभा के सदस्य मनोनीत हुए और 1954 में उन्हें 'पद्मभूषण' अलंकार से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार, 'साकेत' पर 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' तथा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। 'हिन्दी कविता' के इतिहास में गुप्त जी का यह सबसे बड़ा योगदान है। 'साकेत' उनकी रचना का सर्वोच्च शिखर है।

मृत्यु

मैथिलीशरण गुप्त जी का देहावसान 12 दिसंबर, 1964 को चिरगांव में ही हुआ। इनके स्वर्गवास से हिन्दी साहित्य को जो क्षति पहुंची, उसकी पूर्ति संभव नहीं है।

लोचन प्रसाद पाण्डेय

लोचन प्रसाद पाण्डेय प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार थे। इन्होंने हिन्दी एवं उड़िया, दोनों भाषाओं में काव्य रचनाएँ भी की हैं। सन् 1905 से ही इनकी कविताएँ 'सरस्वती' तथा अन्य मासिक पत्रिकाओं में निकलने लगीं थीं। लोचन प्रसाद पाण्डेय की कुछ रचनाएँ कथाप्रबंध के रूप में हैं तथा कुछ फुटकर। 'भारतेंदु साहित्य समिति' के भी ये सदस्य थे। मध्य प्रदेश के साहित्यकारों में इनकी विशेष प्रतिष्ठा थी। आज भी इनका नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

जन्म तथा परिवार

लोचन प्रसाद पाण्डेय का जन्म 4 जनवरी, सन् 1887 ई. में मध्य प्रदेश के बिलासपुर जिले में बालपुर नामक ग्राम में हुआ था। बिलासपुर अब छत्तीसगढ़

राज्य का हिस्सा है। लोचन प्रसाद पाण्डेय के पिता पंडित चिंतामणि पाण्डेय विद्याव्यसनी थे। उन्होंने अपने गाँव में बालकों की शिक्षा के लिए एक पाठशाला खुलवाई थी। लोचन प्रसाद जी अपने पिता के चतुर्थ पुत्र थे। वे आठ भाई थे- पुरुषोत्तम प्रसाद, पदमलोचन, चन्द्रशेखर, लोचन प्रसाद, विद्याधर, वंशीधर, मुरलीधर और मुकुटधर तथा चंदन कुमारी, यज्ञ कुमारी, सूर्य कुमारी और आनंद कुमारी, ये चार बहनें थीं।

शिक्षा

लोचन प्रसाद पाण्डेय की प्रारंभिक शिक्षा बालपुर की निजी पाठशाला में हुई। सन् 1902 में मिडिल स्कूल संबलपुर से पास किया और 1905 में कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) से इंटर की परीक्षा पास करके बनारस गये, जहाँ अनेक साहित्य मनीषियों से उनका संपर्क हुआ। उन्होंने अपने प्रयत्न से ही उड़िया, बंगला और संस्कृत का भी ज्ञान प्राप्त किया था। लोचन प्रसाद पाण्डेय ने अपने जीवन काल में अनेक जगहों का भ्रमण किया। साहित्यिक गोष्ठियों, सम्मेलनों, कांग्रेस अधिवेशन, इतिहास-पुरातत्त्व खोजी अभियान में वे सदा तत्पर रहे। उनके खोज के कारण अनेक गढ़, शिलालेख, ताम्रपत्र, गुफा प्रकाश में आ सके। सन् 1923 में उन्होंने 'छत्तीसगढ़ गौरव प्रचारक मंडली' की स्थापना की, जो बाद में 'महाकौशल इतिहास परिषद' कहलाया। उनका साहित्य, इतिहास और पुरातत्त्व में समान अधिकार था।

स्वभाव

लोचन प्रसाद पाण्डेय स्वभाव से सरल एवं निश्छल थे। इनका व्यवहार आत्मीयतापूर्ण हुआ करता था। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठकों को चरित्रोत्थान की प्रेरणा दी। उस समय उपदेशक का कार्य भी साहित्य के सहारे करना आज की तरह नहीं था, इसलिए इनकी रचनाओं ने पाठकों के संयम के प्रति रुचि उत्पन्न की। ये 'भारतेन्दु साहित्य समिति' के एक सम्मानित सदस्य थे। मध्य प्रदेश में इनके प्रति बड़ा आदर, सम्मान एवं प्रतिष्ठा का भाव है।

साहित्यिक कृतित्त्व

लोचन प्रसाद पाण्डेय का साहित्यिक-कृतित्त्व, चरित्रोत्थान, नीति-पोषण, उपदेश-दान, वास्तविक-चित्रण एवं लोककल्याण के लिए ही परिसृष्ट हुआ है।

इनके काव्य का वस्तुगत रूपाधार अभिधामूलक, निश्चित एवं असांकेतिक है। ये कथा एवं घटना का आधार लेकर वृत्तात्मक कविताएँ लिखा करते थे। सन् 1905 ई. से ये 'सरस्वती' में कविताएँ लिखने लगे थे। भारतेन्दु का जागरण-तृयं बज चुका था। द्विवेदी युग के शक्ति-संचय काल में लोचन प्रसाद पाण्डेय का अभ्यागमन हुआ। इसी समय सहृदय सामयिकता, ओज, संतुलित पद-योजना एवं तत्सम पदावली से पूर्ण इनकी कविता ने सांकेतिकता एवं ध्यन्यात्मकता के अभाव में भी हृदय-सम्पृक्त इतिवृत्त के कारण लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। स्फुट एवं प्रबन्ध, दोनों ही प्रकार की कविताओं द्वारा लोचन प्रसाद जी ने सुधार-भाव को प्रतिष्ठापित किया। 'मृगी दुःखमोचन' नामक कविता में वृक्ष-पशु आदि के प्रति भी इनकी सहृदयता सुन्दर रूप में व्यक्त हुई है। ये मध्य प्रदेश के अग्रगण्य साहित्य नेता भी रहे।

रचनाएँ

लोचन प्रसाद पाण्डेय की प्रमुख रचनाओं का विवरण इस प्रकार है–

1. 'दो मित्र' उद्देश्य प्रधान, सामाजिक उपन्यास, मैत्री आदर्श, समाज-सुधार, स्त्री-चरित्र से प्रेरित एवं पाश्चात्य सभ्यता की प्रतिक्रिया पर लिखित लोचन प्रसाद पाण्डेय की 1906 में प्रकाशित प्रथम कृति है।
2. 1907 में मध्य प्रदेश से ही प्रकाशित 'प्रवासी' नामक काव्य-संग्रह में छायावादी, रहस्यमयी संकलनों की भाँति कल्पनागत, मूर्तिमत्ता एवं ईषत् लाक्षणिकता का प्रयास दिखाई पड़ता है।
3. 1910 में 'इण्डियन प्रेस', प्रयाग से 'कविता कुसुम माला', बालोपयोगी काव्य-संकलन एवं 1914 में 'नीति कविता' धर्मविषयक संग्रह निकले।
4. लोचन प्रसाद पाण्डेय का 1914 में 'साहित्यसेवा' नामक प्रहसन प्रकाशित हुआ, जिसमें व्यग्य-विनोद के लिए हास्योत्पादन की अतिनाटकीय घटना-चरित्र-संयोजन शैली का प्रयोग हुआ है।
5. सन 1914 में समाज-सुधारमूलक 'प्रेम प्रशंसा' व 'गृहस्थ-दशा दर्पण' नाट्य-कृति प्रकाशित हुई थी।
6. उनका 'मेवाड़ गाथा' ऐतिहासिक खण्ड-काव्य सन् 1914 में ही प्रकाशित हुआ था।

7. सन 1915 में 'पद्य पुष्पांजलि' नामक दो काव्य-संग्रह भी प्रकाशित हुए थे।
8. 1915 में ही उनके सामाजिक एवं राष्ट्रीय नाटक 'छात्र दुर्दशा' एवं अतिनाटकीयतायुक्त व्यंग्य-विनोदपरक 'ग्राम्य विवाह' आदि नाटक निकले।

सियारामशरण गुप्त

सियारामशरण गुप्त हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई थे। उन पर गाँधीवाद का विशेष प्रभाव रहा है। इसलिये उनकी रचनाओं में करुणा, सत्य-अहिंसा की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। हिन्दी साहित्य में उन्हें एक कवि के रूप में विशेष ख्याति प्राप्त हुई लेकिन एक मूर्धन्य कथाकार के रूप में भी उन्होंने कथा-साहित्य में भी अपना स्थान बनाया।

जीवन परिचय

बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार सियारामशरण गुप्त का जन्म भाद्रपद पूर्णिमा सम्वत् 1952 विक्रमी तद्नुसार 4 सितम्बर 1895 ई. को सेठ रामचरण कनकने के परिवार में मैथिलीशरण गुप्त के अनुज रूप में चिरगांव, झाँसी में हुआ था। प्राइमरी शिक्षा पूर्ण कर घर में ही गुजराती, अंग्रेजी और उर्दू भाषा सीखी। सन् 1929 ई. में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और कस्तूरबा के सम्पर्क में आये। कुछ समय वर्धा आश्रम में भी रहे। सन् 1940 ई. में चिरगांव में ही नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का स्वागत किया। वे सन्त विनोबा भावे के सम्पर्क में भी आये। उनकी पत्नी तथा पुत्रों का निधन असमय ही हो गया। मूलत- आप दु:ख वेदना और करुणा के कवि बन गये। साहित्य के आप मौन साधक बने रहे।

रचनाएँ

मौर्य विजय' प्रथम रचना सन् 1914 में लिखी। आपकी समस्त रचनाएं पांच खण्डों में संकलित कर प्रकाशित हैं। 'आर्द्रा, 'दुर्वादल, 'विषाद, 'बापू तथा 'गोपिका इनकी मुख्य काव्य-कृतियां हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'गोद, 'नारी, 'अंतिम आकांक्षा (उपन्यास), 'मानुषी (कहानी संग्रह), नाटक, निबंध आदि लगभग 50 ग्रंथ रचे। सहज आकर्षक शैली तथा भाव और भाषा की सरलता इनकी विशेषता है।

रचना संग्रह

1. **खण्ड काव्य**–अनाथ, आर्द्रा, विषाद, दूर्वा दल, बापू, सुनन्दा और गोपिका।

2. **कहानी संग्रह**–मानुषी

3. **नाटक**–पुण्य पर्व

4. **अनुवाद**–गीता संवाद

5. **नाट्य**–उन्मुक्त गीत

6. **कविता संग्रह**–अनुरूपा तथा अमृत पुत्र

7. **काव्यग्रन्थ**–दैनिकी नकुल, नोआखली में, जय हिन्द, पाथेय, मृण्मयी तथा आत्मोसर्ग।

8. **उपन्यास**–अन्तिम आकांक्षा तथा नारी और गोद।

9. **निबन्ध संग्रह**–झूठ-सच।

10. **पद्यानुवाद**–ईषोपनिषद, धम्मपद और भगवत गीता

भाषा और शैली

सियारामशरण गुप्त की भाषा-शैली पर घर के वैष्णव संस्कारों और गांधीवाद का प्रभाव था। गुप्त जी स्वयं शिक्षित कवि थे। मैथिलीशरण गुप्त की काव्यकला और उनका युगबोध सियारामशरण ने यथावत अपनाया था। अतः उनके सभी काव्य द्विवेदी युगीन अभिधावादी कलारूप पर ही आधारित हैं। दोनों गुप्त बंधुओं ने हिंदी के नवीन आंदोलन छायावाद से प्रभावित होकर भी अपना इतिवृत्तात्मक अभिघावादी काव्य रूप सुरक्षित रखा है। विचार की दृष्टि से भी सियारामशरण जी ज्येष्ठ बंधु के सदृश गांधीवाद की परदुःखकातरता, राष्ट्रप्रेम, विश्वप्रेम, विश्व शांति, हृदय परिवर्तनवाद, सत्य और अहिंसा से आजीवन प्रभावित रहे। उनके काव्य वस्तुतः गांधीवादी निष्ठा के साक्षात्कारक पद्यबद्ध प्रयत्न हैं। हिंदी में शुद्ध सात्विक भावोद्‌गारों के लिए गुप्त जी की रचनाएँ स्मरणीय रहेंगी। उनमें जीवन के शृंगार और उग्र पक्षों का चित्रण नहीं हो सका किंतु जीवन के प्रति करुणा का भाव जिस सहज और प्रत्यक्ष विधि पर गुप्त जी में व्यक्त हुआ है उससे उनका हिंदी काव्य में एक विशिष्ट स्थान बन गया है। हिंदी की गांधीवादी राष्ट्रीय धारा के वह प्रतिनिधि कवि हैं।

सम्मान और पुरस्कार

दीर्घकालीन हिन्दी सेवाओं के लिए सन् 1962 ई. में 'सरस्वती' हीरक जयन्ती में सम्मानित किये गये। आपको सन् 1941 ई. में 'सुधाकर पदक' नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी द्वारा प्रदान किया गया।

निधन

सियारामशरण गुप्त का असमय ही 29 मार्च 1963 ई. को लम्बी बीमारी के बाद निधन हो गया।

4

छायावाद

हिन्दी की कुछ पत्रिकाओं- 'श्रीशारदा' और 'सरस्वती' में क्रमशः सन् 1920 और 1921 में मुकुटधर पांडेय और सुशील द्वारा दो लेख 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक से प्रकाशित हुए थे। अतः कहा जा सकता है कि इस नाम का प्रयोग सन् 1920 से या उससे पूर्व से होने लग गया था। संभव है कि मुकुटधर पांडेय ने ही इनका सर्वप्रथम आविष्कार किया हो। यह भी ध्यान रहे कि पांडेय जी ने इसका प्रयोग व्यंग्यात्मक रूप में छायावादी काव्य की अस्पष्टता (छाया) के लिये किया था। किंतु आगे चलकर वहीं नाम स्वीकृत हो गया। स्वयं छायावादी कवियों ने इस विशेषण को बड़े प्रेम से स्वीकार किया है। एक ओर जयशंकर प्रसाद लिखते हैं- 'मोती के भीतर छाया और तरलता होती है, वैसे ही कांति की तरलता अंग में लावण्य कहीं जाती है। छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति की भंगिमा पर निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ अनुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएं हैं। अपने भीतर से पानी की तरह आन्तर स्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कांतिमय होती है।'

दूसरी ओर महादेवी वर्मा भी प्रसाद के स्वर में स्वर मिलाती हुई कहती हैं- 'सृष्टि के बाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वछंद छंद में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है।' जयशंकर

प्रसाद और महादेवी वर्मा की इन उक्तियों में कोई तर्क नहीं है। जयशंकर प्रसाद जिन गुणों का आख्यान कर रहे हैं, उसके आधार पर तो इस कविता का नाम 'प्रकाश', 'चमक' या 'कांति' होना चाहिए था, या महादेवी वर्मा द्वारा परिगणित विशेषता को लेकर इसे अनुभूति भावुकता आदि किसी नाम से पुकारा जाना चाहिए था, किंतु वास्तविकता यह हैं कि नामकरण के सम्बन्ध में पूर्वजों के आगे किसी का वश नहीं चलता। कविता की तो बात ही क्या, स्वयं कवियों को भी कुछ ऐसे नाम विरासत में मिले हैं कि उन्हें उपनाम ढूंढने को विवश होना पड़ा है। अत: 'छायावाद' नाम को लेकर ज्यादा ऊहापोह करना अनावश्यक है।

छायावाद का स्वरूप

हिंदी की स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की विकसित अवस्था को छायावाद नाम से अभिहित किया गया है। इस आधार पर देखा जाय तो श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय और रामनरेश त्रिपाठी, जिन्हें आचार्य शुक्ल 'सच्चे स्वच्छन्दतावादी' कहते थे, प्रथम चरण के कवि हैं और दूसरे चरण इस काव्य-प्रवृति को अधिक सूक्ष्म और व्यापक रूप देकर प्रौढ़तम उत्कर्ष तक पहुँचाने वाले कवि जयशंकर प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी वर्मा थे, जिन्हें छायावादी कवि माना गया। 'छायावाद' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम मुकुटधर पाण्डेय ने किया। उन्होंने 1920 में जबलपुर से प्रकाशित पत्रिका "श्रीशारदा" में "हिंदी कविता में छायावाद" नाम से एक लेखमाला प्रकाशित की। उन्होंने छायावाद की आरंभिक विशिष्टताओं का उल्लेख करते हुए लिखा कि "छायावाद एक मायामय सूक्ष्म वस्तु है। इसमें शब्द और अर्थ का सामंजस्य बहुत कम रहता है।" किन्तु आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यह अनुमान लगा लिया कि छायावाद और रहस्यवाद बंगाल के ब्रह्म-समाजी छायापदों और रवीन्द्रनाथ टैगोर की रहस्यानुभूतियों का रूपांतरण है और जिसका आधार ईसाई धर्म-प्रचारकों का रहस्य-दर्शन अर्थात् फैंटसमाटा है। कुछ समय के बाद छायावाद के लिए "रोमैंटिसिज्म" शब्द का प्रयोग किया गया। कवि और आलोचकों ने छायावाद और रोमैंटिसिज्म को पर्याय समझना शुरू किया। आचार्य शुक्ल ने छायावाद को एक शैली मात्र घोषित कर दिया। किन्तु रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद (रोमैंटिसिज्म) में सूक्ष्म अंतर है। लेकिन आचार्य शुक्ल के इस मत को उनके प्रिय कवि सुमित्रनंदन पन्त ने यह कहकर अमान्य कर दिया कि रहस्योन्मुखता छायावाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता अवश्य है, उसका केंद्रीय भाव नहीं है। छायावाद वस्तुत: एक विशेष सौन्दर्य दृष्टि का उन्मेष

है। रहस्योन्मुखता और प्रकृति प्रेम उसी की अभिव्यक्ति की विविध सरणियाँ है। जहाँ तक छायावाद को एक शैली मात्र मानने की बात है तो प्रतीकात्मकता को छायावाद का अनिवार्य लक्षण पहले ही मान लिया गया है। मूल रूप से यथार्थ को छाया के माध्यम से व्यक्त करने वाले काव्यान्दोलन को छायावाद कहा जाता है। द्विवेदी युगीन बंधन प्रियता और आदर्शवादिता का विरोध करते हुए छायावादी रचनाकारों ने युग के यथार्थ के बाह्य स्वरूप को ना व्यक्त करके उसकी सूक्ष्मता को व्यक्त करने पर अत्यधिक जोर दिया। छायावादी कविता गहरे अर्थों में कल्पना तत्त्व, सांस्कृतिक चेतना का विकास, राष्ट्रवादी चेतना का विस्तार, नवजागरण के सूक्ष्म होते स्तर और आधुनिकता बोध की कविता है। छायावादी कवियों ने अपनी व्यक्तिगत जीवन की अभिव्यक्ति कविता के माध्यम से की है। इन्होंने विषय वस्तु की खोज बाह्य जगत से ना करके अपने मन के साथ संवाद को अभिव्यक्त किया है। छायावाद विदेशी पराधीनता और स्वदेशी जीर्ण-शीर्ण रुढ़ियों से मुक्त होने का मुखर स्वर भी है, जिसमें राष्ट्रीय जागरण की चेतना प्रधान है।

सांस्कृतिक चेतना का विकास छायावाद की एक प्रमुख विशेषता के रूप में सामने आती है। कोई भी समाज जब आधुनिकता के संपर्क में आता है तो वह सबसे पहले अपने इतिहास के साथ संवाद स्थापित करता है। साथ ही उन सभी तत्त्वों को अलगाने का कार्य करता है, जो उनकी सांस्कृतिक परंपरा को मजबूत करते हैं। इस क्रम में छायावादियों के पास एक लंबी परंपरा मौजूद है, जिसके बरक्स वह तत्कालीन समाज के सामने उनके गौरवशाली इतिहास को ला सकते थे। छायावाद काव्य को एकतरफ गांधीवाद से प्रेरणा प्राप्त हुयी और दूसरी तरफ वह बंगाल के नवजागरण तथा रवीन्द्रनाथ के संपर्क में भी आता है। छायावाद की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना गांधी की भाववादी विचारधारा तथा रवीन्द्रनाथ का मानवतावाद से प्रेरणा लेकर विकसित हो रही थी।

विभिन्न आलोचकों की दृष्टि में छायावाद

रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखा हैं कि- 'संवत् 1970 के आसपास मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय आदि कवि खड़ीबोली काव्य को अधिक कल्पनामय, चित्रमय और अंतर्भाव व्यंजक रूप-रंग देने में प्रवृत्त हुए। यह स्वच्छन्द और नूतन पद्धति अपना रास्ता निकाल रही थी कि रवीन्द्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई। और कई कवि एक साथ

रहस्यवाद और प्रतीकवाद अथवा चित्रभाषावाद को ही एकांत ध्येय बनाकर चल पड़े। चित्रभाषा या अभिव्यंजन पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही बाकी समझा गया। इस बँधे हुए क्षेत्र के भीतर चलनेवाले काव्य ने छायावाद नाम ग्रहण किया।

छायावादी शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिये। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम का अनेक प्रकार से व्यंजन करता है। इस अर्थ का दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में होता है' छायावाद का सामान्यत: अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। छायावाद का चलन द्विवेदी काल की रूखी इतिवृत्तात्मक (कथात्मकता) की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। जैसे, 'धूल की ढेरी में अनजाने, छिपे हैं मेरे मधुमय गान।'

नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा हैं कि- 'प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या होनी चाहिए।'

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास में लिखा हैं कि- 'द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होते सारे देश में नई चेतना की लहर दौड़ गई। सन् 1929 में महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतवर्ष विदेशी गुलामी को झाड़-फेंकने के लिए कटिबद्ध हो गया। इसे सिर्फ राजनीति तक ही सीमित नहीं समझना चाहिये। यह संपूर्ण देश का आत्म स्वरूप समझने का प्रयत्न था और अपनी गलतियों को सुधार कर संसार की समृद्ध जातियों की प्रति द्वंद्विता में अग्रसर होने का संकल्प था। संक्षेप में, यह एक महान सांस्कृतिक आंदोलन था। चित्तगत उन्मुखता इस कविता का प्रधान उद्‌गम थी और बदलते हुए मानो के प्रति दृढ़ आस्था इसका प्रधान सम्बल। इस श्रेणी के कवि ग्राहिकाशक्ति से बहुत अधिक संपन्न थे और सामाजिक विषमता और असामंजस्यों के प्रति अत्यधिक सजग थे। शैली की दृष्टि से भी ये पहले के कवियों से एकदम भिन्न थे। इनकी रचना मुख्यत: विषयी प्रधान थी। सन् 1920 की खड़ीबोली कविता में विषयवस्तु की प्रधानता बनी हुई थी। परंतु इसके बाद की कविता में कवि के अपने राग-विराग की प्रधानता हो गई। विषय अपने आप में कैसा है? यह मुख्य बात नहीं थी। बल्कि मुख्य बात यह रह गई थी कि विषयी (कवि) के चित्त के

राग-विराग से अनुरंजित होने के बाद विषय कैसा दीखता है ? परिणाम विषय इसमें गौण हो गया और कवि प्रमुख।'

नगेन्द्र ने लिखा हैं कि- '1920 के आसपास, युग की उद्‌बुद्ध चेतना ने बाह्य अभिव्यक्ति से निराश होकर, जो आत्मबद्ध अंतर्मुखी साधना आरंभ की, वह काव्य में छायावाद के रूप में अभिव्यक्त हुई।'

नामवर सिंह ने छायावाद के बारे में लिखा हैं कि- 'छायावाद शब्द का अर्थ चाहे जो हो, परंतु व्यावहारिक दृष्टि से यह प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की उन समस्त कविताओं का द्योतक है, जो 1918 से 36 ई. के बीच लिखी गई।' वे आगे लिखते हैं- 'छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।'

ब्रज भाषा का काव्य

'छायावादी युग' में कवियों का एक वर्ग ऐसा भी था, जो सूरदास, तुलसीदास, सेनापति, बिहारी और घनानंद जैसी समर्थ प्रतिभा संपन्न काव्य-धारा को जीवित रखने के लिए ब्रजभाषा में काव्य रचना कर रहे थे। 'भारतेंदु युग' में जहाँ ब्रजभाषा का काव्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया, वहीं छायावाद आते-आते ब्रजभाषा में गौण रूप से काव्य रचना लिखी जाती रहीं। इन कवियों का मत था कि ब्रजभाषा में काव्य की लंबी परम्परा ने उसे काव्य के अनुकूल बना दिया है। छायावादी युग में ब्रजभाषा में काव्य रचना करने वाले कवियों में रामनाथ जोतिसी, रामचंद्र शुक्ल, राय कृष्णदास, जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी', दुलारे लाल भार्गव, वियोगी हरि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', अनूप शर्मा, रामेश्वर 'करुण', किशोरीदास वाजपेयी, उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' प्रमुख हैं।

रामनाथ जोतिसी की रचनाओं में 'रामचंद्रोदय' मुख्य है। इसमें रामकथा को युग के अनुरूप प्रस्तुत किया गया है। इस काव्य पर केशव की 'रामचंद्रिका' का प्रभाव लक्षित होता है। विभिन्न छंदों का सफल प्रयोग हुआ है।

रामचंद्र शुक्ल, जो मूलत: आलोचक थे, ने 'एडविन आर्नल्ड' के आख्यान काव्य 'लाइट ऑफ एशिया' का 'बुद्धचरित' शीर्षक से भावानुवाद किया। शुक्ल जी की भाषा सरल और व्यावहारिक है।

राय कृष्णदास कृत 'ब्रजरस', जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' द्वारा रचित 'कवित्त-सवैये' और दुलारेलाल भार्गव की 'दुलारे-दोहावली' इस काल की प्रमुख व उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

वियोगी हरि की 'वीर सतसई' में राष्ट्रीय भावनाओं की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अनेक स्फुट रचनाएँ लिखीं। लेकिन इनका ब्रजभाषा का वैशिष्टय 'ऊर्मिला' महाकाव्य में लक्षित होता है, जहाँ इन्होंने उर्मिला का उज्ज्वल चरित्र-चित्रण किया है।

अनूप शर्मा के चम्पू काव्य 'फेरि-मिलिबो' (1938) में कुरुक्षेत्र में राधा और कृष्ण के पुनर्मिलन का मार्मिक वर्णन है।

रामेश्वर 'करुण' की 'करुण-सतसई' (1930) में करुणा, अनुभूति की तीव्रता और समस्यामूलक अनेक व्यंग्यों को देखा जा सकता है।

किशोरी दास वाजपेयी की 'तरंगिणी' में रचना की दृष्टि से प्राचीनता और नवीनता का सुंदर समन्वय देखा जा सकता है।

उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' की रचनाओं में भी भाषा और संवेदना की दृष्टि से नवीनता दिखाई पड़ती है।

इन रचनाओं में नवीनता और छायावादी काव्य की सूक्ष्मता प्रकट हुई है, यदि इस भाषा का काव्य परिमाण में अधिक होता तो यह काल ब्रजभाषा का छायावाद साबित होता।

छायावादी कवियों की दृष्टि में

जयशंकर प्रसाद ने लिखा कि- 'काव्य के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुंदरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगीं तब हिंदी में उसे छायावाद नाम से अभिहित किया गया।' वे यह भी कहते हैं कि- 'छायावादी कविता भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्य, प्रकृति-विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं।'

सुमित्रानंदन पंत छायावाद को पाश्चात्य साहित्य के रोमांटिसिज्म से प्रभावित मानते हैं।

महादेवी वर्मा छायावाद का मूल दर्शन सर्वात्मवाद को मानती हैं और प्रकृति को उसका साधन। उनके छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।' इस प्रकार महादेवी के अनुसार छायावाद की कविता हमारा प्रकृति के साथ रागात्मक संबंध स्थापित कराके हमारे हृदय में व्यापक भावानुभूति उत्पन्न करती है और हम समस्त विश्व के उपकरणों से एकात्म भाव संबंध जोड़ लेते हैं। वे रहस्यवाद को छायावाद का दूसरा सोपान मानती हैं।

समाज का अन्तर्विरोध

छायावादी कविता और प्रेमचंद की कहानी और उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन में इस युग के भारतीय समाज का कई अन्तर्विरोध सामने आता है। भारत में विकसित हो रहे पूंजीवादी विकास, राष्ट्रीय आत्मचेतना के जागरण तथा औपनिवेशिक और सामन्तवादी उत्पीड़न के विरुद्ध व्यापक संघर्ष के प्रभाव के साथ-साथ 1919-1922 के राष्ट्रव्यापी आंदोलन की पराजय का प्रतिनिधित्व भी इसमें हुआ था। 1914 से प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हो गया था। 1917 से महात्मा गांधी का प्रभाव भारतीय राजनीति में बढ़ने लगा था। 'चौरीचौरा कांड' के हिंसक प्रभाव को ध्यान में रखकर गांधी जी ने असहयोग आंदोलन को 1922 में स्थगित कर दिया। इससे भारत के कुछ बुद्धिजीवियों में गहरी निराशा और उदासी छा गई थी। 1920 के आसपास सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लिखा- 'मनुष्यों को मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है।' भारतीय राजनीति में 'गांधी युग' और हिन्दी साहित्य में 'छायावादी युग' एक ही काल की उपज है। साहित्य रूपों के नवीकरण के मार्गों की खोज, रूढ़िगत बिम्बों को नये सिरे से समझने का प्रयास, भावावेगों की असाधारण प्रचुरता, प्राकृतिक सौन्दर्य की तीव्र अनुभूति, ओजपूर्ण, अभिव्यंजनात्मक भाषा, कलात्मक गद्य आदि इस काल के हिन्दी साहित्यकारों की स्वाभाविक विशिष्टताएं थीं। छायावादी कवि भी सुन्दर, चिरयुवा प्रकृति को प्रस्तुत करते थे।

'छायावाद' का केवल पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर तो हिन्दी काव्य क्षेत्र में चलने वाली महादेवी वर्मा ही हैं। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा इस युग के चार प्रमुख स्तंभ हैं। रामकुमार

वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवंशराय बच्चन और रामधारी सिंह दिनकर को भी 'छायावाद' ने प्रभावित किया। किंतु रामकुमार वर्मा आगे चलकर नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हुए, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रवादी धारा की ओर रहे, बच्चन ने प्रेम के राग को मुखर किया और दिनकर जी ने विद्रोह की आग को आवाज दी। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' इत्यादि और सब कवि प्रतीक पद्धति या चित्रभाषा शैली की दृष्टि से ही छायावादी कहलाए। छायावादी युग के प्रमुख कवि थे–

रायकृष्ण दास
वियोगी हरि
डॉ. रघुवीर सहाय
माखनलाल चतुर्वेदी
जयशंकर प्रसाद
महादेवी वर्मा
नन्द दुलारे वाजपेयी
डॉ. शिवपूजन सहाय
सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
रामचन्द्र शुक्ल
पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
बाबू गुलाबराय

'छायावाद के कवि वस्तुओं को असाधारण दृष्टि से देखते हैं। उनकी रचना की संपूर्ण विशेषताएँ उनकी इस 'दृष्टि' पर ही अवलंबित रहती हैं।...वह क्षण–भर में बिजली की तरह वस्तु को स्पर्श करती हुई निकल जाती है।...अस्थिरता और क्षीणता के साथ उसमें एक तरह की विचित्र उन्मादकता और अंतरंगता होती है, जिसके कारण वस्तु उसके प्रकृत रूप में नहीं किंतु एक अन्य रूप में दीख पड़ती है। उसके इस अन्य रूप का संबंध कवि के अंतर्जगत से रहता है।...यह अंतरंग दृष्टि ही 'छायावाद' की विचित्र प्रकाशन रीति का मूल है।' इस प्रकार मुकुटधर पांडेय की सूक्ष्म दृष्टि ने 'छायावाद' की मूल भावना 'आत्मनिष्ठ अंतर्दृष्टि' को पहचान लिया था। जब उन्होंने कहा कि 'चित्र दृश्य वस्तु की आत्मा का ही उतारा जाता है, ' तो छायावाद की मौलिक विशेषता की ओर संकेत किया। छायावादी कवियों की कल्पनाप्रियता पर प्रकाश डालते हुए मुकुटधर जी कहते हैं– 'उनकी कविता देवी की आँखें सदैव ऊपर की ही ओर उठी रहती हैं,

मर्त्यलोक से उसका बहुत कम संबंध रहता है, वह बुद्धि और ज्ञान की सामर्थ्य-सीमा को अतिक्रम करके मन-प्राण के अतीत लोक में ही विचरण करती रहती है।' यहीं छायावादिता से आध्यात्मिकता तथा धर्म-भावुकता का मेल होता है, यथार्थ में उसके जीवन के ये दो मुख्य अवलंब हैं।

मुख्य कवि और उनकी रचनाएँ

छायावादी काव्य को समझने के लिए यह आवश्यक हैं कि इस युग के रचनाकारों की रचनाओं का अवलोकन किया जाए। यदि देखा जाए तो जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी वर्मा को इस समय के प्रतिनिधि कवियों के रूप में जाना जाता है। जिनकी कविताओं में छायावादी दर्शन के सभी तत्त्व गहराई से दिखाई देता है। इन रचनाकारों ने काव्य तथा गद्य में रचनाओं के माध्यम से साहित्य को सुशोभित किया जिसमें से कई ऐसी रचनाएं हैं, जो छायावाद का प्रतिनिधित्व करती हैं।

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद हिन्दी नाट्य जगत् और कथा साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। कथा साहित्य के क्षेत्र में भी उनकी देन महत्त्वपूर्ण है। भावना-प्रधान कहानी लिखने वालों में जयशंकर प्रसाद अनुपम थे।

जन्म

जिस समय खड़ी बोली और आधुनिक हिन्दी साहित्य किशोरावस्था में पदार्पण कर रहे थे उस समय जयशंकर प्रसाद का जन्म सन् 1889 ई. (माघ शुक्ल दशमी, संवत् 1946 वि.) वाराणसी, उत्तर प्रदेश में हुआ था। कवि के पितामह शिव रत्न साहु वाराणसी के अत्यन्त प्रतिष्ठित नागरिक थे और एक विशेष प्रकार की सुरती (तम्बाकू) बनाने के कारण 'सुँघनी साहु' के नाम से विख्यात थे। उनकी दानशीलता सर्वविदित थी और उनके यहाँ विद्वानों कलाकारों का समादर होता था। जयशंकर प्रसाद के पिता देवीप्रसाद साहु ने भी अपने पूर्वजों की परम्परा का पालन किया। इस परिवार की गणना वाराणसी के अतिशय समृद्ध घरानों में थी और धन-वैभव का कोई अभाव न था। प्रसाद का कुटुम्ब शिव का उपासक था। माता-पिता ने उनके जन्म के लिए अपने इष्टदेव से बड़ी प्रार्थना की थी। वैद्यनाथ धाम के झारखण्ड से लेकर उज्जयिनी के महाकाल की

आराधना के फलस्वरूप पुत्र जन्म स्वीकार कर लेने के कारण शैशव में जयशंकर प्रसाद को 'झारखण्डी' कहकर पुकारा जाता था। वैद्यनाथधाम में ही जयशंकर प्रसाद का नामकरण संस्कार हुआ।

शिक्षा

जयशंकर प्रसाद की शिक्षा घर पर ही आरम्भ हुई। संस्कृत, हिन्दी, फारसी, उर्दू के लिए शिक्षक नियुक्त थे। इनमें रसमय सिद्ध प्रमुख थे। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के लिए दीनबन्धु ब्रह्मचारी शिक्षक थे। कुछ समय के बाद स्थानीय क्वीन्स कॉलेज में प्रसाद का नाम लिख दिया गया, पर यहाँ पर वे आठवीं कक्षा तक ही पढ़ सके। प्रसाद एक अध्यवसायी व्यक्ति थे और नियमित रूप से अध्ययन करते थे।

पारिवारिक विपत्तियाँ

प्रसाद की बारह वर्ष की अवस्था थी, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया। इसी के बाद परिवार में गृहक्लेश आरम्भ हुआ और पैतृक व्यवसाय को इतनी क्षति पहुँची कि वहीं 'सुँघनीसाहु का परिवार, जो वैभव में लोटता था, ऋण के भार से दब गया। पिता की मृत्यु के दो-तीन वर्षों के भीतर ही प्रसाद की माता का भी देहान्त हो गया और सबसे दुर्भाग्य का दिन वह आया, जब उनके ज्येष्ठ भ्राता शम्भूरतन चल बसे तथा सत्रह वर्ष की अवस्था में ही प्रसाद को एक भारी उत्तरदायित्व सम्भालना पड़ा। प्रसाद का अधिकांश जीवन वाराणसी में ही बीता था। उन्होंने अपने जीवन में केवल तीन-चार बार यात्राएँ की थीं, जिनकी छाया उनकी कतिपय रचनाओं में प्राप्त हो जाती हैं। प्रसाद को काव्यसृष्टि की आरम्भिक प्रेरणा घर पर होने वाली समस्या पूर्तियों से प्राप्त हुई, जो विद्वानों की मण्डली में उस समय प्रचलित थी।

बहुमुखी प्रतिभा

प्रसाद जी का जीवन कुल 48 वर्ष का रहा है। इसी में उनकी रचना प्रक्रिया इसी विभिन्न साहित्यिक विधाओं में प्रतिफलित हुई कि कभी-कभी आश्चर्य होता है। कविता, उपन्यास, नाटक और निबन्ध सभी में उनकी गति समान है, किन्तु अपनी हर विद्या में उनका कवि सर्वत्र मुखरित है। वस्तुतः एक कवि की गहरी कल्पनाशीलता ने ही साहित्य को अन्य विधाओं में उन्हें विशिष्ट

और व्यक्तिगत प्रयोग करने के लिये अनुप्रेरित किया। उनकी कहानियों का अपना पृथक् और सर्वथा मौलिक शिल्प है, उनके चरित्र-चित्रण का, भाषा-सौष्ठव का, वाक्यगठन का एक सर्वथा निजी प्रतिष्ठान है। उनके नाटकों में भी इसी प्रकार के अभिनव और श्लाघ्य प्रयोग मिलते हैं। अभिनेयता को दृष्टि में रखकर उनकी बहुत आलोचना की गई तो उन्होंने एक बार कहा भी था कि रंगमंच नाटक के अनुकूल होना चाहिये न कि नाटक रंगमंच के अनुकूल। उनका यह कथन ही नाटक रचना के आन्तरिक विधान को अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर देता है।

कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास-सभी क्षेत्रों में प्रसाद जी एक नवीन 'स्कूल' और नवीन जीवन-दर्शन की स्थापना करने में सफल हुये हैं। वे 'छायावाद' के संस्थापकों और उन्नायकों में से एक हैं। वैसे सर्वप्रथम कविता के क्षेत्र में इस नव-अनुभूति के वाहक वहीं रहे हैं और प्रथम विरोध भी उन्हीं को सहना पड़ा है। भाषा शैली और शब्द-विन्यास के निर्माण के लिये जितना संघर्ष प्रसाद जी को करना पड़ा है, उतना दूसरों को नहीं।

आरम्भिक रचनाएँ

कहा जाता हैं कि नौ वर्ष की अवस्था में ही जयशंकर प्रसाद ने 'कलाधर' उपनाम से ब्रजभाषा में एक सवैया लिखकर अपने गुरु रसमयसिद्ध को दिखाया था। उनकी आरम्भिक रचनाएँ यद्यपि ब्रजभाषा में मिलती हैं। पर क्रमशः वे खड़ी बोली को अपनाते गये और इस समय उनकी ब्रजभाषा की जो रचनाएँ उपलब्ध हैं, उनका महत्त्व केवल ऐतिहासिक ही है। प्रसाद की ही प्रेरणा से 1909 ई. में उनके भांजे अम्बिका प्रसाद गुप्त के सम्पादकत्व में 'इन्दु' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। प्रसाद इसमें नियमित रूप से लिखते रहे और उनकी आरम्भिक रचनाएँ इसी के अंकों में देखी जा सकती हैं।

संस्करण

कालक्रम के अनुसार 'चित्राधार' प्रसाद का प्रथम संग्रह है। इसका प्रथम संस्करण 1918 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध सभी का संकलन था और भाषा ब्रज तथा खड़ी बोली दोनों थी। लगभग दस वर्ष के बाद 1928 में जब इसका दूसरा संस्करण आया, तब इसमें ब्रजभाषा की रचनाएँ ही रखी गयीं। साथ ही इसमें प्रसाद की आरम्भिक कथाएँ भी संकलित हैं। 'चित्राधार' की कविताओं को दो प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता

है। एक खण्ड उन आख्यानक कविताओं अथवा कथा काव्यों का है, जिनमें प्रबन्धात्मकता है। अयोध्या का उद्धार, वनमिलन और प्रेमराज्य तीन कथाकाव्य इसमें संग्रहीत हैं। 'अयोध्या का उद्धार' में लव द्वारा अयोध्या को पुनः बसाने की कथा है। इसकी प्रेरणा कालिदास का 'रघुवंश' है। 'वनमिलन' में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' की प्रेरणा है। 'प्रेमराज्य' की कथा ऐतिहासिक है। 'चित्रधार' की स्फुट रचनाएँ प्रकृतिविषयक तथा भक्ति और प्रेमसम्बन्धिनी हैं। 'कानन कुसुम' प्रसाद की खड़ीबोली की कविताओं का प्रथम संग्रह है। यद्यपि इसके प्रथम संस्करण में ब्रज और खड़ी बोली दोनों की कविताएँ हैं, पर दूसरे संस्करण (1918 ई.) तथा तीसरे संस्करण (1929 ई.) में अनेक परिवर्तन दिखायी देते हैं और अब उसमें केवल खड़ीबोली की कविताएँ हैं। कवि के अनुसार यह 1966 वि. (सन् 1909 ईस्वीं) से 1974 वि. (सन् 1917 ईस्वीं) तक की कविताओं का संग्रह है। इसमें भी ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाओं के आधार पर लिखी गयी कुछ कविताएँ हैं।

रचनाएँ

प्रसाद जी की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है–

कामायनी

कामायनी महाकाव्य कवि प्रसाद की अक्षय कीर्ति का स्तम्भ है। भाषा, शैली और विषय-तीनों ही की दृष्टि से यह विश्व-साहित्य का अद्वितीय ग्रन्थ है। 'कामायनी' में प्रसादजी ने प्रतीकात्मक पात्रों के द्वारा मानव के मनोवैज्ञानिक विकास को प्रस्तुत किया है तथा मानव जीवन में श्रद्धा और बुद्धि के समन्वित जीवन-दर्शन को प्रतिष्ठा प्रदान की है।

आँसू

आँसू कवि के मर्मस्पर्शी वियोगपरक उदगारों का प्रस्तुतीकरण है।

लहर

यह मुक्तक रचनाओं का संग्रह है।

झरना

प्रसाद जी की छायावादी शैली में रचित कविताएँ इसमें संग्रहीत हैं।

चित्राधार

चित्राधार प्रसाद जी की ब्रज में रची गयी कविताओं का संग्रह है।

गद्य रचनाएँ

प्रसाद जी की प्रमुख गद्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

नाटक

चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, स्कन्दगुप्त, जनमेजय का नागयज्ञ, एक घूँट, विशाख, अजातशत्रु आदि।

कहानी-संग्रह

प्रतिध्वनि, छाया, आकाशदीप, आँधी तथा इन्द्रजाल आपके कहानी संग्रह हैं।

उपन्यास

तितली और कंकाल।

निबन्ध

काव्य और कला।

अन्य रचनाएँ

अन्य कविताओं में विनय, प्रकृति, प्रेम तथा सामाजिक भावनाएँ हैं। 'कानन कुसुम' में प्रसाद ने अनुभूति और अभिव्यक्ति की नयी दिशाएँ खोजने का प्रयत्न किया है। इसके अनन्तर कथाकाव्यों का समय आया है। 'प्रेम पथिक' का ब्रजभाषा स्वरूप सबसे पहले 'इन्दू' (1909 ई.) में प्रकाशित हुआ था और 1970 वि. में कवि ने इसे खड़ीबोली में रूपान्तरित किया। इसकी विज्ञप्ति में उन्होंने स्वयं कहा हैं कि 'यह काव्य ब्रजभाषा में आठ वर्ष पहले मैंने लिखा था। 'प्रेम पथिक' में एक भावमूलक कथा है। जिसके माध्यम से आदर्श प्रेम की व्यंजना की गयी है।

प्रकाशन

'करुणालय' की रचना गीतिनाट्य के आधार पर हुई है। इसका प्रथम प्रकाशन 'इन्दु' (1913 ई.) में हुआ। 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में भी यह है। 1928 ई. में इसका पुस्तक रूप में स्वतन्त्र प्रकाशन हुआ। इसमें राजा हरिश्चन्द्र की कथा है। 'महाराणा का महत्त्व' 1914 ई. में 'इन्दु' में प्रकाशित हुआ था। यह भी 'चित्राधार' में संकलित था, पर 1928 ई. में इसका स्वतन्त्र प्रकाशन हुआ। इसमें महाराणा प्रताप की कथा है। 'झरना' का प्रथम प्रकाशन 1918 में हुआ था। आगामी संस्करणों में कुछ परिवर्तन किए गए। इसकी अधिकांश कविताएँ 1914-1917 के बीच लिखी गयीं, यद्यपि कुछ रचनाएँ बाद की भी प्रतीत होती हैं। 'झरना' में प्रसाद के व्यक्तित्त्व का प्रथम बार स्पष्ट प्रकाशन हुआ है और इसमें आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियों को अधिक मुखर रूप में देखा जा सकता है। इसमें छायावाद युग का प्रतिष्ठापन माना जाता है। 'आँसू' प्रसाद की एक विशिष्ट रचना है। इसका प्रथम संस्करण 1982 वि.(1925 ई.) में निकला था। दूसरा संस्करण 1990 वि. (1933 ई.) में प्रकाशित हुआ। 'आँसू' एक श्रेष्ठ गीतिकाव्य है, जिसमें कवि की प्रेमानुभूति व्यंजित है। इसका मूलस्वर विषाद का है। पर अन्तिम पंक्तियों में आशा-विश्वास के स्वर हैं। 'लहर' में प्रसाद की सर्वोत्तम कविताएँ संकलित हैं। इसमें कवि की प्रौढ़ रचनाएँ हैं। इसका प्रकाशन 1933 ई. में हुआ। 'कामायनी' प्रसाद का निबन्ध काव्य है। इसका प्रथम संस्करण 1936 ई. में प्रकाशित हुआ था। कवि का गौरव इस महाकाव्य की रचना से बहुत बढ़ गया। इसमें आदि मानव मनु की कथा है, पर कवि ने अपने युग के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया है।

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार स्तंभों में से एक हैं। सुमित्रानंदन पंत नये युग के प्रवर्तक के रूप में आधुनिक हिन्दी साहित्य में उदित हुए। सुमित्रानंदन पंत ऐसे साहित्यकारों में गिने जाते हैं, जिनका प्रकृति चित्रण समकालीन कवियों में सबसे बेहतरीन था। आकर्षक व्यक्तित्त्व के धनी सुमित्रानंदन पंत के बारे में साहित्यकार राजेन्द्र यादव कहते हैं कि 'पंत अंग्रेजी के रूमानी कवियों जैसी वेशभूषा में रहकर प्रकृति केन्द्रित साहित्य लिखते थे।' जन्म के महज छह घंटे के भीतर उन्होंने अपनी माँ को खो दिया। पंत लोगों से

बहुत जल्द प्रभावित हो जाते थे। पंत ने महात्मा गाँधी और कार्ल मार्क्स से प्रभावित होकर उन पर रचनाएँ लिख डालीं। हिंदी साहित्य के विलियम वर्ड्सवर्थ कहे जाने वाले इस कवि ने महानायक अमिताभ बच्चन को 'अमिताभ' नाम दिया था। पद्मभूषण, ज्ञानपीठ पुरस्कार और साहित्य अकादमी पुरस्कारों से नवाजे जा चुके पंत की रचनाओं में समाज के यथार्थ के साथ-साथ प्रकृति और मनुष्य की सत्ता के बीच टकराव भी होता था। हरिवंश राय 'बच्चन' और श्री अरविंदो के साथ उनकी जिंदगी के अच्छे दिन गुजरे। आधी सदी से भी अधिक लंबे उनके रचनाकाल में आधुनिक हिंदी कविता का एक पूरा युग समाया हुआ है।

जीवन परिचय

सुमित्रानंदन पंत का जन्म 20 मई 1900 में कौसानी, उत्तराखण्ड, भारत में हुआ था। जन्म के छह घंटे बाद ही माँ को क्रूर मृत्यु ने छीन लिया। शिशु को उसकी दादी ने पाला पोसा। शिशु का नाम रखा गया गुसाईं दत्त। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिन्दी के सुकुमार कवि पंत की प्रारंभिक शिक्षा कौसानी गांव के स्कूल में हुई, फिर वह वाराणसी आ गए और 'जयनारायण हाईस्कूल' में शिक्षा पाई, इसके बाद उन्होंने इलाहाबाद में 'म्योर सेंट्रल कॉलेज' में प्रवेश लिया, पर इंटरमीडिएट की परीक्षा में बैठने से पहले ही 1921 में असहयोग आंदोलन में शामिल हो गए।

प्रारम्भिक जीवन

कवि के बचपन का नाम 'गुसाईं दत्त' था। स्लेटी छतों वाले पहाड़ी घर, आंगन के सामने आड़ू, खुबानी के पेड़, पक्षियों का कलरव, सर्पिल पगडण्डियां, बांज, बुरांश व चीड़ के पेड़ों की बयार व नीचे दूर-दूर तक मखमली कालीन सी पसरी कत्यूर घाटी व उसके ऊपर हिमालय के उत्तंग शिखरों और दादी से सुनी कहानियों व शाम के समय सुनायी देने वाली आरती की स्वर लहरियों ने गुसाईं दत्त को बचपन से ही कवि हृदय बना दिया था। क्योंकि जन्म के छः घण्टे बाद ही इनकी माँ का निधन हो गया था, इसीलिए प्रकृति की यही रमणीयता इनकी माँ बन गयी। प्रकृति के इसी ममतामयी छांव में बालक गुसाईं दत्त धीरे-धीरे यहां के सौन्दर्य को शब्दों के माध्यम से कागज में उकेरने लगा। पिता 'गंगादत्त' उस समय कौसानी चाय बगीचे के मैनेजर थे। उनके भाई संस्कृत व अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे, जो हिन्दी व कुमाँऊनी में कविताएं भी लिखा करते

थे। यदाकदा जब उनके भाई अपनी पत्नी को मधुर कंठ से कविताएं सुनाया करते तो बालक गुसाईं दत्त किवाड़ की ओट में चुपचाप सुनता रहता और उसी तरह के शब्दों की तुकबन्दी कर कविता लिखने का प्रयास करता। बालक गुसाईं दत्त की प्राइमरी तक की शिक्षा कौसानी के 'वर्नाक्यूलर स्कूल' में हुई। इनके कविता पाठ से मुग्ध होकर स्कूल इंसपैक्टर ने इन्हें उपहार में एक पुस्तक दी थी। ग्यारह साल की उम्र में इन्हें पढ़ाई के लिये अल्मोड़ा के 'गवर्नमेंट हाईस्कूल' में भेज दिया गया। कौसानी के सौन्दर्य व एकान्तता के अभाव की पूर्ति अब नगरीय सुख वैभव से होने लगीं। अल्मोडा की खास संस्कृति व वहां के समाज ने गुसाईं दत्त को अन्दर तक प्रभावित कर दिया। सबसे पहले उनका ध्यान अपने नाम पर गया और उन्होंने लक्ष्मण के चरित्र को आदर्श मानकर अपना नाम गुसाईं दत्त से बदल कर 'सुमित्रानंदन' कर लिया। कुछ समय बाद नेपोलियन के युवावस्था के चित्र से प्रभावित होकर अपने लम्बे व घुंघराले बाल रख लिये।

साहित्यिक परिचय

अल्मोड़ा में तब कई साहित्यिक व सांस्कृतिक गतिविधियां होती रहती थीं जिसमें पंत अक्सर भाग लेते रहते। स्वामी सत्यदेव जी के प्रयासों से नगर में 'शुद्ध साहित्य समिति' नाम से एक पुस्तकालय चलता था। इस पुस्तकालय से पंत जी को उच्च कोटि के विद्वानों का साहित्य पढ़ने को मिलता था। कौसानी में साहित्य के प्रति पंत जी में जो अनुराग पैदा हुआ वह यहां के साहित्यिक वातावरण में अब अंकुरित होने लगा। कविता का प्रयोग वे सगे सम्बन्धियों को पत्र लिखने में करने लगे। शुरुआती दौर में उन्होंने 'बागेश्वर के मेले', 'वकीलों के धनलोलुप स्वभाव' व 'तम्बाकू का धुंआ' जैसी कुछ छुटपुट कविताएं लिखी। आठवीं कक्षा के दौरान ही उनका परिचय प्रख्यात नाटककार गोविन्द बल्लभ पंत, श्यामाचरण दत्त पंत, इलाचन्द्र जोशी व हेमचन्द्र जोशी से हो गया था। अल्मोड़ा से तब हस्तलिखित पत्रिका 'सुधाकर' व 'अल्मोड़ा अखबार' नामक पत्र निकलता था जिसमें वे कविताएं लिखते रहते। अल्मोड़ा में पंत जी के घर के ठीक ऊपर स्थित गिरजाघर की घण्टियों की आवाज उन्हें अत्यधिक सम्मोहित करती थीं। अक्सर प्रत्येक रविवार को वे इस पर एक कविता लिखते। 'गिरजे का घण्टा' शीर्षक से उनकी यह कविता सम्भवत: पहली रचना है–

नभ की उस नीली चुप्पी पर घण्टा है एक टंगा सुन्दर
जो घड़ी घड़ी मन के भीतर कुछ कहता रहता बज बज कर

दुबले पतले व सुन्दर काया के कारण पंत जी को स्कूल के नाटकों में अधिकतर स्त्री पात्रों का अभिनय करने को मिलता। 1916 में जब वे जाड़ों की छुट्टियों में कौसानी गये तो उन्होंने 'हार' शीर्षक से 200 पृष्ठों का 'एक खिलौना' उपन्यास लिख डाला। जिसमें उनके किशोर मन की कल्पना के नायक नायिकाओं व अन्य पात्रों की मौजूदगी थी। कवि पंत का किशोर कवि जीवन कौसानी व अल्मोड़ा में ही बीता था। इन दोनों जगहों का वर्णन भी उनकी कविताओं में मिलता है।

काव्य एवं साहित्य की साधना

पंतजी संघर्षों के एक लंबे दौर से गुजरे, जिसके दौरान स्वयं को काव्य एवं साहित्य की साधना में लगाने के लिए उन्होंने अपनी आजीविका सुनिश्चित करने का प्रयास किया। बहुत पहले ही उन्होंने यह समझ लिया था कि उनके जीवन का लक्ष्य और कार्य यदि कोई है, तो वह काव्य साधना ही है। पंत की भाव-चेतना महाकवि रबींद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी और श्री अरबिंदो घोष की रचनाओं से प्रभावित हुई। साथ ही कुछ मित्रों ने मार्क्सवाद के अध्ययन की ओर भी उन्हें प्रवृत किया और उसके विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पक्षों को उन्होंने गहराई से देखा व समझा। 1950 में रेडियो विभाग से जुड़ने से उनके जीवन में एक ओर मोड़ आया। सात वर्ष उन्होंने 'हिन्दी चीफ प्रोड्यूसर' के पद पर कार्य किया और उसके बाद साहित्य सलाहकार के रूप में कार्यरत रहे।

युग प्रवर्तक कवि

सुमित्रानंदन पंत आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक युग प्रवर्तक कवि हैं। उन्होंने भाषा को निखार और संस्कार देने, उसकी सामर्थ्य को उद्घाटित करने के अतिरिक्त नवीन विचार व भावों की समृद्धि दी। पंत सदा ही अत्यंत सशक्त और ऊर्जावान कवि रहे हैं। सुमित्रानंदन पंत को मुख्यत: प्रकृति का कवि माना जाने लगा। लेकिन पंत वास्तव में मानव-सौंदर्य और आध्यात्मिक चेतना के भी कुशल कवि थे।

रचनाकाल

पंत का पल्लव, ज्योत्सना तथा गुंजन का रचनाकाल काल (1926-33) उनकी सौंदर्य एवं कला-साधना का काल रहा है। वह मुख्यत: भारतीय

सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आदर्शवादिता से अनुप्राणित थे, किंतु युगांत (1937) तक आते-आते बहिर्जीवन के खिंचाव से उनके भावात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तन आए। पन्तजी की रचनाओं का क्षेत्र बहुविध और बहुआयामी है। आपकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

महाकाव्य

लोकायतन' कवि सुमित्रानन्दन पन्त का महाकाव्य है। कवि की विचारधारा और लोक-जीवन के प्रति उसकी प्रतिबद्धता इस रचना में अभिव्यक्त हुई है। इस पर कवि को 'सोवियत रूस' तथा उत्तर प्रदेश शासन से पुरस्कार प्राप्त हुआ है। पंत जी को अपने माता-पिता के प्रति असीम-सम्मान था। इसलिए उन्होंने अपने दो महाकाव्यों में से एक महाकाव्य 'लोकायतन' अपने पूज्य पिता को और दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' अपनी स्नेहमयी माता को, जो इन्हें जन्म देते ही स्वर्ग सिधार गई, समर्पित किया है। अपनी माँ सरस्वती देवी को स्मरण करते हुए इन्होंने अपना दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' जिन शब्दों के साथ उन्हें समर्पित किया है, वे द्रष्टव्य हैं–

मुझे छोड़ अनगढ़ जग में तुम हुई अगोचर,
भाव-देह धर लौटीं माँ की ममता से भर !
वीणा ले कर में, शोभित प्रेरणा-हंस पर,
साध चेतना-तंत्रि रसौ वै सः झंकृत कर
खोल हृदय में भावी के सौन्दर्य दिगंतर !

काव्य-संग्रह

'वीणा', 'पल्लव' तथा 'गुंजन' छायावादी शैली में सौन्दर्य और प्रेम की प्रस्तुति है। 'युगान्त', युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में पन्तजी के प्रगतिवादी और यथार्थपरक भावों का प्रकाशन हुआ है। 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि', 'युगपथ', 'उत्तरा', 'अतिमा' तथा 'रजत-रश्मि' संग्रहों में अरविन्द-दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। इनके अतिरिक्त 'कला और बूढ़ा चाँद' तथा 'चिदम्बरा' भी आपकी सम्मानित रचनाएँ हैं। पन्तजी की अन्तर्दृष्टि तथा संवेदनशीलता ने जहाँ उनके भाव-पक्ष को गहराई और विविधता प्रदान की है, वहीं उनकी कल्पना-प्रबलता और अभिव्यक्ति-कौशल ने उनके कला-पक्ष को सँवारा है।

रचनाएँ

चिदंबरा 1958 का प्रकाशन है। इसमें युगवाणी (1937-38) से अतिमा (1948) तक कवि की 10 कृतियों से चुनी हुई 196 कविताएं संकलित हैं। एक लंबी आत्मकथात्मक कविता आत्मिका भी इसमें सम्मिलित है, जो वाणी (1957) से ली गई है। चिदंबरा पंत की काव्य चेतना के द्वितीय उत्थान की परिचायक है। प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं–

कविताएं

1. वीणा (1919)
2. ग्रंथि (1920)
3. पल्लव (1926)
4. गुंजन (1932)
5. युगांत (1937)
6. युगवाणी (1938)
7. ग्राम्या (1940)
8. स्वर्णकिरण (1947)
9. स्वर्णधूलि (1947)
10. उत्तरा (1949)
11. युगपथ (1949)
12. चिदंबरा (1958)
13. कला और बूढ़ा चाँद (1959)
14. लोकायतन (1964)
15. गीतहंस (1969)।

कहानियाँ

पाँच कहानियाँ (1938)

उपन्यास

हार (1960),

आत्मकथात्मक संस्मरण

साठ वर्ष–एक रेखांकन (1963)।

प्रकृति-प्रेमी कवि

'उच्छास' से लेकर 'गुंजन' तक की कविता का सम्पूर्ण भावपट कवि की सौन्दर्य-चेतना का काल है। सौन्दर्य-सृष्टि के उनके प्रयत्न के मुख्य उपादान हैं–प्रकृति, प्रेम और आत्म-उद्‌बोधन। अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने उन्हें बचपन से ही अपनी ओर आकृष्ट किया। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे माँ की ममता से रहित उनके जीवन में मानो प्रकृति ही उनकी माँ हो। उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा के पर्वतीय अंचल की गोद में पले-बढ़े पंत जी स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि उस मनोरम वातावरण का इनके व्यक्तित्त्व पर गंभीर प्रभाव पड़ा। कवि या कलाकार कहां से प्रेरणा ग्रहण करता है इस बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए पंत जी कहते हैं, संभवत: प्रेरणा के स्रोत भीतर न होकर अधिकतर बाहर ही रहते हैं। अपनी काव्य यात्रा में पन्त जी सदैव सौन्दर्य को खोजते नजर आते हैं। शब्द, शिल्प, भाव और भाषा के द्वारा कवि पंत प्रकृति और प्रेम के उपादानों से एक अत्यंत सूक्ष्य और हृदयकारी सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं, किंतु उनके शब्द केवल प्रकृति-वर्णन के अंग न होकर एक-दूसरे अर्थ की गहरी व्यंजना से संयोजित हैं। उनकी रचनाओं में छायावाद एवं रहस्यवाद का समावेश भी है। साथ ही शेली, कीट्स, टेनिसन आदि अंग्रेजी कवियों का प्रभाव भी है। मेरे मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है, जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ जिसने छुटपन से ही मुझे अपने रूपहले एकांत में एकाग्र तन्मयता के रश्मिदोलन में झुलाया, रिझाया तथा कोमल कण्ठ वन-पखियों ने साथ बोलना कुहुकन सिखाया। पंतजी को जन्म के उपरांत ही मातृ-वियोग सहना पड़ा।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला हिन्दी के छायावादी कवियों में कई दृष्टियों से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। निराला जी एक कवि, उपन्यासकार, निबन्धकार और कहानीकार थे। उन्होंने कई रेखाचित्र भी बनाये। उनका व्यक्तित्त्व अतिशय विद्रोही और क्रान्तिकारी तत्त्वों से निर्मित हुआ है। उसके कारण वे एक ओर जहाँ अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तनों के स्रष्टा हुए, वहाँ दूसरी ओर परम्पराभ्यासी हिन्दी काव्य

प्रेमियों द्वारा अरसे तक सबसे अधिक गलत भी समझे गये। उनके विविध प्रयोगों-छन्द, भाषा, शैली, भावसम्बन्धी नव्यतर दृष्टियों ने नवीन काव्य को दिशा देने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसलिए घिसी-पिटी परम्पराओं को छोड़कर नवीन शैली के विधायक कवि का पुरातनतापोषक पीढ़ी द्वारा स्वागत का न होना स्वाभाविक था। लेकिन प्रतिभा का प्रकाश उपेक्षा और अज्ञान के कुहासे से बहुत देर तक आच्छन्न नहीं रह सकता।

जीवन परिचय

'निराला' का जन्म महिषादल स्टेट मेदनीपुर (बंगाल) में माघ शुक्ल पक्ष की एकादशी, संवत् 1953, को हुआ था। इनका अपना घर उन्नाव जिले के गढ़ाकोला गाँव में है। निराला जी का जन्म रविवार को हुआ था इसलिए यह सुर्जकुमार कहलाए। 11 जनवरी, 1921 ई. को पं. महावीर प्रसाद को लिखे अपने पत्र में निराला जी ने अपनी उम्र 22 वर्ष बताई है। रामनरेश त्रिपाठी ने कविता कौमुदी के लिए सन् 1926 ई. के अन्त में जन्म सम्बंधी विवरण माँगा तो निराला जी ने माघ शुक्ल 11 सम्वत 1953 (1896) अपनी जन्म तिथि लिखकर भेजी। यह विवरण निराला जी ने स्वयं लिखकर दिया था। बंगाल में बसने का परिणाम यह हुआ कि बांग्ला एक तरह से इनकी मातृभाषा हो गयी।

परिवार

'निराला' के पिता का नाम पं. रामसहाय था, जो बंगाल के महिषादल राज्य के मेदिनीपुर जिले में एक सरकारी नौकरी करते थे। निराला का बचपन बंगाल के इस क्षेत्र में बीता जिसका उनके मन पर बहुत गहरा प्रभाव रहा है। तीन वर्ष की अवस्था में उनकी माँ की मृत्यु हो गयी और उनके पिता ने उनकी देखरेख का भार अपने ऊपर ले लिया।

शिक्षा

निराला की शिक्षा यहीं बंगाली माध्यम से शुरू हुई। हाईस्कूल पास करने के पश्चात् उन्होंने घर पर ही संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया। हाईस्कूल करने के पश्चात् वे लखनऊ और उसके बाद गढकोला (उन्नाव) आ गये। प्रारम्भ से ही रामचरितमानस उन्हें बहुत प्रिय था। वे हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत भाषा में निपुण थे और श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और श्री रवीन्द्रनाथ

टैगोर से विशेष रूप से प्रभावित थे। मैट्रीकुलेशन कक्षा में पहुँचते-पहुँचते इनकी दार्शनिक रुचि का परिचय मिलने लगा। निराला स्वच्छन्द प्रकृति के थे और स्कूल में पढ़ने से अधिक उनकी रुचि घूमने, खेलने, तैरने और कुश्ती लड़ने इत्यादि में थी। संगीत में उनकी विशेष रुचि थी। अध्ययन में उनका विशेष मन नहीं लगता था। इस कारण उनके पिता कभी-कभी उनसे कठोर व्यवहार करते थे, जबकि उनके हृदय में अपने एकमात्र पुत्र के लिये विशेष स्नेह था।

विवाह

पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में निराला का विवाह मनोहरा देवी से हो गया। रायबरेली जिले में डलमऊ के पं. रामदयाल की पुत्री मनोहरा देवी सुन्दर और शिक्षित थीं, उनको संगीत का अभ्यास भी था। पत्नी के जोर देने पर ही उन्होंने हिन्दी सीखी। इसके बाद अतिशीघ्र ही उन्होंने बंगला के बजाय हिन्दी में कविता लिखना शुरू कर दिया। बचपन के नैराश्य और एकाकी जीवन के पश्चात् उन्होंने कुछ वर्ष अपनी पत्नी के साथ सुख से बिताये, किन्तु यह सुख ज्यादा दिनों तक नहीं टिका और उनकी पत्नी की मृत्यु उनकी 20 वर्ष की अवस्था में ही हो गयी। बाद में उनकी पुत्री जो कि विधवा थी, की भी मृत्यु हो गयी। वे आर्थिक विषमताओं से भी घिरे रहे। ऐसे समय में उन्होंने विभिन्न प्रकाशकों के साथ प्रूफ रीडर के रूप में काम किया, उन्होंने 'समन्वय' का भी सम्पादन किया।

पारिवारिक विपत्तियाँ

16-17 वर्ष की उम्र से ही इनके जीवन में विपत्तियाँ आरम्भ हो गयीं, पर अनेक प्रकार के दैवी, सामाजिक और साहित्यिक संघर्षों को झेलते हुए भी इन्होंने कभी अपने लक्ष्य को नीचा नहीं किया। इनकी माँ पहले ही गत हो चुकी थीं, पिता का भी असामायिक निधन हो गया। इनफ्लुएँजा के विकराल प्रकोप में घर के अन्य प्राणी भी चल बसे। पत्नी की मृत्यु से तो ये टूट से गये। पर कुटुम्ब के पालन-पोषण का भार स्वयं झेलते हुए वे अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। इन विपत्तियों से त्राण पाने में इनके दार्शनिक जीवन ने अच्छी सहायता पहुँचायी।

कार्यक्षेत्र

निराला जी ने 1918 से 1922 तक महिषादल राज्य की सेवा की। उसके बाद संपादन स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य किया। इन्होंने 1922 से 23 के

दौरान कोलकाता से प्रकाशित 'समन्वय' का संपादन किया। 1923 के अगस्त से 'मतवाला' के संपादक मंडल में काम किया। इसके बाद लखनऊ में गंगा पुस्तक माला कार्यालय और वहाँ से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'सुधा' से 1935 के मध्य तक संबद्ध रहे। इन्होंने 1942 से मृत्यु पर्यन्त इलाहाबाद में रह कर स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य भी किया। वे जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा के साथ हिन्दी साहित्य में छायावाद के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। उन्होंने कहानियाँ उपन्यास और निबंध भी लिखे हैं, किन्तु उनकी ख्याति विशेष रूप से कविता के कारण ही है।

रचनाएँ

निराला की रचनाओं में अनेक प्रकार के भाव पाए जाते हैं। यद्यपि वे खड़ी बोली के कवि थे, पर ब्रजभाषा व अवधी भाषा में भी कविताएँ गढ़ लेते थे। उनकी रचनाओं में कहीं प्रेम की सघनता है, कहीं आध्यात्मिकता तो कहीं विपन्नों के प्रति सहानुभूति व सम्वेदना, कहीं देश-प्रेम का जज्बा तो कहीं सामाजिक रूढ़ियों का विरोध व कहीं प्रकृति के प्रति झलकता अनुराग। इलाहाबाद में पत्थर तोड़ती महिला पर लिखी उनकी कविता आज भी सामाजिक यथार्थ का एक आईना है। उनका जोर वक्तव्य पर नहीं वरन् चित्रण पर था, सड़क के किनारे पत्थर तोड़ती महिला का रेखांकन उनकी काव्य चेतना की सर्वोच्चता को दर्शाता है–

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर
कोई न छायादार पेड़
वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भर बंधा यौवन
नत नयन प्रिय, कर्म-रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार
सामने त–मालिका अट्टालिका प्राकार

इसी प्रकार राह चलते भिखारी पर उन्होंने लिखा–

पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को,
भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता
दो टूक कलेजे के करता पछताता।

राम की शक्ति पूजा के माध्यम से निराला ने राम को समाज में एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया। वे लिखते हैं–

होगी जय, होगी जय
हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।

सौ पदों में लिखी गयी तुलसीदास निराला की सबसे बड़ी कविता है, जो कि 1934 में लिखी गयी और 1935 में सुधा के पाँच अंकों में किस्तवार प्रकाशित हुयी। इस प्रबन्ध काव्य में निराला ने पत्नी के युवा तन-मन के आकर्षण में मोहग्रस्त तुलसीदास के महाकवि बनने को बखूबी दिखाया है–

जागा जागा संस्कार प्रबल
रे गया काम तत्क्षण वह जल
देखा वामा, वह न थी, अनल प्रमिता वह
इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान
हो गया भस्म वह प्रथम भान
छूटा जग का जो रहा ध्यान।

निराला की रचनाधर्मिता में एकरसता का पुट नहीं है। वे कभी भी बँधकर नहीं लिख पाते थे और न ही यह उनकी फक्कड़ प्रकृति के अनुकूल था। निराला की जूही की कली कविता आज भी लोगों के जेहन में बसी है। इस कविता में निराला ने अपनी अभिव्यक्ति को छंदों की सीमा से परे छन्दविहींन कविता की ओर प्रवाहित किया है–

विजन-वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तन तरुणी जूही की कली
दृग बंद किये, शिथिल पत्रांक में
वासन्ती निशा थी

यही नहीं, निराला एक जगह स्थिर होकर कविता-पाठ भी नहीं करते थे। एक बार एक समारोह में आकाशवाणी को उनकी कविता का सीधा प्रसारण करना था, तो उनके चारों ओर माइक लगाए गए कि पता नहीं वे घूम-घूम कर किस कोने से कविता पढ़ें। निराला ने अपने समय के मशहूर रजनीसेन, चण्डीदास, गोविन्द दास, विवेकानन्द और रवीन्द्र नाथ टैगोर इत्यादि की बांग्ला कविताओं का अनुवाद भी किया, यद्यपि उन पर टैगोर की कविताओं के अनुवाद को अपना मौलिक कहकर प्रकाशित कराने के आरोप भी लगे। राजधानी दिल्ली को भी निराला ने अभिव्यक्ति दी-

यमुना की ध्वनि में
है गूँजती सुहाग-गाथा
सुनता है अन्धकार खड़ा चुपचाप जहाँ
आज वह फिरदौस, सुनसान है पड़ा
शाही दीवान आम स्तब्ध है हो रहा है
दुपहर को, पार्श्व में
उठता है झिल्ली रव
बोलते हैं स्यार रात यमुना-कछार में
लीन हो गया है रव
शाही अँगनाओं का
निस्तब्ध मीनार, मौन हैं मकबरे।

निराला की मौलिकता, प्रबल भावोद्वेग, लोकमानस के हृदय पटल पर छा जाने वाली जीवन्त व प्रभावी शैली, अद्‌भुत वाक्य विन्यास और उनमें अन्तनिहित गूढ़ अर्थ उन्हें भीड़ से अलग खड़ा करते हैं। बसंत पंचमी और निराला का सम्बन्ध बड़ा अद्‌भुत रहा और इस दिन हर साहित्यकार उनके सान्निध्य की अपेक्षा रखता था। ऐसे ही किन्हीं क्षणों में निराला की काव्य रचना में यौवन का भावावेग दिखा-

रोक-टोक से कभी नहीं रुकती है
यौवन-मद की बाढ़ नदी की
किसे देख झुकती है
गरज-गरज वह क्या कहती है, कहने दो
अपनी इच्छा से प्रबल वेग से बहने दो।

यौवन के चरम में प्रेम के वियोगी स्वरूप को भी उन्होंने उकेरा–

छोटे से घर की लघु सीमा में
बंधे हैं क्षुद्र भाव
यह सच है प्रिय
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निरूसीम भूमि पर।

निराला के काव्य में आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, रहस्यवाद और जीवन के गूढ़ पक्षों की झलक मिलती है पर लोकमान्यता के आधार पर निराला ने विषयवस्तु में नये प्रतिमान स्थापित किये और समसामयिकता के पुट को भी खूब उभारा। अपनी पुत्री सरोज के असामायिक निधन और साहित्यकारों के एक गुट द्वारा अनवरत अनर्गल आलोचना किये जाने से निराला अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में मनोविक्षिप्त से हो गये थे। पुत्री के निधन पर शोक–सन्तप्त निराला सरोज–स्मृति में लिखते हैं–

मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल
दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो नहीं कहीं।

प्रमुख कृतियाँ

कविता संग्रह

1. परिमल
2. अनामिका
3. गीतिका
4. कुकुरमुत्ता
5. आदिमा
6. बेला
7. नये पत्ते
8. अर्चना
9. आराधना
10. तुलसीदास
11. जन्मभूमि।

उपन्यास

1. अप्सरा
2. अल्का
3. प्रभावती
4. निरूपमा
5. चमेली
6. उच्च्श्रंखलता
7. काले कारनामे।

पुराण कथा

महाभारत।

कहानी संग्रह

1. चतुरी चमार
2. शुकुल की बीवी
3. सखी
4. लिली
5. देवी।

आलोचना

रविन्द्र-कविता-कन्नन।

निबन्ध संग्रह

1. प्रबन्ध-परिचय
2. प्रबन्ध प्रतिभा
3. बंगभाषा का उच्चरन
4. प्रबन्ध पद्य
5. प्रबन्ध प्रतिमा
6. चाबुक
7. चयन
8. संघर्ष।

सहायक ग्रन्थ

क्रान्तिकारी कवि 'निराला'– बच्चन सिंह
निराला की साहित्य-साधना– रामविलास शर्मा।

अनुवाद

1. आनन्द मठ
2. विश्व-विकर्ष
3. कृष्ण कान्त का विल
4. कपाल कुण्डला
5. दुर्गेश नन्दिनी
6. राज सिंह
7. राज रानी
8. देवी चौधरानी
9. युगलंगुलिया
10. चन्द्रशेखर
11. रजनी
12. श्री रामकृष्णा वचनामृत
13. भारत में विवेकानन्द
14. राजयोग।

निधन

15 अक्टूबर, 1961 को अपनी यादें छोड़कर निराला इस लोक को अलविदा कह गये पर मिथक और यथार्थ के बीच अन्तर्विरोधों के बावजूद अपनी रचनात्मकता को यथार्थ की भावभूमि पर टिकाये रखने वाले निराला आज भी हमारे बीच जीवन्त हैं। इनकी मृत्यु प्रयाग में हुई थी। मुक्ति की उत्कट आकांक्षा उनको सदैव बेचैन करती रही, तभी तो उन्होंने लिखा–

तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर की, निकलो फिर गंगा-जलधारा
गृह-गृह की पार्वती
पुनः सत्य-सुन्दर-शिव को सँवारती
उर-उर की बनो आरती

भ्रान्तों की निश्चल ध्रुवतारा
तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा हिन्दी भाषा की प्रख्यात कवयित्री हैं। महादेवी वर्मा की गिनती हिन्दी कविता के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभ सुमित्रानन्दन पन्त, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के साथ की जाती है। आधुनिक हिन्दी कविता में महादेवी वर्मा एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरीं। महादेवी वर्मा ने खड़ी बोली हिन्दी को कोमलता और मधुरता से संसिक्त कर सहज मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का द्वार खोला, विरह को दीपशिखा का गौरव दिया, व्यष्टिमूलक मानवतावादी काव्य के चिंतन को प्रतिष्ठापित किया। महादेवी वर्मा के गीतों का नाद-सौंदर्य, पैनी उक्तियों की व्यंजना शैली अन्यत्र दुर्लभ है।

जीवन परिचय

महादेवी वर्मा अपने परिवार में कई पीढ़ियों के बाद उत्पन्न हुई। उनके परिवार में दो सौ सालों से कोई लड़की पैदा नहीं हुई थी, यदि होती तो उसे मार दिया जाता था। दुर्गा पूजा के कारण आपका जन्म हुआ। आपके दादा फारसी और उर्दू तथा पिताजी अंग्रेजी जानते थे। माताजी जबलपुर से हिन्दी सीख कर आई थीं, महादेवी वर्मा ने पंचतंत्र और संस्कृत का अध्ययन किया। महादेवी वर्मा जी को काव्य प्रतियोगिता में 'चांदी का कटोरा' मिला था। जिसे इन्होंने गाँधीजी को दे दिया था। महादेवी वर्मा कवि सम्मेलन में भी जाने लगीं थीं, वो सत्याग्रह आंदोलन के दौरान कवि सम्मेलन में अपनी कवितायें सुनातीं और उनको हमेशा प्रथम पुरस्कार मिला करता था। महादेवी वर्मा मराठी मिश्रित हिन्दी बोलती थीं।

जन्म

महादेवी वर्मा का जन्म होली के दिन 26 मार्च, 1907 को फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ था। महादेवी वर्मा के पिता श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा एक वकील थे और माता श्रीमती हेमरानी देवी थीं। महादेवी वर्मा के माता-पिता दोनों ही शिक्षा के अनन्य प्रेमी थे। महादेवी वर्मा को 'आधुनिक काल की मीराबाई' कहा जाता है। महादेवी जी छायावाद रहस्यवाद के प्रमुख कवियों में से एक हैं। हिन्दुस्तानी स्त्री

की उदारता, करुणा, सात्विकता, आधुनिक बौद्धिकता, गंभीरता और सरलता महादेवी वर्मा के व्यक्तित्त्व में समाविष्ट थी। उनके व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व की विलक्षणता से अभिभूत रचनाकारों ने उन्हें 'साहित्य साम्राज्ञी', 'हिन्दी के विशाल मंदिर की वीणापाणि', 'शारदा की प्रतिमा' आदि विशेषणों से अभिहित करके उनकी असाधारणता को लक्षित किया। महादेवी जी ने एक निश्चित दायित्व के साथ भाषा, साहित्य, समाज, शिक्षा और संस्कृति को संस्कारित किया। कविता में रहस्यवाद, छायावाद की भूमि ग्रहण करने के बावजूद सामयिक समस्याओं के निवारण में महादेवी वर्मा ने सक्रिय भागीदारी निभाई।

शिक्षा

महादेवी वर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई। महादेवी वर्मा ने बी.ए. जबलपुर से किया। महादेवी वर्मा अपने घर में सबसे बड़ी थीं उनके दो भाई और एक बहन थी। 1919 में इलाहाबाद में 'क्रॉस्थवेट कॉलेज' से शिक्षा का प्रारंभ करते हुए महादेवी वर्मा ने 1932 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की। तब तक उनके दो काव्य संकलन 'नीहार' और 'रश्मि' प्रकाशित होकर चर्चा में आ चुके थे। महादेवी जी में काव्य प्रतिभा सात वर्ष की उम्र में ही मुखर हो उठी थी। विद्यार्थी जीवन में ही उनकी कविताऐं देश की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पाने लगीं थीं।

विवाह

उन दिनों के प्रचलन के अनुसार महादेवी वर्मा का विवाह छोटी उम्र में ही हो गया था परन्तु महादेवी जी को सांसारिकता से कोई लगाव नहीं था अपितु वे तो बौद्ध धर्म से बहुत प्रभावित थीं और स्वयं भी एक बौद्ध भिक्षुणी बनना चाहतीं थीं। विवाह के बाद भी उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी। महादेवी वर्मा की शादी 1914 में 'डॉ. स्वरूप नरेन वर्मा' के साथ इंदौर में 9 साल की उम्र में हुई, वो अपने माँ पिताजी के साथ रहती थीं क्योंकि उनके पति लखनऊ में पढ़ रहे थे।

विरासत

शिक्षा और साहित्य प्रेम महादेवी जी को एक तरह से विरासत में मिला था। महादेवी जी में काव्य रचना के बीज बचपन से ही विद्यमान थे। छः सात वर्ष की अवस्था में भगवान की पूजा करती हुई माँ पर उनकी तुकबन्दी–

ठंडे पानी से नहलाती
ठंडा चन्दन उन्हें लगाती
उनका भोग हमें दे जाती
तब भी कभी न बोले हैं
मां के ठाकुर जी भोले हैं।

वे हिन्दी के भक्त कवियों की रचनाओं और भगवान बुद्ध के चरित्र से अत्यन्त प्रभावित थी। उनके गीतों में प्रवाहित करुणा के अनन्त स्रोत को इसी कोण से समझा जा सकता है। वेदना और करुणा महादेवी वर्मा के गीतों की मुख्य प्रवृत्ति है। असीम दु:ख के भाव में से ही महादेवी वर्मा के गीतों का उदय और अन्त दोनों होता है।

महिला विद्यापीठ की स्थापना

महादेवी वर्मा ने अपने प्रयत्नों से इलाहाबाद में 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' की स्थापना की। इसकी वे प्रधानाचार्य एवं कुलपति भी रहीं। महादेवी वर्मा पाठशाला में हिन्दी-अध्यापक से प्रभावित होकर ब्रजभाषा में समस्या पूर्ति भी करने लगीं। फिर तत्कालीन खड़ी बोली की कविता से प्रभावित होकर खड़ी बोली में रोला और हरिगीतिका छन्दों में काव्य लिखना प्रारम्भ किया। उसी समय माँ से सुनी एक करुण कथा को लेकर सौ छन्दों में एक खण्डकाव्य भी लिख डाला। 1932 में उन्होंने महिलाओं की प्रमुख पत्रिका 'चाँद' का कार्यभार सँभाला। प्रयाग में अध्यापन कार्य से जुड़ने के बाद हिन्दी के प्रति गहरा अनुराग रखने के कारण महादेवी वर्मा दिनों-दिन साहित्यिक क्रियाकलापों से जुड़ती चली गई। उन्होंने न केवल 'चाँद' का सम्पादन किया वरन् हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयाग में 'साहित्यकार संसद' की स्थापना की। उन्होंने 'साहित्यकार' मासिक का संपादन किया और 'रंगवाणी' नाट्य संस्था की भी स्थापना की।

कृतियाँ

महादेवी जी कवयित्री होने के साथ-साथ एक विशिष्ट गद्यकार थीं। 'यामा' में उनके प्रथम चार काव्य-संग्रहों की कविताओं का एक साथ संकलन हुआ है। 'आधुनिक कवि-महादेवी' में उनके समस्त काव्य से उन्हीं द्वारा चुनी

हुई कविताऐं संकलित हैं। कवि के अतिरिक्त वे गद्य लेखिका के रूप में भी पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुकी हैं। 'स्मृति की रेखाएं' (1943 ई.) और 'अतीत के चलचित्र' (1941 ई.) उनकी संस्मरणात्मक गद्य रचनाओं के संग्रह हैं। 'शृंखला की कड़ियाँ' (1942 ई.) में सामाजिक समस्याओं, विशेषकर अभिशप्त नारी जीवन के जलते प्रश्नों के सम्बन्ध में लिखे उनके विचारात्मक निबन्ध संकलित हैं। रचनात्मक गद्य के अतिरिक्त 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' में तथा 'दीपशिखा', 'श्यामा' और 'आधुनिक कवि-महादेवी' की भूमिकाओं में उनकी आलोचनात्मक प्रतिभा का भी पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है। उनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं–

काव्य

1. नीहार (1930)
2. रश्मि (1932)
3. नीरजा (1934)
4. सांध्यगीत (1936)
5. दीपशिखा (1942)
6. यामा
7. सप्तपर्णा

गद्य

1. अतीत के चलचित्र
2. स्मृति की रेखाएँ
3. पथ के साथी
4. मेरा परिवार

विविध संकलन

1. स्मारिका
2. स्मृति चित्र
3. संभाषण
4. संचयन
5. दृष्टिबोध

पुनर्मुद्रित संकलन

1. यामा (1940)
2. दीपगीत (1983)
3. नीलाम्बरा (1983)
4. आत्मिका (1983)

निबंध

1. शृंखला की कड़ियाँ
2. विवेचनात्मक गद्य
3. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध

ललित निबंध

क्षणदा

काव्य संग्रह

महादेवी वर्मा के 1934 में 'नीरजा', 1936 में 'सांध्यगीत' नामक संग्रह प्रकाशित हुए। 1939 में इन चारों काव्य संग्रहों को उनकी कलाकृतियों के साथ वृहदाकार में 'यामा' शीर्षक से प्रकाशित किया गया। महादेवी वर्मा ने गद्य, काव्य, शिक्षा और चित्रकला सभी क्षेत्रों में नए आयाम स्थापित किए। इसके अतिरिक्त उनके 18 काव्य और गद्य कृतियाँ हैं, जिनमें 'मेरा परिवार', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी', 'शृंखला की कड़ियाँ' और 'अतीत के चलचित्र' प्रमुख हैं।

सम्मान और पुरस्कार

सन 1955 में महादेवी जी ने इलाहाबाद में 'साहित्यकार संसद' की स्थापना की और पं. इला चंद्र जोशी के सहयोग से 'साहित्यकार' का संपादन सँभाला। यह इस संस्था का मुखपत्र था। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद 1952 में वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या मनोनीत की गई। 1956 में भारत सरकार ने उनकी साहित्यिक सेवा के लिए 'पद्म भूषण' की उपाधि और 1969 में 'विक्रम विश्वविद्यालय' ने उन्हें डी.लिट. की उपाधि से अलंकृत किया। इससे पूर्व महादेवी वर्मा को 'नीरजा' के लिए 1934 में 'सेकसरिया पुरस्कार', 1942 में 'स्मृति की रेखाओं' के लिए 'द्विवेदी पदक' प्राप्त हुए। 1943 में उन्हें 'मंगला

प्रसाद पुरस्कार' एवं उत्तर प्रदेश सरकार के 'भारत भारती पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। 'यामा' नामक काव्य संकलन के लिए उन्हें भारत का सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

पुरस्कार सूची

1. 1934–सेकसरिया पुरस्कार
2. 1942–द्विवेदी पदक
3. 1943–मंगला प्रसाद पुरस्कार
4. 1943–भारत भारती पुरस्कार
5. 1956–पद्म भूषण
6. 1979–साहित्य अकादेमी फेलोशिप
7. 1982–ज्ञानपीठ पुरस्कार
8. 1988–पद्म विभूषण

निधन

महादेवी वर्मा का निधन 11 सितम्बर, 1987, को प्रयाग में हुआ था। महादेवी वर्मा ने निरीह व्यक्तियों की सेवा करने का व्रत ले रखा था। वे बहुधा निकटवर्ती ग्रामीण अंचलों में जाकर ग्रामीण भाई-बहनों की सेवा सुश्रुषा तथा दवा नि:शुल्क देने में निरत रहती थीं। वास्तव में वे निज नाम के अनुरूप ममतामयी, महीयसी महादेवी थीं। भारतीय संस्कृति तथा भारतीय जीवन दर्शन को आत्मसात किया था। उन्होंने भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में कभी समझौता नहीं किया। महादेवी वर्मा ने एक निर्भीक, स्वाभिमाननी भारतीय नारी का जीवन जिया। राष्ट्र भाषा हिन्दी के सम्बन्ध में उनका कथन है ''हिन्दी भाषा के साथ हमारी अस्मिता जुडी हुई है। हमारे देश की संस्कृति और हमारी राष्ट्रीय एकता की हिन्दी भाषा संवाहिका है।''

छायावाद– काव्य शक्ति एवं शक्ति काव्य

छायावाद को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने शैली की पद्धतिमात्र स्वीकारा है तो नंददुलारे वाजपेयी ने अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली के रूप में अपनाया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे रहस्यवाद के भुल-भुलैया में डाल दिया तो डॉ. नगेंद्र ने 'स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह' कहा। आलोचकों

ने छायावाद की किसी न किसी प्रवृत्ति के आधार पर उसे जानने-समझने का प्रयास किया। छायावाद संबंधी विद्वानों की परिभाषाएँ या तो अधूरी हैं या एकांगी। इस संदर्भ में नामवर सिंह का छायावाद (1955) संबंधी ग्रंथ विशेष अर्थ रखता है। उन्होंने एक नए एंगल से छायावाद को देखा। उनके शब्दों में-'छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में जिस तरह क्रमशः विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गई और इसके फलस्वरूप छायावाद संज्ञा का भी अर्थ विस्तार होता गया।' उपर्युक्त परिभाषा उस मान्यता को भी पूरी तरह बदलकर रख देती है, जो यह मानने तथा प्रमाणित करने के लिए कमर तोड़ मेहनत करती हैं कि छायावाद प्रेम और वेदना का काव्य है। छायावाद का समय 1918 से 1936 ई. तक है। अर्थात छायावाद का उद्‌भव तथा विकास दो विश्वयुद्धों के बीच हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति एवं द्वितीय विश्वयुद्ध की प्रस्तुति के बीच हिंदी साहित्य में छायावाद का सृजन तथा पल्लवन हुआ। आलोच्य काल की सामाजिक परिस्थितियों पर ध्यान दें तो स्पष्ट पता चलता हैं कि समाज दो पाटों के बीच पीसा जा रहा था। एक ओर औपनिवेशिक परतंत्रता की जंजीर से भारतीय समाज आबद्ध था तो दूसरी ओर धार्मिक रूढ़ियों और वर्जनाओं से अधिकांश लोग घिरे हुए थे। तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य को सामने रखा जाए तो गांधी जी के असहयोग आंदोलन ने भारतीयों को उद्‌बुद्ध किया था। ऐसे समय में सृजित साहित्य में पलायनवादिता का स्वर भला कैसे उभर सकता है। इस युग के स्रष्टाओं ने अपनी रचनाओं में स्वप्नों को पूर्ण करने का प्रयास किया है। सामंती व्यवस्था से मुक्ति, धार्मिक कट्टरता का त्याग एवं साम्राज्यवादी शक्ति से मुक्ति-इन रचनाकारों के स्वप्न थे। स्वप्नों को साकार बनाने के लिए इन्हें बाहरी तथा भीतरी संघर्षों का सामना करना पड़ा। इन संघर्षों की अभिव्यक्ति छायावाद युग में हुई है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' में छायावाद को शक्तिकाल के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने छायावादी रचनाओं में ज्योति और जागरण की चेतना को रेखांकित किया है। उनकी मान्यता है-'अपने व्यक्तिगत प्रणय और राष्ट्र-प्रेम की अनुभूति में और उनके संश्लेष में छायावाद मूलतः शक्ति काव्य है।'

नामवर सिंह तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी ने आलोच्य काव्यधारा में जागरण पर बहुत अधिक महत्व दिया है। वास्तव में छायावादी कवियों ने सुप्त समाज को जागृत किया है। उन्होंने ओजस्वी स्वर में जागरण-गीत भी खूब लिखे हैं।

प्रसाद ने न केवल अपनी कविताओं में बल्कि अपने नाटकों-चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त में भी जातीय जागरण का प्रसार किया है। स्कंदगुप्त का प्रसिद्ध गीत 'हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार' आत्म-गौरव का ओजस्वी उद्‌बोधन है। प्रसाद की दृष्टि में भारत संस्कृति की जननी है। बुद्ध की अहिंसा, अशोक की करुणा आदि की प्रदात्री भारत भूमि ही है। संसृति में संस्कृति का प्रचार भारत द्वारा हुआ है। मातृगुप्त के द्वारा प्रस्तुत उद्‌बोधन गीत एक ओर हताश, उदास, निराश भारतीयों में नवीन स्फूर्ति उत्पन्न करता है तो दूसरी ओर भारत की दिव्य, भव्य एवं उदात्त परंपरा का प्रतीक बनकर आता है। भारतीय संस्कृति एवं उसकी ऐतिहासिक परंपरा का निदर्शन भी प्रस्तुत होता है-

'वहीं है रक्त, वहीं है देह, वहीं साहस है, वैसा ज्ञान
वहीं है शांति, वहीं है शक्ति, वहीं हम दिव्य आर्य संतान।'

'पेशोला की प्रतिध्वनि' शीर्षक कविता में निर्धूम भस्मरहित ज्वलन पिंड के अरुण करुण बिंब का जो चित्रण किया है, वह अत्यंत प्रतीकात्मक है। यहाँ भी अस्तगामी सूर्य के बहाने कवि ने भारतीय अस्तगामी गौरवोज्ज्वल गाथा का प्रतिबिंब उकेरना चाहा है। परोक्ष रूप में भारतीयों को प्रेरित किया है। उन्हें जगाया है। जागरण का संदेश दिया है। तभी तो कवि चुनौती से भरपूर ललकार सुनाता है-

कौन लेगा भार यह? कौन विचलेगा नहीं।

प्रसाद जी के काव्य-संग्रह 'लहर' की 'बीती विभावरी जाग री'। कविता को भले ही प्रभाकर श्रोत्रिय विशुद्ध प्रकृति-प्रेम आधारित कविता मानें, परंतु भारतीय परतंत्रकालीन उक्त कविता राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम की एक महत्वपूर्ण कविता मानी जा सकती है। यह भी एक जागरण गीत है। सखी (आली) के बहाने जातीय जागरण का प्रसार किया गया है। 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'अपलक जगती रहो एक रात', 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' आदि अनेक कविताओं के माध्यम से कवि ने शक्ति का आवाहन किया है। वैयक्तिक प्रेम के साथ राष्ट्र-जागरण के भाव को कवि ने समन्वित रूप प्रदान किया है। कवि प्रसाद की मान्यता हैं कि मनुष्य मात्र में जागरण विद्यमान है। यह भाव सुषुप्तावस्था में है। चैतन्य एवं शक्ति के आवाहन को सामने रखकर प्रसाद जी ने जागरण-गीत लिखे हैं। ये गीत तत्कालीन राष्ट्रीय संदर्भ, स्वाधीनता की चिंता आदि से भी ओतप्रोत हैं। ध्यातव्य हैं कि प्रसाद के समकालीन कवि निराला, पंत तथा महादेवी ने भी अपनी कविताओं में जागृति के स्वर को निनादित करने का प्रयास किया है।

निराला के जागरण गीतों से शक्तिकाव्य को अधिक बल मिला है। 'जागो फिर एक बार' (1921) में आत्म-गौरव एवं उद्‌बोधन का भाव व्यक्त हुआ है। अकाली सिक्खों के शौर्य की वाणी को स्मरण करते हुए निराला कहते हैं-

'शेरों की माँद में
आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार।'

'बादलराग शृंखला' की कविताओं में स्वतंत्रता केंद्रीय संवेदना के रूप में उभरती है। सोवियत क्रांति में सर्वहारा वर्ग ने जो भूमिका निभाई थी कुछ ऐसी आशा निराला को भारतीय कृषक एवं अन्य वर्ग से संबंधित शोषितों से रही होगी। 1923 में विप्लव के बादल का आह्वान करते हुए निराला का चित्रण द्रष्टव्य है-

'जीर्ण-बाहु है शीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर
ऐ विप्लव के वीर।'

'प्रिय मुदित दृग खोलो', 'जागा दिशा ज्ञान', 'जागो जीवन धानिके' आदि अनेकानेक कविताओं में निराला ने जागरण गीत लिखे हैं। इन गीतों के माध्यम से कवि मनुष्य के हृदय के किसी कोने में निहित सुषुप्ति को चैतन्यावस्था प्रदान करने के लिए प्रतिश्रुत प्रतीत होता है। उक्त गीतों के माध्यम से संघर्ष एवं क्रांति के कवि निराला ने आम आदमी के संघर्ष की अभिव्यक्ति की है। उन्होंने जागरण के माध्यम से आम आदमी को संघर्षशील बनाने का भी प्रयास किया है। शक्ति के आह्वान हेतु कवि ने जागरण-गीत लिखे हैं। निराला की कविता तुलसीदास में भी यह आह्वान है-

'जागो, जागो, आया प्रभात
बीती वह, बीती अंध रात।'

निराला की रचनाओं में शक्ति-चेतना निहित है। परतंत्रता ही नहीं रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से भी मुक्त होना निराला की शक्ति-चेतना का मूलकेंद्र है। इनकी शक्ति चेतना बैसवाड़े के पुरुषत्व से ऊर्जस्वित ही नहीं थी बल्कि बंगीय प्रांत की सुकोमलता से भी प्रभावित थी। इसलिए इनके जागरण गीतों तथा लंबी कविताओं में ओजस्विता का स्वर संचार होता है, नई ऊर्जा से राष्ट्रीय आंदोलन मजबूत होता है।

निराला ने शक्ति की मौलिक कल्पना की है। शक्ति-साधना में मनुष्य मात्र को विवेकवान बनाने का सपना है। उनके समाज में देश के नायक तथा

अधिनायक विवेकशून्य हो दूसरे के हाथों की कठपुतली बनने लगे थे। ऐसे में निराला ने ज्ञान की आवश्यकता पर बल दिया। ज्ञानविहींन होकर ये लोग जाति-वर्ण-धर्म की संकीर्णता से ऊपर नहीं उठ पा रहे थे। निराला ने सरस्वती (ज्ञान की प्रदात्री) की वंदना की। ज्ञान की ज्योति प्रवाहित करने का अनुरोध किया ताकि ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, छुआछूत के तमाम भेद-भाव मिट सकें।

शक्ति की मौलिक कल्पना करना छायावादी काल के लिए आवश्यक था। यह मनुष्य को केवल जगाती नहीं उसे आगे बढ़ाने में भी सहायक होती है। इस शक्ति की साधना के लिए न तो फूलों की आवश्यकता है और न अक्षत दुर्वादल की। व्यक्ति के आत्म-प्रत्यय को झंकृत करने की जरूरत है। शक्ति की मौलिक कल्पना का रूप बुद्धिजीवियों द्वारा संगठित हो सकता है। यह रूप जनशक्ति बनकर उभरे और बंधनमात्र को छिन्न-भिन्न करने का प्रयास करे। 'आराधन का दृढ़ आराधन' में उत्तर देने के पश्चात शक्ति का मौलिक रूप नवीन हो सकता है। इससे जय-जयकार की अनुगूँज उत्पन्न होती है।

छायावाद युग में शक्ति मुट्ठी भर लोगों की वंदिनी बनी हुई थी। हालाँकि आज भी शक्ति या तो सत्तासीनों अथवा अंडरवर्ल्ड के डॉनों के हाथ की कठपुतली बनी हुई है। रामायण काल में रावण, महाभारत काल में कौरव एवं निराला के समाज में अंग्रेजों का भरपूर साथ दिया है शक्ति ने। अन्याय एवं अत्याचार की क्रूर दानव-लीला से प्रपीड़ित आम आदमी का संताप व्यक्त होता है-

'अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति।'

इस शक्ति के स्वरूप को जानना भी आवश्यक है। यह शक्ति अंतस उत्पन्न है, आंतरिक है, बाह्य नहीं। यह शक्ति नवीन तो है ही, मौलिक भी। यह शक्ति इंपोर्टेड नहीं, सेल्फ आर्न्ड (स्वार्जित) है।

'कामायनी' तथा 'राम की शक्तिपूजा' दोनों रचनाओं में दानवी वृत्ति पर स्वस्थ संस्कृति या शक्ति की विजय है। प्रसाद जी की दृष्टि में विनाश एवं निर्माण के द्वंद्व के मध्य मानवीय संस्कृति का विकास होता है-'पुरातनता का यह निर्मीक सहन न करती प्रकृति पल एक।' नश्वरता ही सृजन का मार्ग प्रशस्त करती है। पुरानी टूटी-फूटी वस्तुओं को गलाकर नई चीजें बनाई जाती हैं। कामायनी में प्रसाद ने इस निर्माण की शक्ति को पहचाना है। उन्होंने सर्जनात्मक मूल्य की चिरंतनता को स्वीकार किया है। मानवीय चेतना के विकास को प्रस्तुत किया है-

'शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं हो निरूपाय
समन्वय करे उनका समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।'

राष्ट्रीयता शक्तिकाव्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। परंतु शक्तिकाव्य का सामान्य अर्थ राष्ट्रीय-काव्य नहीं है। उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि हेतु 'विजयिनी मानवता' पदबंध देखा जा सकता है। मानवता की चिंता कवि की प्रमुख चिंता बनकर आई है। इसकी विजय की कामना सबसे बड़ी उपलब्धि है। शक्तिकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह हैं कि इसने व्यक्ति से मनुष्य, मनुष्य से जातीयता, जातीयता से राष्ट्र और राष्ट्र से विश्वभावना की यात्रा की है। पंत ने मानवतावाद की प्रतिष्ठा करते हुए कहा है-

'सुमन सुंदर, विहग सुंदर, मानव तुम सबसे सुंदरतम।'

इस संदर्भ में महादेवी के गीतों को 'आँसू से गीले' कहकर उपेक्षित कर देना भी अनुचित है। ये आँसू से भीगे गीत निराशा के भाव प्रदर्शित नहीं करते। ये रचनात्मक आस्था प्रकट करते हैं। महादेवी दु:खव्रती अवश्य हैं परंतु सृजन हेतु उन्मद भी हैं-

'दुखव्रती निर्माण उन्मद, यह अमरता नापते पद।'

प्रसाद जी ने काम के उदय को रहस्यात्मक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। श्रद्धा प्रेरणादायिणी, शक्तिप्रदायिनी है। यह शक्ति-स्वरूप है। काम सर्जनात्मक मूल्य का प्रतीक है-

'जिसे तुम समझते हो अभिशाप, जगत की ज्वालाओं का मूल
ईश का वह रहस्यमय वरदान, उसे तुम कभी न जाओ भूल।'

निरालाकृत 'तुलसीदास' में तुलसीदास के कामातुर रूप में रत्नावली जाग्रत होती है-

'जागी जोगिनी अरूप-लग्न वह खड़ी शीर्ण प्रिय-भाव-मग्न निरूपमिता।'

'सांध्यगीत' एवं 'संध्यासुंदरी' कविताओं के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता हैं कि अंतर्विरोधी भावों से शक्ति-काव्य को अधिक बल मिला है। अंतर्विरोध किसी भी श्रेष्ठ साहित्य की कमजोरी नहीं है। उसकी शक्ति के रूप में उसकी खास पहचान बनती है। शयन एवं जागरण के द्वंद्व से शक्ति काव्य अद्‌भुत ऊर्जा प्राप्त करता है-

निराला-दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है

वह संध्या सुंदरी परी सी
धीरे-धीरे-धीरे।

महादेवी-चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना जाग तुझको दूर जाना।

यह अंतर्विरोध युगीन द्वंद्वात्मक अंतर्विरोधी प्रवृत्ति का परिचायक है। हताशा के बीच आशा का प्रज्ज्वलन इस युग और साहित्य की विशेषता है। यह अंतर्विरोध उसकी खास पहचान भी है। रूमानियत से शक्ति अर्जित करने वाली महादेवी लिखती हैं-

'तू जल-जल जितना होता क्षय
वह समीप आता छलनामय
मधुर मिलन में मिट जाना तू
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल-खिल
मधुर मधुर मेरे दीपक जल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।'11

सृजन के केंद्र में कल्पना की अहम भूमिका है। शक्तिकाव्य में कल्पना काव्य शक्ति है। कल्पना व्यक्ति के अभिन्न अंग के रूप में आती है। इसके द्वारा ही कवि दुखद वर्तमान में भी मनोहर स्वप्न-लोक की सृष्टि करने का सामर्थ्य प्रदर्शित करता है। यह कल्पना के पंखों के सहारे अतीत के स्वर्णकाल में विचरण कर पाता है। वहाँ से लौट आता है। वह कल्पना के सहारे क्षितिज के उस पार से वापस आ जाता है एवं भविष्य का स्वप्नलोक बना लेता है। इसी शक्ति से कवि का शाश्वत सौंदर्य सृजन संभव होता है। संसार नश्वर है। परंतु इसी नश्वरता में अनश्वरता की खोज हो जाती है। कम से कम इस खोज की शक्ति अर्जित हो जाती है-

'तुम सत्य रहे चिर सुंदर
मेरे इस मिथ्या जग के।'

शक्ति-काव्य के रूप में छायावाद की चर्चा करते समय नारी की प्रधानता को स्वीकार करने वाले कवियों की दृष्टि पर भी विचार करना उचित है। इस काल में पंत जी ने नारी को 'अकेली सुंदरता कल्याणी' ही नहीं कहा बल्कि उसे समस्त ऐश्वर्यों की खोज के रूप में प्रकट किया है। नारी शक्ति के विविधरूपों का स्मरण करेत हुए पंत ने कहा है-'देवि, माँ, सहचरि, प्राण'। इस काल के कवियों ने नारी को भारतीय जागरण का आधारस्रोत बताया है।

तत्कालीन राजनीतिक जीवन में नारी की सहयोगिता का भी वर्णन मिलता है। निराला, पंत आदि ने प्रकृति को नारी-रूप में चित्रित किया है। छायावाद युग में नारी को प्रियतमा के रूप में अधिक स्वीकारा गया है, पत्नी के रूप में कम। प्रेयसी के सम्मान तथा समान भाव के आधार पर देखा गया। इस संदर्भ में नामवर सिंह की मान्यता भी है-'साहित्य में पहली बार स्त्री और पुरुष के बीच वैयक्तिक स्वच्छंद प्रेम का अभ्युदय हुआ।'

'राम की शक्ति पूजा' में राम स्वयं को धिक्कारने का एक कारण यह भी हैं कि जानकी (शक्ति की प्रतिमूर्ति) का उद्धार न हो सका। निराला ने पत्नी-प्रेम को आधार बनाकर 'तुलसीदास' 'राम की शक्तिपूजा' जैसी कविताएँ लिखीं तो पुत्री स्नेह को अपनाकर 'सरोजस्मृति'। आशय यह हैं कि छायावाद युग में नारी शक्ति की प्रतिमूर्ति आधारशिला तथा मूलकेंद्र थी। पूर्णशक्ति अर्जित करने के पश्चात् महादेवी कहती हैं-

'मैं अनंत पथ में लिखती जो
सस्मित सपनों की बातें
उनको कभी न धो पाएँगी
अपने आँसू से रातें।'

छायावादी काव्य में शक्ति के विविध रूप विद्यमान हैं। छायावदी रचनाएँ काव्य-शक्ति के रूप में ही नहीं, शक्ति काव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। ये रचनाएँ व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा विश्व को अमाप शक्ति प्रदान करती हैं। शक्ति काव्य में श्रम है, सौंदर्य भी है। श्रम और सौंदर्य का अद्‌भुत समन्वय साधित हुआ है-'श्याम तन भर बंधा यौवन, नत नयन, प्रिय कर्मरत मन।' में। इस काव्यांदोलन ने ऊर्जस्वित शक्ति-साधना से हिंदी साहित्य को परिपूर्ण कर दिया है। बंधनों, अंधविश्वासों, दकियानुसी विचारों, पुरानी मान्यताओं तथा गलत परंपराओं से मुक्ति प्रदान करने की अपार शक्ति छायावादी रचनाओं में निहित है। अतः छायावादी काव्य यथार्थतः शक्तिकाव्य है।

छायावाद युगीन अन्य काव्यधाराएँ

हास्य-व्यंग्यात्मक काव्य

छायावाद-युग में हास्य-व्यंग्यात्मक काव्य की भी प्रभूत परिमाण में रचना की गयी-एक और तो। ईश्वरीप्रसाद शर्मा, हरिशंकर शर्मा, उग्र, बेढब

बनारसी प्रभृत्ति कुछ कवियों ने इस काव्यधारा का प्रमुख रूप में अवलंबन लिया और दूसरी ओर ऐसे कवियों की संख्या भी कम नहीं है, जिन्होंने समानत: अन्य विषयों पर काव्य-रचना करने पर भी प्रसंगवश हास्य-व्यंग्य को स्थान दिया है। 'मनोरंजन' के संपादक ईश्वरीप्रसाद शर्मा इस युग के प्रथम उल्लेखनीय व्यंग्यकार हैं। 'मतवाला', 'गोलमाल', 'भूत', 'मौजी', 'मनोरंजन' आदि पत्रिकाओं में इनकी अनेक हास्यरसात्मक कविताओं का प्रकाशन हुआ था। हरीशंकर शर्मा इस काव्यधारा के अन्य वरिष्ठ कवि। यद्यपि छायावाद-युग में उनका कोई कविता-संकलन प्रकाशित नहीं हुआ, किन्तु 'पींजपोल' और 'चिड़ियाघर' शीषर्क गध-रचनाओं में कुछ हास्य-व्यंग्यात्मक कविताओं और पैरोडियों का इन्होंने कहीं-कहीं समावेश किया है।

छायावाद-युग के व्यंगकारो में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' (1900-1967)का अलग ही स्थान है। इसकी व्यंग्य कविताओं और पैरोडियों में जो ताजगी और निर्भीकता मिलती है, वह आज भी उतना ही प्रभावित करती है। इसी कोटि के एक अन्य प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्यकार थे-कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी'(1895-1968)। छायावाद-युग में ही नहीं, उसके बाद भी समसामयिक सामाजिक-धार्मिक आचार-व्यवहार को ले कर इन्होंने व्यंग्य-विनोद की जो धारा प्रवाहित की, वह अपनी व्यावहारिक भाषा-शैली के कारण और भी अधिक उल्लेखनीय है। हास्य की छटा बिखेरने के लिए इन्होंने अंग्रेजी और उर्दू की शब्दावली का भी खुल कर प्रयोग किया है। उपमा और वक्रोक्ति के प्रयोग द्वारा व्यंग्य को तीखा बनाने में भी ये सिद्धहस्त थे। इनकी काव्य-शैली का एक उदाहरण देखिए–

बाद मरने के मेरे कब्र पर आलू बोना
हश्र तक यह मेरे ब्रेकफास्ट के सामां होंगे,
उम्र सारी तो कटी घिसते कलम ए बेढब
आखिरी वक्त में क्या खाक पहलवां होंगे।

आलोच्य युग में हास्य-व्यंग्य को प्रमुखता देने वाले अन्य समर्थ कवि हैं-अन्नपूर्णानंद (महाकवि चच्चा), कान्तानाथ पांडेय 'चोंच' और शिवरत्न शुक्ल। अन्नपूर्णानंद ने पश्चिम के अंधानुकरण, सामाजिक रूढ़ियों की दासता, मानव-स्वार्थ आदि विषयों पर उत्कृष्ट व्यंग्य-काव्य स्चना की है। कान्तानाथ पांडेय 'चोंच' की कृतियों में 'चोंच-चालीसा', 'पानी पांडे' और महकावि सांड़ उल्लेखनीय हैं, जिनमें से अंतिम दो में इनकी कुछ हास्य-रसात्मक कहानियां भी समाविष्ट हैं।

ब्रजभाषा-काव्य

आधुनिक युग को ब्रजभाषा-काव्य की एक दीर्घ-समुन्नत परंपरा प्राप्त हुई थी, इसलिए आधुनिक युग के आरंभिक कवियों के लिए यह स्वाभाविक था कि वे उस परंपरा से प्रभावित हों-प्रभावित ही न हों, उसे आगे भी बढ़ायें। भारतेंदु हरिश्चंद्र और ब्रजभाषा के परवर्ती कवियों की रचनाएं प्राचीन परंपरा से प्रभावित होते हुए भी नवीनता की ओर-नये विषयों और नयी अभिव्यंजना पद्धति की ओर अग्रसर हुई। किंतु **छायावाद-युग में ब्रजभाषा**-काव्य की परंपरा एक गौण धारा के रूप में ही दिखायी देती है। इसका प्रमुख कारण यह हैं कि आधुनिक काल में गद्य-रचना की भांति काव्य-रचना के लिए भी खड़ीबोली को स्वीकार कर लिया गया। फिर भी काव्य की भाषा को ले कर काफी दिनों तक तीव्र विवाद होता रहा। ब्रजभाषा के समर्थन में यह तर्क दिया जाता था कि यदि हम सूर, तुलसी, सेनापति, बिहारी और घनानंद जैसी समर्थ प्रतिभाओं की परंपरा को भूलना नहीं चाहते तो हमें ब्रजभाषा को साहित्य में जीवित रखना होगा और इसका उपाय यह हैं कि काव्य में ब्रजभाषा को ही स्वीकार किया जाये। साथ ही यह भी कहा जाता था कि ब्रजभाषा को अनेक महान प्रतिभाओं ने संवार कर काव्य के उत्तम माध्यम के रूप में ढाल दिया है, जबकि खड़ीबोली का रूप अव्यवस्थित, कर्कश और खुरदरा है और वह काव्य-भाषा के गुणों से रहित है। इसलिए कवियों और विद्वानों के एक वर्ग ने ब्रजभाषा का जोरदार समर्थन किया। बाद में जब प्रसाद, निराला, आदि छायावादी कवियों ने खड़ीबोली-कविता में भी अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति कर उसकी अतरंग शक्ति को प्रत्यक्ष कर दिखाया, तब खड़ीबोली-कविता का विरोध शांत हो गया। इसके बावजूद अनेक कवि ब्रजभाषा में काव्य रचना करते रहे। इसके बावजूद अनेक कवि ब्रजभाषा में काव्य रचना करते रहे। इनमें रामनाथ जोतिसी (1874), रामचंद्र शुक्ल (1884-1940), राय कृष्णदास (1892-1980), जगदंबाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' (1895-1956)11 दलारेलाल भार्गव (1995), वियोगी हरि (1896-1988), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', अनूप शर्मा (1900-1966), रामेश्वर 'करुण' (1901)। किशोरीदास वाजपेयी, उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश (1907-1957)' आदि का उल्लेख मुख्य रूप से अपेक्षित है। रामनाथ जोतिसी की रचनाओं में 'रामचंद्रोदय काव्य' (1936) मुख्य हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने ब्रजभाषा में अनेक स्फूट रचनाएँ लिखी हैं।, किन्तु इनके कृतित्त्व का वैशिष्ट्य 'उर्मिला' महाकाव्य के पंचम सर्ग

में लक्षित होता है इसमें विरहिणी नायिका की मनोदशाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है यथा–

'वे स्वपिनल रतिया मधुर, वे बतिया चुपचाप।
हवै विलीन हिय में बनी आज विछोह विलाप॥
साजन संस्मृति नेह की, खटकि खटकि रहि जाए॥
अटकि अटकि आंसू झरे, भरे हृदय निरूपाय॥

छायावाद-युग में ब्रजभाषा काव्य के उन्नयन में अनूप शर्मा का योगदान अविस्मरणीय है। चम्पू-काव्य 'फेरि मिलिबौ' (1938) में कुरुक्षेत्र में राधा-कृष्ण के पुनर्मिलन का वर्णन है, 'श्रीमद्भागवत पुराण' के संबद्ध प्रसंग पर आधारित हैं। इसका कथानक 75 प्रसंगों में विभाजित है तथा गद्य और पद्य दोनों में ब्रजभाषा को अपनाया गया है। कथा-प्रवाह, रस-व्यंजना, चरित्र-चित्रण की स्वाभाविकता और भाषा की सहज मधुरता इस कृति की सहज विशेषताएं हैं।।

गद्य-साहित्य

छायावादयुगीन गद्य-साहित्य के अध्ययन -अनुशीलन के पूर्व इस युग की राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त सर्वेक्षण आवश्यक है, क्योंकि युगविशेष का साहित्य जहां पवर्ती साहित्य से जुड़ा होता है, वहीं समसामयिक वातावरण और रचना-प्रवृत्तियों का भी उस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक दृष्टि से इस युग में महात्मा गांधी का नेतृत्व जनता को सत्य, अहिंसा और असहयोग के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए निरंतर प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान कर रहा था। 1919 ई. के प्रथम अवज्ञा आंदोलन की असफलता, जलियांवाला कांड तथा भगतसिंह को प्रदत्त मृत्युदंड जैसी घटनाओं से जनता का मनोबल कम नहीं हुआ था, साइमन कमीशन के बहिष्कार तथा नमक-कानून-भंग सदृश जन-आंदोलनों से इसी तथ्य की पुष्टि होती है। पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति के प्रभावस्वरूप इस युग के सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन आ गया था। युवा मन परंपरागत रीति-रिवाजों को तोड़ कर पश्चिमी राष्ट्रों के स्वतंत्र नागरिकों के समान जीवन-यापन के लिए लालायित था। सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों की जैसी स्पष्ट छाप छायावाद-युग के गद्य-साहित्य में लक्षित होती है, वैसी काव्य-साहित्य में नहीं होती। वस्तुतः आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को प्रेरणा से हिंदी-गद्य का व्याकरण सम्मत परिमार्जित रूप प्रायः स्थिर हो चुका था, फलस्वरूप समकालीन परिवेश के संदर्भ में विभिन्न गद्यविधाओं का यथार्थोन्मुख

विकास-परिष्कार स्वाभाविक था। इसलिए छायावाद-युग का गद्य-साहित्य पूर्ववर्ती युगों की तुलना में अधिक विकासशील और समृद्ध है।

नाटक

नामकरण की दृष्टि से विचार करें तो हिंदी-नाट्यसाहित्य के इस युग को 'प्रसाद-युग' कहना युक्तिसंगत होगा। यद्यपि प्रसाद जी ने सन् 1918 के पूर्व ही नाटकों की रचना आरंभ पर उनकी आरंभिक रचनाएं– सज्जन, कल्याणी-परिणय, प्रायश्चित, करुणालय, राज्यश्री आदि नाट्यकला की दृष्टि से अपरिपक्व हैं। इनके अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता हैं कि वे अपने माध्यम की खोज कर रहे थे। यह माध्यम उन्हें आलोच्य युग में प्राप्त हुआ कृ विशाख (1921), अजातशत्रु (1922), कामना (रचना 1923-24, प्रकाशन 1927), जनमेजय का नागयज्ञ (1926), स्कंदगुप्त (1928), एक चूंट (1930), चंद्रगुप्त (1931) और ध्रुवस्वामिनी (1933) शीर्षक नाट्यकृतियों के रूप में। इनके माध्यम से उन्होंने हिंदी-नाट्यसाहित्य को विशिष्ट स्तर और गरिमा प्रदान की। वस्तुतः हिंदी-उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में जो स्थान प्रेमचंद का है, नाटक के क्षेत्र में लगभग वहीं स्थान प्रसाद का है।

एकांकी नाटक

हिंदी में एकांकी नाटकों का प्रचलन विशेष रूप से विवेच्यकाल के अंतिम कुछ वर्षों में ही हुआ, यों आरंभ से ही एकांकी लिखने के छटपुट प्रयास होने लगे थे। उदाहरणस्वरूप, महेशचंद्र प्रसाद के 'भारतेश्वर का संदेश' (1918) शीर्षक पद्यबद्ध एकांकी, देवीप्रसाद गुप्त के 'उपाधि और व्याधि' (1921) तथा रूपनारायण पांडेय द्वारा अमूल्यचरण नाग के बंगला-नाटक 'प्रायश्चित' के आधार पर लिखित 'प्रायश्चित प्रहसन' (1923) का उल्लेख किया जा सकता है। ब्रिजलाल शास्त्री-कृत 'वीरांगना' (1923) में 'पद्मिनी', 'तीन क्षत्राणियां', 'पन्ना', 'तारा', 'कमल', 'पद्मा', 'कोड़मदेवी', 'किरणदेव' प्रभृति एकांकी संगृहित हैं। बदरीनाथ भट्ट के एकांकी-संग्रह 'लबड़ धो धों'(1926) में मनोरंजक प्रहसन संकलित हैं। हनुमान शर्मा-कृत 'मान-विजय' (1926), बेचन शर्मा 'उग्र' के एकांकी-प्रहसनों का संग्रह 'चार बेचारे' (1929) और प्रसाद का 'एक घूंट' (1930) भी इस काल की उल्लेखनीय रचनाएं हैं। उग्र जी ने समसामयिक परिस्थितियों का व्यंग्यपूर्ण शैली में निर्मम विश्लेषण प्रस्तुत किया

है। इस विवरण से यह स्पष्ट हैं कि एकांकी-रूप में नाटकों की रचना बहुत पहले होने लगीं थी। सच पूछे तो यह विधा हमारे लिए बिलकुल नयी नहीं थी।

उपन्यास

हिंदी उपन्यास साहित्य के संदर्भ में आलोच्य युग को 'प्रेमचंद युग' की संज्ञा लगभग निर्विवाद रूप में मिल चुकी है क्योंकि 'सेवासदन' (1918) का प्रकाशन न केवल प्रेमचंद (1880-1936) के साहित्यिक जीवन की अपितु हिंदी उपन्यास की भी एक महत्वपूर्ण घटना थी 'सेवासदन' पूर्वर्ती कथा साहित्य का अभूतपूर्व विकास था इससे पहले कथा साहित्य में या तो अजीबोगरीब घटनाओं के द्वारा कुतुहल और चमत्कार के सृष्टि रहती थी अथवा आर्य समाज और तत्समान अन्य सामाजिक आंदोलन से प्रभावित समाज-सुधारो का प्रचार ही उसकी उपलब्धि रह गई थी। सेवासदन 'के बाद प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' (1922)। 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1933) और 'गोदान' (1935 शीर्षक सात मौलिक उपन्यास प्रकाशित हुए। इस बीच उन्होंने अपने दो पुराने उर्दू उपन्यासों को भी हिंदी में रूपातंरित और परिष्कृत करके प्रकाशित किया। 'जलवए ईसार' का रूपांतर 'वरदान' 1921 में प्रकाशित हुआ तथा 'हमखुर्मा व हमसवाब' के पूर्व प्रकाशित हिंदी-रूपांतर 'प्रेमा अर्थात दो सखियों का विवाह' को परिषकृत कर उन्होंने 'प्रतिज्ञा' (1929) शीर्षक से उसे सर्वथा नये रूप में प्रकाशित कराया। एक उल्लेखनीय तथ्य यह हैं कि आरंभ में प्रेमचंद अपने उपन्यास पहले उर्दू में लिखते थे और फिर स्वयं उनका हिंदी-रूपांतर करते थे। 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' क्रमशः 'बाजारे-हुस्न' , 'गोशए-आफियत' और 'चौगाने-हस्ती' नाम से उर्दू में लिखे गये थे, किंतु प्रकाशित पहले ये हिंदी में ही हुए। वैसे, मूल रूप से हिंदी में लिखित उनका पहला उपन्यास 'कायाकल्प' है। इसके बाद उन्होंने सभी उपन्यासों की रचना हिंदी में ही की, उर्दू की बैसाखी की जरूरत उन्हें अब नहीं रह गयी थी।

कहानी

हिंदी कहानी का प्रकार और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से वास्तविक विकास विवेच्य काल में ही हुआ, यह एक निर्विवाद तथ्य है। जिस प्रकार प्रेमचंद इस काल के उपन्यास-साहित्य के एकछत्र सम्राट् बने रहे, उसी प्रकार कहानी

के क्षेत्र में भी उनका स्थान अद्वितीय रहा। इस अवधि में उन्होंने लगभग दो सौ कहानियां लिखीं। उनके कहानी-लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह हैं कि स्वयं उनकी ही कहानियों में हिंदी कहानी के विकास की प्रायः सभी अवस्थाएं दृष्टिगोचर हो जाती हैं। उनकी आरंभिक कहानियों में किस्सागोई, आदर्शवाद और सोद्देश्यता की मात्रा अधिक है। यद्यपि व्यावहारिक मनोविज्ञान का पुट दे कर मानवचरित्र के सूक्ष्म उद्घाटन की क्षमता के फलस्वरूप प्रेमचंद ने अपनी कहानियों को विशिष्ट बना दिया है . पर उनकी आरंभिक कहानियों का कच्चापन और यथार्थ की उनकी कमजोर पकड़ अत्यंत स्पष्ट है। इन कहानियों में हम एक अत्यंत प्रबुद्ध कलाकार को कहानी के सही ढांचे या शिल्प की तलाश में संघर्षरत पाते हैं।' बलिदान' (1918), 'आत्माराम' (1920), 'बूढ़ी काकी' (1921), 'विचित्र होली' (1921), 'गृहदाह' (1922), 'हार की जीत' (1922), 'परीक्षा' (1923), 'आपबीती' (1923), 'उद्धार' (1924), 'सवा सेर गेहूं' (1924), 'शतरंज के खिलाड़ी' (1925), 'माता का हृदय' (1925), 'कजाकी' (1926), 'सुजान भगत' (1927), 'इस्तीफा' (1928), 'अलग्योझा' (1929), 'पूस की रात' (1930), 'तावान' (1931), 'होली का उपहार' (1931), 'ठाकुर का कुआँश(1932), 'कफनश(1936) आदि कहानियो में इस तलाश की रेखायें स्पष्ट देखी जा सकती हैं।

इस काल के दूसरे प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद। यद्दपि उनकी पहली कहानी 'ग्राम' सन् 1911 में ही 'इंदु' में छप चुकी थी, तथापि उनके महत्त्वपूर्ण कहानी-संग्रह 'प्रतिध्वनि' (1926), 'आकाशदीप' (1929), 'आंधी' (1931), 'इंद्रजाल' (1936) आदि विवेच्य काल से ही प्रकाश में आये। कहानी-लेखक के रूप में उनकी प्रकृति प्रेमचंद से बिलकुल अलग है। जहां प्रेमचंद का रुझान जीवन के चारों ओर फैले यथार्थ में था, वहीं प्रसाद रूमानी स्वभाव के व्यक्ति थे। उनकी कहानियों में जीवन के सामान्य यथार्थ को कम और स्वर्णिम अतीत के गौरव, मसृण भावुकता, कल्पना की ऊंची उड़ान तथा काव्यात्मक चित्रण को अधिक महत्त्व मिला है। उनकी कुछ कहानियां तो आधुनिक कहानी की तुलना में संस्कृत-गद्यकाव्य के निकट हैं।

राष्ट्रीय- सांस्कृतिक काव्यधाराएँ

हिंदी साहित्य में छायावाद का प्रवर्तन द्विवेदी युग के अवसान के साथ-साथ हो गया था। छायावादी काव्य प्रवृत्ति के कुछ सूत्र दो-तीन कवियों

की रचनाओं में देखे जा सकते हैं, उनका उल्लेख हमने छायावाद शीर्षक प्रकरण में किया है। छायावाद युग के समकालीन कुछ ऐसे कवि हैं, जिन्होंने विभिन्न विषयों की मुक्तक रचनाएँ प्रस्तुत कर अपनी पहचान छायावाद से पृथक् बनायी। काल की दृष्टि से उनका समय अवश्य छायावाद की सीमा में आता है। भाव और अभिव्यंजना शिल्प की दृष्टि से उन्हें छायावादी कवि नहीं कहा जा सकता। इन कवियों की रचनाओं में राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा को प्रमुख स्थान मिला है। उसका एक विशेष कारण है। सन् 1922 से 32 तक का समय अहिंसात्मक आंदोलन की दृष्टि से राष्ट्रीय जागरण का काल था। ब्रिटिश शासन की दासता से मुक्ति पाने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस महात्मा गाँधी के नेतृत्व में एक देशव्यापी आन्दोलन चला रही थी और उसका प्रभाव देश की सभी भाषाओं के रचनाकारों पर पड़ रहा था। हिन्दी में भी उस समय ऐसे अनेक कवि उत्पन्न हुए जिन्होंने राजनीति तथा भारतीय संस्कृति को केन्द्र में रखकर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। राजनीतिक जन जागरण के क्षेत्र में इन कवियों का योगदान सदैव स्मरण किया जायेगा। द्विवेदी युग के कवियों की चर्चा में हमने ऐसे कई कवियों के नाम संकेतित किये हैं, जिन्होंने छायावाद युग में रहते हुए भी युगधर्म के साथ विशिष्ट आन्दोलनों को ध्यान में रखकर, देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखीं।

उनमें प्रमुख हैं– माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नविन, सुभद्राकुमारी चौहान, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, रामधारी सिंह दिनकर, उदयशंकर भट्ट आदि।

माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968)– श्री चतुर्वेदी का जन्म 1889 ई. में मध्यप्रदेश के होशंगाबाद के गांव बावई में हुआ था। इनके पिता अध्यापक थे और इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई। शैशव से ही कविता के प्रति इनका लगाव हो गया था। वैष्णव संस्कार वाले परिवार में पूजा-पाठ आदि का प्रचलन था इसलिए चतुर्वेदीजी भी प्रेमसागर जैसी पुस्तकें बचपन से ही पढ़ने लगे थे। युवा होने पर एक स्कूल में अध्यापक हो गये किन्तु स्वतन्त्रचेतना कवि होने के कारण उनका स्कूल की अध्यापकी में मन नहीं लगा और त्यागपत्र देकर पत्रकारिता के क्षेत्र कूद गये। पहले प्रभा नामक एक मासिक पत्र के सम्पादकीय विभाग में काम उसके बाद प्रताप तथा कर्मवीर में लम्बे अरसे तक सम्पादन कार्य से संबंद्ध इन्होंने अपना उपनाम 'एक भारतीय आत्मा 'रखा जो कि उपनाम की परम्परा से कुछ हटकर था। उनकी लोकप्रिय कविता है पुष्प की अभिलाषा–

-'चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं,
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि, डाला जाऊं,
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ू, भाग्य पर इठलाऊं
मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर
अनेक।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (1887-1960)– नवीन का जन्म 1897 ई . में ग्वालियर राज्य के भयाना गाँव में हुआ था। हाईस्कूल की परीक्षा पास करने के बाद ये गणेशशंकर विद्यार्थी के पास गये और उन्होंने इनको कॉलेज में दाखिल करा दिया। सन् 1921 के गाँधीजी के आह्वान पर कॉलेज छोड़कर राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे। विद्यार्थीजी के पत्र 'प्रताप' में सह-सम्पादक का कार्य भी किया और छात्र-जीवन से ही राजनीतिक विषयों पर लेख, कविता आदि लिखना प्रारम्भ किया। लम्बे समय तक राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने के कारण इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। वहाँ भी उन्होंने अपना काव्य-प्रेम अक्षुण्ण रखा और फुटकर कविताएँ लिखते रहे। इनका पहला कविता संग्रह कुंकुम 1935 में प्रकाशित हुआ। इन्होंने एक उर्मिला शीर्षक काव्य भी लिखा था जो बहुत वर्षों तक तक अप्रकाशित पड़ा रहा। इस काव्य में उन्होंने युगानुरूप कुछ सन्दर्भ जोड़ने का प्रयास किया है। उर्मिला के चरित्र के माध्यम से भारत की प्राचीन संस्कृति को नवीन परिवेश में प्रस्तुत करने का उनका प्रयास स्तुत्य है। उनकी रचनाओं में प्रणय और राष्ट्र प्रेम दोनों भावों की अभिव्यक्ति हुई है। उनके अन्य प्रमुख ग्रंथों के नाम हैं अपलक, रश्मि रेखा, हम विषपायी जन्म के आदि।

जयशंकर भटट(1898-1961)– उदयशंकर भट्ट (1898-1961)– श्री भट्ट का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले के कर्णवास गाँव में सन् 1898 ई . को हुआ था। छायावादी कविता के उत्कर्ष काल में भट्टजी ने कविता के क्षेत्र में पदार्पण किया। उनका प्रारम्भिक रचनाओं में छायावादी काव्य शिल्प और भाव का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। राका, मानसी, विसर्जन, युगदीप, अमृत और विष आदि कविता संग्रहों में इनकी वैयक्तिक अनुभति की सूक्ष्मता, प्रकृति के मानवीकरण की योजना, अभिव्यक्ति के लिए लक्षणा और व्यंजना का सार्थक प्रयोग भट्टजी के काव्य की विशेषता है। भाव नाट्य के क्षेत्र में भी भट्टजी की रचना विश्वामित्र और दो भाव नाट्य

उच्चकोटि की रचनाएँ हैं। भट्टजी के परिवार की भाषा गुजराती थी। उनकी जन्मस्थली ब्रजमण्डल में होने के कारण इन पर ब्रजी का भी प्रभाव था। संस्कृत के अध्येता और अध्यापक होने के कारण उनकी रचनाओं में तत्सम पदावली का लावण्य और माधुर्य पाया जाता है। इनका निधन 1961 ई. में दिल्ली में हुआ।

रामधारी सिंह दिनकर(1908 से 1974)– रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 1908 ई. में बिहार के सिमरिया गांव जिला में हुआ। बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद में इन्हें पारिवारिक परिस्थितियों के कारण सरकारी नौकरी करनी पड़ी। सीतामढ़ी में सब-रजिस्ट्रार के पद पर लम्बे अरसे तक कार्य किया। भारत के स्वतन्त्र होने पर बारह वर्ष तक संसद-सदस्य (राज्य सभा) रहे। एक वर्ष तक भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर कार्य करने के बाद भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार के रूप में छः वर्ष तक कार्य करते रहे। मूलतः दिनकर कवि थे किन्तु गद्य के क्षेत्र में भी इन्होंने इतिहास, निबन्ध, समीक्षा आदि पर पुस्तकें लिखीं। छायावादोत्तर कवियों में, जिन्हें हमने छायावादी समकालीन कवि कहा है, दिनकर का स्थान मूर्धन्य पर है। उन्होंने स्वयं लिखा हैं कि मैं छायावाद की ठीक पीठ पर आये कवियों में हूँ। छायावाद की व्यंजनात्मक उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए उन्होंने भाव और विचार के क्षेत्र में अपनी नयी भूमिका प्रस्तुत की। राष्ट्रीय चेतना के उद्बोधक गीत लिखकर जो ख्याति चौथे दशक में दिनकर को प्राप्त हुई वैसी किसी अन्य कवि को नहीं मिली। मेरे नगपति मेरे विशाल हिमालय को सम्बोधित उनकी प्रसिद्ध कविता है। 'दिनकर के काव्य में जीवन और समाज का तात्कालिक परिवेश देखा जा सकता है। यह ठीक हैं कि राष्ट्रीय और सांस्कृतिक विषयों में गहरी रुचि होने के साथ ही वे छायावादी भंगिमा को छोड़ नहीं सके थे। उन्होंने बड़ी कुशलता से छायावादी काव्यधारा के अभिव्यंजना पक्ष को सरलीकृत रूप में प्रस्तुत कर, अपनी पृथक् पहचान बनायी राष्ट्रीय कविताओं के प्रति उनका प्रेम जिन परिस्थितियों में संवेदना के मार्मिक संस्पर्श से उद्वेलित हुआ था उसका एक विशेष कारण था।

प्रेम और मस्ती का काव्य

प्रस्तुत काल के काव्य में छायावादी रचनाएं इतनी प्रौढ़ और शक्तिशाली हैं कि प्रायः इस काल का विवेचन करते हुए आलोचकों का ध्यान केवल छायावादी काव्य धारा में ही केंद्रित होकर रह जाता है। इसका परिणाम यह होता हैं कि इस काल के कवि जो पूरी तरह से छायावाद के अंतर्गत नहीं आ पाते,

उपेक्षित से हो जाते हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल आदि की प्रणयमूलक वैयक्तिक कविताओं का अध्ययन इसी सन्दर्भ में अपेक्षित हैं और यौवन की प्रखरता तथा आवेश को व्यक्त करने वाली इनकी अधिकांश काल में प्रकाशित हुई। तथापि इस दिशा में इनका आरम्भिक कृतित्त्व छायावाद युग में ही प्रकाश में आया। फलस्वरूप आलोच्य युग की इस काव्यधारा पर यहां संक्षेप में विचार कर लेना युक्तियुक्त होगा। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन 'ने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य की रचना की है, किन्त उनकी सम्बन्धी रचनाएं भी महत्वपूर्ण हैं। यह कहा जा सकता हैं कि प्रणय और यौवन का छायावादी काव्य में बड़ी तल्लीनता के साथ किया गया है, इसलिए इन कवि, कवियों को स्वतन्त्र रूप से प्रेम और मस्ती की काव्यधारा के अन्तर्गत रखने का क्या आधार है? उत्तर स्पष्ट है, छायावादी कवियों में प्रणय का महत्त्व सीमित है। इस दृष्टि से प्रसाद का 'आंसू' काव्य छायावादी प्रणय-भावना के दोनों रूपों को मांसल वासनात्मक रूप को और उदात्त करुणा के रूप को व्यक्त करता है। 'कामायनी' में श्रद्धा, जो कामगोत्रजा है और प्रेम का संदेश सुनाने के लिए अवतरित हुई है, एक सीमा तक ही लौकिक प्राणी की आलंबन रहती है और अंत में उसी की रागात्मिका वृति का संमबल पाकर मनु आनंद-आनंद लोक तक पहुंचते हैं। नराला के 'तुलसीदास' में भी प्रणय के इस सामान्य लौकिक रूप का निषेध कर राग बोध को एक उदास आध्यात्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास है।

छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ

छायावादी काव्य का विश्लेषण करने पर हम उसमें निम्नांकित प्रवृत्तियां पाते हैं –

वैयक्तिकता

छायावादी काव्य में वैयक्तिकता का प्राधान्य है। कविता वैयक्तिक चिंतन और अनुभूति की परिधि में सीमित होने के कारण अंतर्मुखी हो गई, कवि के अहम् भाव में निबद्ध हो गई। कवियों ने काव्य में अपने सुख-दु:ख, उतार-चढ़ाव, आशा-निराशा की अभिव्यक्ति खुल कर की। उसने समग्र वस्तुजगत को अपनी भावनाओं में रंग कर देखा। जयशंकर प्रसाद का 'आंसू' तथा सुमित्रा नंदन पंत के 'उच्छवास' और 'आंसू' व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति के

सुंदर निदर्शन हैं। इसके व्यक्तिवाद के स्व में सर्व सन्निहित है।डॉ. शिवदान सिंह चौहान इस संबंध में अत्यंत मार्मिक शब्दों में लिखते हैं–''कवि का मैं प्रत्येक प्रबुद्ध भारतवासी का मैं था, इस कारण कवि ने विषयगत दृष्टि से अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जो लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत रचना शैली अपनाई, उसके संकेत और प्रतीक हर व्यक्ति के लिए सहज प्रेषणीय बन सके।'' छायावादी कवियों की भावनाएं यदि उनके विशिष्ट वैयक्तिक दु:खों के रोने-धोने तक ही सीमित रहतीं, उनके भाव यदि केवल आत्मकेंद्रित ही होते तो उनमें इतनी व्यापक प्रेषणीयता कदापि न आ पाती। निराला ने लिखा है-

मैंने मैं शैली अपनाई,
देखा एक दु:खी निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में
झट उमड़ वेदना आई

इससे स्पष्ट हैं कि व्यक्तिगत सुख-दु:ख की अपेक्षा अपने से अन्य के सुख-दुख की अनूभूति ने ही नए कवियों के भाव-प्रवण और कल्पनाशील हृदयों को स्वच्छंदतावाद की ओर प्रवृत्त किया।

प्रकृति-सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना

छायावादी कवि का मन प्रकृति चित्रण में खूब रमा है और प्रकृति के सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना छायावादी कविता की एक प्रमुख विशेषता रही है। छायावादी कवियों ने प्रकृति को काव्य में सजीव बना दिया है। प्रकृति सौंदर्य और प्रेम की अत्यधिक व्यंजना के कारण ही डॉ. देवराज ने छायावादी काव्य को 'प्रकृति-काव्य' कहा है। छायावादी काव्य में प्रकृति-सौंदर्य के अनेक चित्रण मिलते हैं, जैसे 1. आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण 2. उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण 3. प्रकृति का मानवीकरण 4. नारी रूप में प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन 5. आलंकारिक चित्रण 6. प्रकृति का वातावरण और पृष्ठभूमि के रूप में चित्रण 7. रहस्यात्मक अभिव्यक्ति के साधन के रूप में चित्रण।

प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि छायावाद के सभी प्रमुख कवियों ने प्रकृति का नारी रूप में चित्रण किया और सौंदर्य व प्रेम की अभिव्यक्ति की। पंत की कविता का एक उदाहरण देखिए-

बांसों का झुरमुट

संध्या का झुटपुट
हैं चहक रहीं चिड़ियां
टी वी टी टुट् टुट्

छायावादी कवि के लिए प्रकृति की प्रत्येक छवि विस्मयोत्पादक बन जाती है। वह प्राकृतिक सौंदर्य पर विमुग्ध होकर रहस्यात्मकता की ओर उन्मुख हो जाता है–

मैं भूल गया सीमाएं जिससे
वह छवि मिल गई मुझे

छायावादी कवि ने निजी अनुभूतियों का व्यक्तिकरण प्रकृति के माध्यम से किया है, जैसे–

मैं नीर भरी दुख की बदली

छायावादी कवि सौंदर्यानुभूति से अभिभूत है। अपने आंतरिक सौंदर्य का उद्घाटन प्रकृति के माध्यम से करता हुआ दिखाई पड़ता है–

शशि मुख पर घूंघट डाले, अंचल में दीप छिपाए
जीवन की गोधूलि में, कौतूहल से तुम आए ...प्रसाद

अधिकांश छायावादी कवियों ने प्रकृति के कोमल रूप का चित्रण किया है, परंतु कहीं–कहीं उसके उग्र रूप का चित्रण भी हुआ है।

शृंगारिकता

छायावादी काव्य में शृंगार–भावना की प्रधानता है, परंतु यह शृंगार रीतिकालीन स्थूल एवं ऐन्द्रिय शृंगार से भिन्न है। छायावादी शृंगार–भावना मानसिक एवं अतीन्द्रिय है। यह शृंगार–भावना दो रूपों में अभिव्यक्त हुई है– 1. नारी के अतीन्द्रिय सौंदर्य चित्रण द्वारा 2. प्रकृति पर नारी–भावना के आरोप के माध्यम से। पंत और प्रसाद ने अछूती कल्पनाओं की तूलिका से नारी के सौंदर्य का चित्रण किया है। एक उदाहरण देखिए–

तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणी
त्रिवेणी की लहरों को गान

नारी का अतीन्द्रिय सौंदर्य चित्रण प्रसाद जी द्वारा श्रद्धा के सौंदर्य में द्रष्टव्य है–

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघवन बीच गुलाबी रंग।

निराला की 'जुही की कली' कविता में दूसरे प्रकार की श्रृंगार–भावना का चित्र है। प्रसाद ने 'कामायनी' में सौंदर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान माना है। इस प्रकार छायावादी श्रृंगार–भावना और उसके सभी उपकरणों(नारी, सौंदर्य, प्रेम) का चित्रण सूक्ष्म एवं उदात्त है। उसमें वासना की गंध बहुत कम है।

छायवादी कवि को प्रेम के क्षेत्र में जाति, वर्ण, सामाजिक रीति–नीति, रुढ़ियां और मिथ्या मान्यताएं मान्य नहीं हैं, निराला जी लिखते हैं–

दोनों हम भिन्न वर्ण, भिन्न जाति, भिन्न रूप।
भिन्न धर्म भाव, पर केवल अपनाव से प्राणों से एक थे।

इनके प्रेम चित्रण में कोई लुकाव–छिपाव–दुराव नहीं है। उसमें कवि की वैयक्तिकता है। इनकी प्रणय गाथा का अंत प्रायः दुःख, निराशा तथा असफलता में होता है। अतः उसमें मिलन की अनुभूतियों की अपेक्षा विरहानुभूतियों का चित्रण अधिक हुआ है और इस दिशा में उन्हें आशातीत सफलता भी मिलीय पंत के शब्दों में–

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह अहह कराहते इस शब्द को
किसी कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोंक से
निठुर विधि ने आंसुओं से है लिखा

रहस्यानुभूति

छायावादी कवि को अज्ञात सत्ता के प्रति एक विशेष आकर्षण रहा है। वह प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में इसी सत्ता के दर्शन करता है। उसका इस अंनत के प्रति प्रमुख रूप से विस्मय तथा जिज्ञासा का भाव है। लेकिन उनका रहस्य जिज्ञासामूलक है, उसे कबीर और दादू के रहस्यवाद के समक्ष खड़ा नहीं किया जा सकता। निराला तत्त्व ज्ञान के कारण, तो पंत प्राकृतिक सौंदर्य से रहस्योन्मुख हुए। प्रेम और वेदना ने महादेवी को रहस्योन्मुख किया तो प्रसाद ने उस परमसत्ता

को अपने बाहर देखा। यद्यपि महादेवी में अवश्य ही रहस्य-साधना की दृढ़ता दिखाई पड़ती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, ''कवि उस अनंत अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से अभिव्यंजना करते हैं। ...तथा छायावाद का एक अर्थ रहस्यवाद भी है। अतः सुधी आलोचक रहस्यवाद को छायावाद का प्राण मानते हैं।'' छायावादी कवियों की कुछ रहस्य अनुभूतियों के उदाहरण देखिए-

हे अनंत रमणीय कौन तुम!
यह मैं कैसे कह सकता!
कैसे हो, क्या हो इसका तो
भार विचार न सह सकता?-प्रसाद
प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं
तुम मुझ में फिर परिचय क्या! --महादेवी
प्रथम रश्मि का आना रंगिणि
तुने कैसे पहचाना? -- पंत

किस अनंत का नीला अंचल हिला-हिलाकर आती तुम सजी मंडलाकर -- निराला

तृणवीरुध लहलहे हो किसके रस से सिंचे हुए --प्रसाद

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है-- महादेवी

तत्त्व चिंतन

छायावादी कविता में अद्वैत-दर्शन, योग-दर्शन, विशिष्टाद्वैत-दर्शन, आनंदवाद आदि के अंतर्गत दार्शनिक चिंतन भी मिलता है। प्रसाद का मूल दर्शन आनंदवाद है तो महादेवी ने अद्वैत, सांख्य एवं योग दर्शन का विवेचन अपने ढ़ग से किया है।

वेदना और करुणा की विवृत्ति

छायावादी कविता में वेदना की अभिव्यक्ति करूणा और निराशा के रूप में हुई है। हर्ष-शोक, हास-रुदन, जन्म-मरण, विरह-मिलन आदि से उत्पन्न विषमताओं से घिरे हुए मानव-जीवन को देखकर कवि हृदय में वेदना और करुणा उमड़ पड़ती है। जीवन में मानव-मन की आकांक्षाओं और अभिलाषाओं की

असफलता पर कवि-हृदय क्रन्दन करने लगता है। छायावादी कवि सौंदर्य प्रेमी होता है, किंतु सौंदर्य की क्षणभंगुरता को देख उसका हृदय आकुल हो उठता है। हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति की अपूर्णता, अभिलाषाओं की विफलता, सौंदर्य की नश्वरता, प्रेयसी की निष्ठुरता, मानवीय दुर्बलताओं के प्रति संवेदनशीलता और प्रकृति की रहस्यमयता आदि अनेक कारणों से छायावादी कवि के काव्य में वेदना और करुणा की अधिकता पाई जाती है। प्रसाद ने 'आंसू' में वेदना को साकार रूप दिया है। पंत तो काव्य की उत्पत्ति ही वेदना को मानते हैं–

वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान।
उमड़ कर आंखों से चुपचाप, बही होगी कविता अजान।

महादेवी तो पीड़ा में ही अपने प्रिय को ढूंढ़ती हैं–

तुमको पीड़ा में ढूंढ़ा, तुममें ढूंढूंगी पीड़ा।

और पंत जी कहते हैं–

चिर पूर्ण नहीं कुछ जीवन में
अस्थिर है रूप जगत का मद।

संसार में दुख और वेदना को देखकर छायावादी कवि पलायनवादी भी हुआ। वह इस संसार से ऊब चुका है और कहीं ओर चला जाना चाहता है। इसका मुख्य कारण यह हैं कि वह इस संसार में दुख ही दुख देखता है, यहां सर्वत्र सुख का अभाव दृष्टिगोचर होता है। इस विषय में कवि पंत की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है।-

यहां सुख सरसों, शोक सुमेरु
अरे जग है, जग का कंकाल
वृथा रे, यह अरण्य चीत्कार
शांति, सुख है उस पार

निराला भी जग के उस पार जाना चाहते हैं। प्रसाद भी अत्यंत प्रसिद्ध गीत में नाविक से इस कोलाहलपूर्ण संसार से दूर चलने का अनुरोध करते हैं।

मानवतावादी

दृष्टिकोण– छायावादी काव्य भारतीय सर्वात्मवाद तथा अद्वैतवाद से गहरे रूप से प्रभावित हुआ। इस काव्य पर रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गांधी, टैगोर तथा अरविंद के दर्शन का भी काफी प्रभाव रहा। स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के कारण छायावादी कवि को साहित्य के समान धर्म, दर्शन आदि में भी रुढ़ियों एवं मिथ्या

परम्पराएं मान्य नहीं हैं। रविंद्रनाथ ठाकुर, जो बंगला साहित्य में मानवतावाद का उद्घोष पहले ही कर चुके थे, का प्रभाव छायावादी कवियों पर भी रहा। छायावादी कवि सारे संसार से प्रेम करता है। उसके लिए भारतीय और अभारतीय में कोई भेद नहीं क्योंकि सर्वत्र एक ही आत्मा व्याप्त है। विश्वमानवता की प्रतिष्ठा उसका आदर्श है।

नारी के प्रति नवीन

दृष्टिकोण– नारी के प्रति छायावाद ने सर्वथा नवीन दृष्टिकोण अपनाया है। यहां नारी वासना की पूर्ति का साधन नहीं है, यहां तो वह प्रेयसी, जीवन-सहचरी, मां आदि विविध रूपों में उतरी है। उसका मुख्य रूप प्रेयसी का ही रहा है। यह प्रेयसी पार्थिव जगत की स्थूल नारी नहीं है, वरन कल्पना लोक की सुकुमारी देवी है। नारी के संबंध में प्रसाद जी कहते हैं-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास-रजत-नग-पगतल में
पीयूष-स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में

छायावादी कवि ने युग-युग से उपेक्षित नारी को सदियों की कारा से मुक्त करने का स्वर अलापा। छायावादी कवि कह उठता है-'मुक्त करो नारी को, युग-युग की कारा से बंदिनी नारी को।'

निसंदेह छायावाद ने नारी को मानवीय सहृदयता के साथ अंकित किया है। पंत की प्रसिद्ध पंक्ति है–'देवि मां सहचरि प्राण!!!' प्रसाद ने नारी को आदर्श श्रद्धा के रूप में देखा जो रागात्मक वृत्ति की प्रतीक है और मनुष्य को मंगल एवं श्रेय के पथ पर ले जाने वाली है। निराला नारी की यथार्थ स्थिति को काफी पहचान कर उसे चित्रित करते हैं। उन्होंने विधवा को इष्ट देव के मंदिर की पूजा कहा। इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई मजदूरनी का चित्र खिंचा, तुलसी की पत्नी रत्नावली का चित्रण रीतिकालीन नारी विषयक धारणा को तोड़नेवाली के रूप में किया।

आदर्शवाद

छायावाद में आंतरिकता की प्रवृत्ति की प्रधानता है। उसमें चीजों के बाह्य स्थूल रूप चित्रण की प्रवृत्ति नहीं है। अपनी इस अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कारण उनका

दृष्टिकोण काव्य के भावजगत और शैली में आदर्शवादी रहा। उसे स्थूलता के चित्रण की बजाय अपनी अनुभूतियां अधिक यथार्थ लगीं हैं। यही कारण हैं कि उसका काव्य संबंधी दृष्टिकोण कल्पनात्मक रहा और उसमें सुंदर तत्त्व की प्रधानता बनी रही। छायावादी कवि के इस आदर्शवादी, कल्पनात्मक दृष्टिकोण को उसके कला पक्ष में भी सहज ही देखा जा सकता है।

स्वच्छंदतावाद

छायावादी कवि ने अहंवादी होने के कारण विषय, भाव, कला, धर्म, दर्शन और समाज के सभी क्षेत्रों में स्वछंदतावादी प्रवृत्ति को अपनाया। उसे अपने हृदयोदगार को अभिव्यक्त करने के लिए किसी प्रकार का शास्त्रीय बंधन और रुढ़ियां स्वीकार नहीं हैं। भाव-क्षेत्र में भी उसने इसी क्रांति का प्रदर्शन किया। उसमें 'मैं' की शैली अपनाई, हालांकि उसके 'मैं' में समूचा समाज सन्निहित है। अब छायावादी कवि के लिए प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक दिशा का मार्ग उन्मुक्त था। छायावादी कवि के लिए कोई भी वस्तु काव्य-विषय बनने के लिए उपयुक्त थी। इसी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के फलस्वरूप छायावादी काव्य में सौंदर्य और प्रेम चित्रण, प्रकृति-चित्रण, राष्ट्रप्रेम, रहस्यात्मकता, वेदना और करुणा, वैयक्तिक सुख-दु:ख, अतीत प्रेम, कलावाद, प्रतीकात्मकता और लाक्षणिकता, अभिव्यंजना आदि सभी प्रवृत्तियां मिलती हैं। उसे पुरानी पिटी-पिटाई राहों पर चलना अभिप्रेत नहीं है। संक्षेप में कह सकते हैं कि छायावाद वैयक्तिक रुचि-स्वातंत्र्य का युग है।

देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना

राष्ट्रीय जागरण की क्रोड़ में पलने-पनपने वाला स्वच्छंदतावादी छायावाद साहित्य यदि रहस्यात्मकता और राष्ट्र प्रेम की भावनाओं को साथ-साथ लेकर चला है, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सच तो यह हैं कि राष्ट्रीय जागरण ने छायावाद के व्यक्तिवाद को असामाजिक पथों पर भटकने से बचा लिया। छायावादी कवि में आंतरिकता की कितनी भी प्रधानता क्यों न हो वह अपने युग से निश्चित रूप से प्रभावित हुआ। यही कारण हैं कि जयशंकर प्रसाद पुकार उठते हैं–

अरुण यह मधुमय देश हमारा ...

या

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
माखन लाल चतुर्वेदी कह उठते हैं–
मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।

12. प्रतीकात्मकता– प्रतीकात्मकता छायावादियों के काव्य की कला पक्ष की प्रमुख विशेषता है। प्रकृति पर सर्वत्र मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया और उसका संवेदनात्मक रूप में चित्रण किया गया, इससे यह स्वतंत्र अस्तित्त्व और व्यक्तित्त्व से विहींन हो गई और उसमें प्रतीकात्मकता का व्यवहार किया गया। उदाहरणार्थ, फूल सुख के अर्थ में, शूल दुख के अर्थ में, उषा प्रफुल्लता के अर्थ में, संध्या उदासी के अर्थ में, झंझा–झकोर गर्जन मानसिक द्वन्द्व के अर्थ में, नीरद माला नाना भावनाओं के अर्थ में प्रयुक्त हुए। दार्शनिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना एवं प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं के अंकन में भी इस प्रतीकात्मकता को देखा जा सकता है।

चित्रात्मक भाषा एवं लाक्षणिक पदावली

अन्य अनुपम विशिष्टताओं के अतिरिक्त केवल चित्रात्मक भाषा के कारण हिंदी वांग्मय में छायावादी काव्य को स्वतंत्र काव्य धारा माना जा सकता है। कविता के लिए चित्रात्मक भाषा की अपेक्षा की जाती है और इसी गुण के कारण उसमें बिम्बग्राहिता आती है। छायावादी कवि इस कला में परम विदग्ध हैं।' छायावादी काव्य में प्रसाद ने यदि प्रकृति तत्त्व को मिलाया, निराला ने उसे मुक्तक छंद दिया, पंत ने शब्दों को खराद पर चढ़ाकर सुड़ौल और सरस बनाया तो महादेवी ने उसमें प्राण डाले, उसकी भावात्मकता को समृद्ध किया।' प्रसाद की निम्नांकित पंक्तियों में भाषा की चित्रात्मकता की छटा देखते ही बनती है–

शशि मुख पर घूंघट डाले, अंचल में दीप छिपाए।
जीवन की गोधूलि में, कौतूहल से तुम आए।

छायावादी कवि ने सीधी सादी भाव संबंधित भाषा से लेकर लाक्षणिक और अप्रस्तुत–विधानों से युक्त चित्रमयी भाषा तक का प्रयोग किया और

कदाचित इस क्षेत्र में उसने सर्वाधिक मौलिकता का प्रदर्शन किया। छायावादी कवि ने परम्परा-प्राप्त उपमानों से संतुष्ट न होकर नवीन उपमानों की उद्‌भावना की। इसमें अप्रस्तुत-विधान और अभिव्यंजना-शैली में शतशः नवीन प्रयोग किए। मूर्त में अमूर्त का विधान उसकी कला का विशेष अंग बना। निराला जी विधवा का चित्रण करते हुए लिखते हैं- 'वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी'। यही कारण हैं कि छायावादी काव्यधारा के पर्याप्त विरुद्ध लिखने वाले आलोचक रामचंद्र शुक्ल को भी लिखना पड़ गया कि 'छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्य शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें संदेह नहीं।' इसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त-प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संगठित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी। उन्होंने पंत काव्य के कुछ उदाहरण भी उपन्यस्त किए -'धूल की ढेरी में अनजान। छिपे हैं मेरे मधुमय गान। मर्म पीड़ा के हास। कौन तुम अतुल अरूप अनाम।'

गेयता

छायावादी कवि केवल साहित्यिक ही नहीं वरन संगीत का भी कुशल ज्ञाता है। छायावाद का काव्य छंद और संगीत दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि का है। इसमें प्राचीन छंदों के प्रयोग के साथ-साथ नवीन छंदों का भी निर्माण किया गया। इसमें मुक्तक छंद और अतुकांत कविताएं भी लिखी गईं। छायावादी कवि प्रणय, यौवन और सौंदर्य का कवि है। गीति-शैली उसके गृहीत विषय के लिए उपयुक्त थी। गीति-काव्य के सभी गुण-संक्षिप्तता, तीव्रता, आत्माभिव्यंजना, भाषा की मसृणता आदि उपलब्ध होते हैं। गीति-काव्य के लिए सौंदर्य-वृत्ति और स्वानुभूति के गुणों का होना आवश्यक है, सौभाग्य से सारी बातें छायावादी कवियों में मिलती हैं। दूसरी एक और बात भी हैं कि आधुनिक युग गीति-काव्य के लिए जितना उपयुक्त है उतना प्रबंध-काव्यों के लिए नहीं। छायावादी साहित्य में, प्रगीत, खंड काव्य और प्रबंध काव्य भी लिखे गए और वीर गीति, संबोध गीति, शोकगीति, व्यंग्य गीति आदि काव्य के अन्य रूप विधानों का प्रयोग किया गया। छायावादी कवियों की भाषा और छंद केवल बुद्धिविलास, वचन भंगिमा, कौशल या कौतुक वृत्ति से प्रेरित नहीं रहा बल्कि उनकी कविता में भाषा भावों का अनुसरण करती दीखती है और अभिव्यंजना अनुभूति का।

अलंकार-विधान

अलंकार योजना में प्राचीन अलंकारों के अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य के दो नवीन अलंकारों-मानवीकरण तथा विशेषणविपर्यय का भी अच्छा उपयोग किया गया है। प्राकृतिक घटनाओं प्रातः, संध्या, झंझा, बादल और प्राकृतिक चीजों सूर्य, चंद्रमा आदि पर जहां मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया है वहां मानवीकरण है। विशेषण विपर्यय में विशेषण का जो स्थान अभिधावृत्ति के अनुसार निश्चित है, उसे हटाकर लक्षणा द्वारा दूसरी जगह आरोप किया जाता है। पंत ने बच्चों के तुतले भय का प्रयोग उनकी तुतली बोली में व्यंजित भय के लिए किया है। इसी प्रकार 'तुम्हारी आंखों का बचपन खेलता जब अल्हड़ खेल।' छायावादी कवि ने अमूर्त को मूर्त और मूर्त को अमूर्त रूप में चित्रित करने के लिए अनेक नवीन उपमानों की उद्‌भावना की है, जैसे-'कीर्ति किरण सी नाच रही है' तथा 'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।' इसके अतिरिक्त उपमा, रूपक, उल्लेख, संदेह, विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति तथा व्यतिरेक आदि अलंकारों का भी सुंदर प्रयोग किया गया है।

कला कला के लिए

स्वातन्त्र्य तथा आत्माभिव्यक्ति के अधिकार की भावना के परिणामस्वरूप छायावादी काव्य में 'कला कला के लिए' के सिद्धांत का अनुपालन रहा है। वस्तु-चयन तथा उसके प्रदर्शन कार्य में कवि ने पूर्ण स्वतंत्रता से काम लिया है। उसे समाज तथा उसकी नैतिकता की तनिक भी चिंता नहीं है। यही कारण हैं कि उसके काव्य में 'सत्' और 'शिव' की अपेक्षा 'सुंदर' की प्रधानता रही है। छायावादी काव्य इस 'कला कला के लिए' के सिद्धांत में पलायन और प्रगति दोनों सन्निहित हैं। एक ओर अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कारण जहां जन-जीवन से कुछ उदासीनता है तो दूसरी ओर काव्य और समाज में मिथ्या रूढ़ियों के प्रति सबल विद्रोह भी। अतः छायावाद पर केवल पलायनवाद का दोष लगाना न्यायसंगत नहीं होगा।

अंततः डॉ. नगेन्द्र ने इस साहित्य की समृद्धि की समता भक्ति साहित्य से की है। 'इस तथ्य से कतई इनकार नहीं किया जा सकता कि भाषा, भावना एवं अभिव्यक्ति-शिल्प की समृद्धि की दृष्टि से छायावादी काव्य अजोड़ है। विशुद्ध

अनुभूतिपरक कवित्वमयता की दृष्टि से भी इसकी तुलना अन्य किसी युग के साहित्य से नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से भक्ति काल के बाद आधुनिक काल का यह तृतीय चरण हिंदी साहित्य के इतिहास का दूसरा स्वर्ण-युग कहकर रेखांकित किया जा सकता है। इस कविता का गौरव अक्षय है, उसकी समृद्धि की समता केवल भक्ति काव्य ही कर सकता है।'

5

प्रगतिवादी कविता

सुमित्रानन्दन पंत के काव्य 'युगान्त' से हम छायावाद का अंत और प्रगतिवादी स्वर का आरंभ मानते हैं। परन्तु उससे भी पहले 'निराला' की कविता 'बादल राग' में हम प्रगतिवादी चेतना का स्वर सुन सकते हैं। कवि ने बादल को 'क्रान्तिदूत' माना है, जो अपनी गर्जना से एक ओर तो छोटे-छोटे पौधों को नवरस व नवजीवन प्रदान करता है। दूसरी ओर इसकी गंभीर गर्जना को सुनकर पूंजीपति काँप उठते हैं। वे कहते हैं–

बार-बार गर्जन वर्षण है मूसलधार
हृदय थाम लेता संसार
सुन-सुन घोर वज्र हुँकार
हँसते हैं छोटे पौधे लघु भार
शस्य अपार
हिल-हिल, खिल-खिल
हाथ हिलाते, तुझे बुलाते
विप्लव रस से छोटे ही हैं शोभा पाते॥

प्रगतिवाद तक आते-आते निराला का स्वर पूंजीपति समाज के प्रति अत्यन्त उग्र हो चुका था। जिसे उन्होंने 'कुकरमुत्ता' कविता में 'गुलाब' के माध्यम से प्रकट किया है। कुकरमुत्ता कविता के उदाहरण देखिए –

''अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू रंगों आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपेटलिस्ट।''
तू हरामी खानदानी
रोज पड़ता रहा पानी

इसी प्रकार निराला की 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' आदि कविताओं में भी प्रगतिवादी स्वर मिलता है।

'युगांत' कविता में सुमित्रानन्दन पंत कहते हैं कि जो पुराना है उसे नष्ट कर दो और नवीन के लिए स्थान खाली कर दो। 'युगान्त' कविता का उदाहरण–

''गा कोकिल बरसा पावक कण,
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन॥

'युगवाणी' कविता में कवि का दृष्टिकोण मार्क्सवाद से प्रभावित है, जो शोषण करने वाले पूँजीपतियों की भर्त्सना और शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है।

हिन्दी काव्यधारा में प्रगतिवाद आते-आते कवियों की एक परिपाटी तैयार हो गयी थी जो प्रगतिवादी चेतना से युक्त काव्य की रचना कर रहे थे। इन कवियों में मुख्य रूप से केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, रांघेय राघव व शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि शामिल थे। इन कवियों ने जिन सामाजिक परिस्थितियों को देखा उनका अपने काव्य में वर्णन किया। केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी कविता 'चित्रकूट के यात्री' में भारतीय समाज की धर्मान्धता पर करारा व्यंग्य किया है–

चित्रकूट के बौड़म यात्री, सतुआ गुड़ गठरी में बांधे,
गठरी को लाठी पर साधे, लाठी को कांधे पर टांगे।
दिनभर अधरम करने वाले, पर नर को ठगने वाले।
पर सम्पत्ति को हरने वाले।

समाज में व्याप्त रंगभेद, वर्गभेद व जातिगत भेद को रांगेय राघव ने इस प्रकार व्यंग्य के साथ प्रस्तुत किया है–

जीवन भर श्रम करता कोई,
नहीं पेट भर खा पाता
और आलसी-वर्ग मजे में अधिकारों का निर्माता॥

डॉ. महेन्द्र भटनागर भी अपनी कविता टूटती शृंखला में दर्शाता हैं कि उसका तो एकमात्र उद्देश्य सर्वहारा वर्ग की दयनीय अवस्था का चित्रण करना व उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करना है–

ऐसे गीत नहीं गाने हैं।
जो गीत का साथ नहीं देंगे,
गिरते को हाथ नहीं देंगे,
निर्धन त्रस्त उपेक्षित व्याकुल
जनता के भाव नहीं लेंगे युग कवि तुमको हरगिज, हरगिज
ऐसे गीत नहीं गाने हैं।

शहरी व ग्रामीण जीवन के बीच भेद को केदारनाथ अग्रवाल ने 'युग की गंगा' में प्रकट किया है। उन्होंने जीवन की विसंगतियों और विषमताओं को उजागर करते हुए लिखा है–

शहर के छोकरे
मैले, फटे, बदबूदार वस्त्र पहने
बिना तेल कंघी के
रूखे उलझाए बाल
नंगे पैर

साम्यवाद के प्रति दृढ़ आस्था को व्यक्त करते हुए कवि ने क्रान्ति का आह्वान किया है क्योंकि साम्राज्यवाद की जड़ों को बिना क्रान्ति के उखाड़ फेंकना संभव नहीं है।

काटो काटो काटो कर लो, साइत और कुसाइत क्या है ?
मारो मारो मारो हँसिया, हिंसा और अहिंसा क्या है ?

प्रगतिवादी कवियों ने नारी को भोग्या न मानकर उसे सम्मान दिया क्योंकि नारी पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जीवन संघर्ष में साथ देती है। नारी के संबंध में सुमित्रानंदन पंत जी लिखते हैं–

योनि नहीं है रे नारी वह भी माननी प्रतिष्ठित !
उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित॥

नागार्जुन की कविता 'प्रेत का बयान' में भुखमरी के शिकार मृत्यु को प्राप्त एक अध्ययन की दशा का यथार्थ चित्रण करते हैं–

ओ रे प्रेत
कड़क कर बोले नरक के मालिक यमराज

सच-सच बतला
कैसे मरा तू
भूख से, अकाल से,
बुखार, कालाजार से

इस प्रश्न के उत्तर में प्रेत ने उत्तर दिया -

सुनिए महाराज
तनिक भी पीर नहीं
दुख नहीं दुविधा नहीं
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण
सह न सकी आँत जब पेचिश का हमला।
सुनकर दहाड़ स्वाधीन भारत के
भूखमरे स्वाभिमानी सुशिक्षक प्रेत की
रह गए निरुत्तर महामहिम नरकेश्वर॥

इसी तरह से केदारनाथ अग्रवाल ने भी अपनी कविता 'बंगाल का अकाल' में गरीबी, लाचारी, भु खमरी का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। अकाल जैसी समस्या उत्पन्न होने पर चारों तरफ जो भयावह स्थिति उत्पन्न हो जाती है उसके वर्णन में कवि का प्रगतिवादी स्वर उभर कर सामने आया है–

बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर।
धर्म, धीरज, प्राण खोकर
हो रही अनरीति बर्बर, राष्ट्र सारा देखता है।
बाप बेटा बेचता है।

प्रगतिवादी कविताओं में विद्रोह का स्वर भी दिखाई पड़ता है। यह विद्रोह की भावना राजनीति, साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध दिखायी पड़ती है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' अपनी कविता 'विप्लव गायन' में विद्रोह का आह्वान करते हैं, जिससे वर्तमान आर्थिक व्यवस्था के बंधन चरमराकर टूट जाएं व शासन व्यवस्था में परिवर्तन आ जाए -

नियम और उपनियमों के ये बंधन टूक-टूक हो जाएं
विश्वभर पोषक वीणा के सब तार-तार मूक होजाएं
शान्ति दण्ड टूटे उस महारुद्र का सिंहासन हिल थर्राए।
उसकी शोषक 'वासोच्छवास जंग के प्रांगण में घहराए।

इसी काव्यधारा में धर्म, भाग्य व ईश्वर के प्रति अनास्था का स्वर मुखरित हुआ है। प्रगतिवादी कवियों ने धर्म, आस्था व ईश्वर को पूँजीपतियों द्वारा अपनाए गए हथकण्डों में सहयोगी माना है–

युगों से देखता हूँ, स्वयं लीलायमान वह भगवान
हटा पाया है नहीं शैतान, मेरी इस धरिण से
इसलिए मैं कर रहा हूँ, आज यह विद्रोह
अगर चाहे पराजित भगवान की, सेना खड़ी हो जाए।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रगतिवादी कविता ने हर सामान्य समस्या को अभिव्यक्ति प्रदान की है क्योंकि उस समय की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने कुछ ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया जिसके फलस्वरूप उस समय के कवियों के काव्य में प्रगतिवादी स्वर उभर कर सामने आया। प्रगतिवादी स्वर गाँधीवाद का समर्थक नहीं है अपितु हिंसा में विश्वास रखता है। प्रगतिवादी कवि मानता हैं कि किसी भी क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए हिंसा का सहारा लेना कोई गलत काम नहीं। इसमें समाजवाद को महत्व दिया गया है। समाजवाद के रास्ते में आने वाली हर कठिनाई को प्रगतिवादी कवि दूर करना चाहता है इसलिए उसने इनका यथार्थ वर्णन किया है। हम देखते हैं कि हिन्दी कविता में प्रगतिवादी स्वर का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। इस प्रगतिवादी स्वर ने समाज को एक नई दिशा प्रदान की है। प्रगतिवादी स्वर मार्क्सवाद से बहुत अधिक प्रभावित था, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में नया उभार आया। देश में किसान-मजदूरों के आंदोलन तेज हुए और कांग्रेस में वामपंथी रूझान प्रभावशाली हुआ। भारत जैसे निर्धन देश की जनता के हृदय में समाजवादी विचारधारा के प्रति बहुत आकर्षण उत्पन्न हुआ। इस विचारधारा ने स्वाधीनता के स्वप्न को और अधिक सुस्पष्ट बनाया। इस प्रकार अपने सारे उतार-चढ़ाव के बावजूद प्रगतिवादी काव्यधारा हिन्दी की प्रमुख काव्यधारा बनी। जितनी व्यापक संवेदनशीलता इस काव्य में है, अन्यत्र नहीं है।

प्रगतिवादी कवि और उनकी रचनाएं

प्रगतिवादी कवियों को हम तीन श्रेणियों में रख सकते हैं– एक, वे कवि जो मूल रूप से पूर्ववर्ती काव्यधारा छायावाद से संबद्ध हैं, दूसरे, वे जो मूल रूप से प्रगतिवादी कवि हैं और तीसरे, वे जिन्होंने प्रगतिवादी कविता से अपनी काव्य-यात्रा शुरू की लेकिन बाद में प्रयोगवादी या नई कविता करने लगे।

पहले वर्ग के कवियों में सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'(विशुद्ध छायावादी), नरेन्द्र शर्मा, भगवती चरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', बच्चन की कुछ कविताएं(हालावादी कवि), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखन लाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंदश(राष्ट्रीय काव्य धारा) आदि हैं। जिन्होंने प्रगतिवादी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया। मूल रूप से प्रगतिवादी कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन', त्रिलोचन का नाम उल्लेखनीय है। गजानन माधव मुक्तिबोध, अज्ञेय, भारत भूषण अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती में भी प्रगतिवाद किसी न किसी रूप में मौजूद है, पर इन्हें प्रयोगवादी कहना ही उचित होगा।

यहां हम सभी प्रमुख प्रगतिवादी कवियों और उनकी प्रगतिवादी कृतियों का नामोल्लेख कर रहें हैं –

सुमित्रानंदन पंत(1900-1970) प्रगतिवादी रचनाएं– 1. युगांत 2. युगवाणी 3. ग्राम्या।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला (1897-1962) प्रगतिवादी रचनाएं– 1. कुकुरमुत्ता 2. अणिमा 3. नए पत्ते 4. बेला 5.अर्चना।

नरेन्द्र शर्मा(1913-1989)– 1. प्रवासी के गीत 2. पलाश-वन 3. मिट्टी और फूल 4. अग्निशस्य।

रामेश्वर शुक्ल अंचल(1915 -1996)– 1. किरण-वेला 2. लाल चुनर।

माखन लाल चतुर्वेदी(1888- 1970)– 1. मानव

रामधारी सिंह दिनकर(1908- 1974)– 1. कुरुक्षेत्र 2. रश्मिरथी 3. परशुराम की प्रतीक्षा।

उदयशंकर भट्ट(1898- 1964)– 1. अमृत और विष।

बालकृष्ण शर्मा नवीन(1897- 1960)– 1. कंकुम 2. अपलक 3. रश्मि-रेखा 4. क्वासि।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद(1907-1986)– 1. बलिपथ के गीत 2. भूमि की अनुभुति 3. पंखुरियां।

केदारनाथ अग्रवाल(1911-2000)–1. युग की गंगा 2. लोक तथा आलोक 3. फूल नहीं रंग बोलते हैं 4. नींद के बादल।

राम विलास शर्मा(1912- 2000)– 1. रूप-तरंग

नागार्जुन(1910-1998)– 1. युगधारा 2. प्यासी पथराई 3. आंखे 4. सतरंगे पंखों वाली 5.तुमने कहा था 6. तालाब की मछलियां 7. हजार-हजार बांहों वाली 8. पुरानी जूतियों का कोरस 9. भस्मासुर(खंडकाव्य)।

रांगेय-राघव(1923-1962)– 1. अजेय खंडहर 2. मेधावी 3. पांचाली 4. राह के दीपक 5.पिघलते पत्थर।

शिव-मंगल सिंह सुमन(1915- 2002)– 1. हिल्लोल 2. जीवन के गान 3. प्रलय सृजन।

त्रिलोचन(1917- 2007)– 1. मिट्टी की बात 2. धरती

प्रगतिवादी कवि नागार्जुन की जन प्रतिबद्धता

प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य की विकास यात्रा में मील का पत्थर है। पहली बार कवियों ने कविता को सामाजिक सन्दर्भों से जोड़ने की कोशिश की। वर्गीय विषमताओं से मुक्ति के स्वर प्रगतिवादी कविता की ही देन है। नागार्जुन इसी काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। यानी हिन्दी कविता जिस दौर में स्वप्निल यथार्थ के लोक से ठोस वास्तविकताओं की जमीन पर उतर रही थी- प्रगतिवाद की धूम थी, नागार्जुन का कवि व्यक्तित्त्व उसी परिवेश में आकार पा रहा था। उनकी कविता कोटि-कोटि दुखियों की व्यथा-पूरित कविता है, कोटि-कोटि दुखियों के मुक्ति-संघर्ष की कविता है। ''हिन्दी साहित्य की जीवन्त परम्परा और भारतीय जनता के साहसी अभियान के प्रतीक है– कवि नागार्जुन।''1

वस्तुतः प्रगतिवाद शब्द से अभिप्राय उस साहित्यिक प्रवृत्ति से है, जिसमें एक प्रकार की इतिहास चेतना, सामाजिक यथार्थ दृष्टि, वर्गचेतन विचारधारा, प्रतिबद्धता या पक्षधरता, परिवर्तन के लिए सजगता और एक प्रकार की भविष्योन्मुखी दृष्टि मौजूद हो। रूप के स्तर पर प्रगतिवाद एक सीधी-सहज, तेज-प्रखर, कभी-व्यंग्यपूर्ण आक्रामक काव्य-शैली का वाचक है। प्रगतिवाद का विरोध करने वाले उसकी सीमा यह बताते हैं कि वह मार्क्सवाद का साहित्यिक रूपान्तर मात्र है। परन्तु नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध जैसे समर्थ कवियों ने अपनी लोकोन्मुखी प्रतिभा से यथार्थ के नए-नए रूपों की समझ के अनुरूप प्रगतिवाद का एक समर्थ काव्य प्रवृत्ति के रूप में विकास किया है। व्यापक अर्थों में प्रगतिवाद न स्थिर मतवाद है न स्थिर काव्य रूप। उसमें निरन्तर विकास हुआ है। आज प्रगतिशीलता के व्यापक अर्थ में ऐतिहासिक चेतना, जीवनानुभवों के विस्तार, यथार्थ के मूल रूपों की समझ,

जीवनधर्मी सौन्दर्यबोध, प्रकृति बोध का उल्लेख किया जाता है, फिर भी जीवन को देखने की यथार्थवादी दृष्टि को यहाँ प्रमुखता प्राप्त है।

कवि नागार्जुन भी एक जनवादी कवि के रूप में अपने समय तथा समाज की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण करते हैं। समाज में बढ़ती बेरोजगारी, भुखमरी, गरीबी, दरिद्रता, अकाल तथा अभावभरी जिन्दगी का यथार्थ नागार्जुन की कविता में दिखाई देता है। उनकी 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविता से एक उद्धरण–

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास।

कई दिनों तक लगीं भीत पर छिपकलियों की गश्त कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

बाबा के काव्य संसार में जहाँ एक ओर 'भूखे खेतिहरों का स्वर' है तो दूसरी ओर 'गंगा मइया' के जल में पैसे ढूँढ़ते मल्लाहों के नंग–धड़ंग छोकरे भी हैं। नागार्जुन की कविता में भूख, अकाल, पेट, का क्षोभ अनेक बार व्यक्त हुआ है, उनका प्रयास हैं कि प्रथमतः जन–जन वर्ग चेतन तो बनें। बौद्धिक प्रशिक्षण से वर्ग चेतन बनाना कहीं अधिक टिकाऊ होता है, उत्पीड़ित जन का अभावजन्य भाव–विगलित चित्र खींचकर वर्ग चेतन बनाना ही श्रेयस्कर है। जिस देश में सौ में से सिर्फ दस काम में लगे हों और नब्बे बेकार हों वहाँ पेट और प्लेट तो खाली होंगे ही। आश्चर्य तो यह हैं कि भारत एक ऐसा देश है, जहाँ बेकार लोग काम–काजियों से अधिक व्यस्त होते हैं, नागार्जुन कहते हैं–

''खाली नहीं ट्राम, खाली नहीं ट्रेन, खाली नहीं माइंड, खाली नहीं ब्रेन,
खाली है हाथ, खाली है पेट, खाली है थाली, खाली है प्लेट।''3

नागार्जुन मुक्तिकामी कवि थे, अस्वतन्त्रता के सख्त विरोधी थे। 1975 में जब समस्त देश में आपातकाल की घोषणा हुई, तब कवियों, कलाकारों, बुद्धिजीवियों, समाज के विचारकों और चिन्तकों ने अपना पक्ष तय कर लिया। कुछ रचनाकार कलावादी लेखन के लिए प्रतिबद्ध हुए तो कुछ ने निम्नवर्ग की समस्याओं, उनकी कठिनाइयों और उनकी दुदर्शाओं के साथ अपने आपको जोड़ा। 'प्रतिबद्ध हूँ' नामक कविता में नागार्जुन ने समाज के शोषित, उत्पीड़ित वर्ग के साथ स्वयं को पंक्तिबद्ध किया है–

''प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त, संकुचित 'स्व' की
आपाधापी के निषेधार्थ...
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया-धसान' के खिलाफ
अन्ध-बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए
अपने आपको भी 'व्यामोह' से बारंबार उबारने की खातिर.....
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ।''4

नागार्जुन ने बहुत बड़ी संख्या में मेहनतकश लोगों की तबाह जिन्दगी और अनेक राजनीतिक संघर्षों पर कविताएँ लिखी हैं। जहाँ कहीं भी जनता शोषण, हिंसा का प्रतिकार करती है या संघर्ष करती है, वे पूरे मन से उसे समर्थन देते हैं, चाहे वह तेलंगाना विद्रोह हो, नक्सलवादी आन्दोलन हो या इमरजेंसी से मुक्त होने के लिए जनता का संघर्ष और छटपटाहट हो। देशी नहीं, विदेशी जनता के प्रति भी उनकी सहानुभूति बराबर रही है।

नागार्जुन की अनेक राजनीतिक कविताएँ किसी विशेष चिंतन पर आधारित नहीं है अपितु तीव्र 'कामनसेंस' पर आधारित हैं। किन्तु ऐसा नहीं हैं कि वे किसी विचारधारा पर विश्वास नहीं करते हैं। बहुत ही मोटे शब्दों में कहें तो उन्हें मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिशील कवि कहा जा सकता है। परमानन्द श्रीवास्तव जी के अनुसार- ''नागार्जुन की विचारधारा व्यापक अर्थ में मार्क्सवाद की ऐसी-तैसी कर सकते हैं। 'कम्प्लीटली लिबरेटेड' कुछ यों ही नहीं कहा गया है नागार्जुन को।''5

मानव मुक्ति के लिए मानसिक दासता से मुक्ति जरूरी है। वैचारिक संघर्ष भी वर्ग संघर्ष का ही हिस्सा है। इस संघर्ष के लिए नागार्जुन प्राचीन पौराणिक कथाओं, सन्दर्भों एवं चरित्रों को अपनी कविता में उतारते हैं। ये पौराणिक सन्दर्भ मिथक कथाएँ भारतीय जनमानस के संस्कार में रची बसी हैं। जनभाषा में लोक प्रचलित कला रूपों का यह उन्मेष भारतीय नवजागरण की शक्ति का बोध कराता है। सामन्तवाद-साम्राज्यवाद विरोधी हिन्दी साहित्य की धारा की यह रूपगत परम्परा है। ये काव्य-रूप नागार्जुन को सीधे हिन्दी नवजागरण की चेतना से जोड़ते हैं।

नागार्जुन की आशाओं का केंद्र जनता है, जनता में इतने गहरे विश्वास के कारण ही नागार्जुन सर्वहारा का, शोषण में पिसती हुई जनता की मुक्ति का स्वप्न देखते हैं। जनता की अदम्य शक्ति में उनका पूरा विश्वास है। जनता कष्ट में है,

तबाह है, फिर भी उसका जो चित्र उनमें प्राप्त होता है, वह उदात्त है। नागार्जुन की कविता 'शासन की बंदूक' सीधे सत्ता में संवाद करती है। इसमें जनता के अदम्य साहस की अभिव्यक्ति हुई है-

खड़ी हो गयी चाँपकर कंकालों की हूक, नभ में विपुल विराट सी शासन की बन्दूक।
उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक, जिसमें कानी हो गयी शासन की बन्दूक।
जली ठूँठ पर बैठकर गई कोकिला कूक, बाल न बाँका कर सकी शासन की बन्दूक॥

वर्तमान राजनेताओं के असली चरित्र तथा स्वार्थी राजनीति का कवि नागार्जुन ने पर्दाफाश किया है। वह यह हैं कि स्वतन्त्रता के बाद देश के सत्तालोलुप राजनेताओं ने पूँजीवादियों के साथ साँठ-गाँठ कर आम जनता को जनतन्त्र के नाम पर ठगा है, जो नेता आजादी के आन्दोलन में आग उगलते थे वे ही अब मुखिया, विधायक, तो कोई लोकसभाई बनकर जन सामान्य के बीच जाति-पाँति की राजनीति का जहर घोलते जा रहे हैं।

चुनाव-प्रक्रिया के माध्यम से राजनेता लोग भोली-भाली जनता को बहला-फुसलाकर तथा झूठे वादे करके पाँच साल तक जनता की ओर देखते तक नहीं। इस खेल में पैसों का लेन-देन आम बात हो गई है। लेकिन जनता अब इसे पहचान गई है। इसी कारण गाँव की सौ वर्ष की बुढ़िया गाँव में चुनाव प्रचार में जुटे युवक से सवाल करती हैं कि- ''तुमको केत्ता मिला है''।

नागार्जुन यह अनुभव करते हैं कि प्रजातन्त्र का मरण हुआ है, अब उसकी लाश मात्र बच निकली है। खद्दरधारी राजनीतिज्ञ उस लाश को भी बेंचकर पेट भरने को तैयार खड़े हैं। उन्होंने 'प्रजातन्त्र का होम' में इन कपटियों का इस प्रकार चित्र खींचा है-

''सामन्तों ने कर दिया प्रजातन्त्र का होम, लाश बेचने लग गए खादी पहने डोम।

खादी पहने डोम लग गए लाश बेचने, माइक गरजे, लगे जादुई ताश बेचने।

इंद्रजाल की छतरी ओढ़ी श्रीमती ने, प्रजातन्त्र का होम कर दिया सामन्तों ने॥''

नागार्जुन ने बार-बार अपने को जनकवि कहा है। उन्हें जहाँ कहीं भी शक हुआ कि इस नेता की छवि जनता के हक में नहीं जा रही है वे तुरन्त उसके

खिलाफ खड़े हो गए। ''वे जमीन से जुड़े कवि लेखक थे अपने सहज अनुभव से राजनीति और समाज की उन बारीकियों को समझ लेते थे, जिन्हें बहुतेरे बुद्धिजीवी प्राय: पोथियों से समझने की कोशिश करते हैं। वे न सिर्फ राजनीतिक घटनाक्रमों के अच्छे विश्लेषक थे, बल्कि व्यक्तियों को भी समझने में माहिर थे। वह व्यक्ति चाहे साहित्य का हो या राजनीति का।''

प्रगतिशील कवि जीवन की स्वीकृत के कवि होते हैं। जीवन धर्मी लगाव उनके यहाँ रेखांकित करने की चीज है। यह सकारात्मक दृष्टिकोण प्रगतिवाद की महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रगतिवादी कवि कठिन अंधकार और भयानक निराशा में भी एक प्रकार के सकारात्मक दृष्टिकोण को जीवित रखता है। मानवीय सम्बन्धों में समानता के पक्षधर कवि नागार्जुन इसीलिए 'हरिजन गाथा' कविता में नवजातक को गौरव प्रदान करते हैं। पत्नी के प्रति प्रेम, आकर्षण और सहानुभूति की अभिव्यक्ति भी उनकी कविता में इसी समानता के विवेक से आलोकित है। नागार्जुन ने स्त्री प्रेम के बारे में बड़े आदर से लिखा-

''कर गई चाक.. तिमिर का सीना।. जोत की फाँक.. यह तुम थी।''

प्रगतिवाद में प्रकृति और परिवेश के प्रति कवि का लगाव भी ध्यान आकृष्ट करता है। यहाँ प्रकृति बोध भी यथार्थ बोध, सामाजिक वास्तविकता के अनुभव से विच्छिन्न नहीं है। नागार्जुन की 'धूप सुहावन' कविता में प्रकृति में जो धूप सुहावन है वह गरीबी का तीखा चित्र उपस्थित करने वाली है। दो स्थितियों का यह तनाव महत्वपूर्ण है। इसी से कविता बड़ी बनती है। वस्तुत: नागार्जुन की कविताएँ धूल-मिट्टी में सने निश्छल लोगों के प्रति एक उतने ही निश्छल हृदय की कविताएँ हैं। बिरला ही कोई कवि होगा जिसकी कविताओं में जीवन के कार्य व्यापार में रचे-बसे सच्चे और वास्तविक लोगों की इतनी सहज और साधिकार उपस्थित हो। स्पष्ट हो, सामान्य जन-जीवन की ये छवियाँ नागार्जुन की कविता को जन-संवेद्य बनाने में प्रभावी योग देती है-

''पूस मास की धूप सुहावन फटी दरी पर बैठा है चिर रोगी बेटा
राशन के चावल के कंकड़ बिन रही पत्नी बेचारी गर्भ भार से आलस शीतल है अंग-अंग।''

नागार्जुन की कविताओं की शिल्पगत संरचना बहुत वैविध्यपूर्ण है। उनकी राजनीतिक कविताओं में व्यंग्य की जो तीखी धार है उसे लक्ष्य करते हुए नामवर सिंह ने उन्हें कबीर के बाद हिन्दी का सबसे बड़ा व्यंग्यकार माना है। नागार्जुन के व्यंग्य के विषय ही नहीं- काव्य-रूप भी विविध हैं। उदाहरणस्वरूप लोक

धुनों पर आधारित रचे गए व्यंग्य यथा- ''दस हजार, दस लाख मरें, पर झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

कुछ हो, कांग्रेसी शासन का डण्डा ऊँचा रहे हमारा।''

वस्तुतः नागार्जुन के काव्य का कोई एक रूप नहीं है। इस देश की भौगोलिक, सांस्कृतिक विभिन्नताओं की तरह ही उनके अनेकों काव्य रूप हैं। दोहे, गीत, छंदबद्ध कविता, मुक्तक और विभिन्न लोक धुनों पर रचे गए व्यंग्यों की उनके यहाँ भरमार है। नागार्जुन की भाषा में बोलियों, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी के अनेक शब्द आते हैं। ये वे शब्द हैं, जो विभिन्न अंचलों में बोली जाने वाली खड़ी बोली में घुलमिल गए हैं। डॉ0 रामविलास शर्मा के शब्दों में- हिन्दी भाषी प्रदेश के किसान और मजदूर जिस तरह की भाषा आसानी से समझते और बोलते हैं, उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है।

कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर नागार्जुन जन प्रतिबद्धता से युक्त होकर प्रस्तुत हुए है। प्रगतिवाद के संबंध में यह धारणा बहुत प्रचलित हैं कि इस धारा के कवि वस्तु या कथ्य को ही महत्व देते है, रूप या शिल्प को नहीं। प्रगतिवादी कवियों का बल उस रूप या शिल्प पर है, जो कथ्य या विषय वस्तु के सम्प्रेषण के लिए धारदार साबित हो। नागार्जुन ने यहाँ रूप की जो आश्यर्चजनक विविधता है वह किसी से छिपी नहीं है। वे दोहा भी लिखेंगे तो पूरी शक्ति के साथ। गीत जैसे रूपाकार के भीतर भी उन्होंने दुर्लभ- संगठन का प्रमाण दिया है। वस्तुतः प्रगतिशील कवियों ने साधारण से असाधारण का काम लिया है। निराला ने 'नये पत्ते' में जो रूप या शिल्प अपनाया था, प्रगति वादियों ने उसका अनेक रूपों में अनेक स्तरों पर विकास किया है। उन्होंने भाषा का आदर्श गुण माना है- संप्रेषणीयता। उनकी काव्यभाषा में भी अलंकार, बिम्ब, प्रतीक मिल जाएंगे पर अलंकरण बनकर नहीं- भाषा की सादगी, सरलता, क्षमता और जीवनी शक्ति का प्रमाण बनकर। स्पष्टता, सहजता, प्रखरता, व्यंग्यविदग्धता, उग्रता, साहस और मूर्तता- ये सभी प्रगतिवादी काव्यभाषा के गुण हैं।

कहना न होगा कि नागार्जुन की कविता में ये सभी भाषाई और शिल्पगत विशेषताएँ प्रभूत मात्रा में विद्यमान हैं। भाषण, भाव आदि दृष्टियों से नागार्जुन की कविता भावुकता से मुक्त एक ऐसे तनाव बिन्दु पर केन्द्रित कविता है, जो भावुकता और बौद्धिकता के बीच का संतुलन बिन्दु है। डॉ. नामवर सिंह ने भी नागार्जुन की कविता की शक्ति को इन पंक्तियों में व्यक्त किया है- इस बात में तनिक भी अतिश्योक्ति नहीं हैं कि तुलसीदास के बाद नागार्जुन अकेले ऐसे

कवि हैं, जिनकी कविता की पहुँच किसानों की चौपालों से लेकर काव्य-रसिकों की गोष्ठी तक है।

प्रगतिवादी कविता की प्रवृत्तियां

समाज और समाज से जुड़ी समस्याओं यथा गरीबी, अकाल, स्वाधीनता, किसान-मजदूर, शोषक-शोषित संबंध और इनसे उत्पन्न विसंगतियों पर जितनी व्यापक संवेदनशीलता इस धारा की कविता में है, वह अन्यत्र नहीं मिलती। यह काव्यधारा अपना संबंध एक ओर जहां भारतीय परंपरा से जोड़ती है वहीं दूसरी ओर भावी समाज से भी। वर्तमान के प्रति वह आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि अपनाती है। प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं–

1. सामाजिक यथार्थवाद– इस काव्यधारा के कवियों ने समाज और उसकी समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विषमता के कारण दीन-दरिद्र वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि के प्रसारण को इस काव्यधारा के कवियों ने प्रमुख स्थान दिया और मजदूर, कच्चे घर, मटमैले बच्चों को अपने काव्य का विषय चुना।

सड़े घूर की गोबर की बदबू से दबकर
महक जिंदगी के गुलाब की मर जाती है
...केदारनाथ अग्रवाल

,,,,,

ओ मजदूर! ओ मजदूर!!
तू सब चीजों का कर्त्ता, तू ही सब चीजों से दूर
ओ मजदूर! ओ मजदूर!!

,,,,,

श्वानों को मिलता वस्त्र दूध, भूखे बालक अकुलाते हैं।
मां की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं

,,,,,

युवती की लज्जा बसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमंत्रण ---दिनकर

2. मानवतावाद का प्रकाशन– वह मानवता की अपरिमित शक्ति में विश्वास प्रकट करता है और ईश्वर के प्रति अनास्था प्रकट करता है, धर्म उसके लिए अफीम का नशा है–

जिसे तुम कहते हो भगवान-
जो बरसाता है, जीवन में
रोग, शोक, दु:ख दैन्य अपार
उसे सुनाने चले पुकार

3. क्रांति का आह्वान– प्रगतिवादी कवि समाज में क्रांति की ऐसी आग भड़काना चाहता है, जिसमें मानवता के विकास में बाधक समस्त रूढ़ियां जलकर भस्म हो जाएं-

देखो मुट्ठी भर दानों को, तड़प रही कृषकों की काया।
कब से सुप्त पड़े खेतों से, देखो 'इन्कलाब' घिर आया॥

,,,,,

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल मच जाए

4. शोषकों के प्रति आक्रोश– प्रगतिवाद दलित एवं शोषित समाज के 'खटमलों'-पूंजीवादी सेठों, साहूकारों और राजा-महाराजाओं के शोषण के चित्र उपस्थित कर उनकी मानवता का पर्दाफाश करता है-

ओ मदहोश बुरा फल हो, शूरों के शोणित पीने का।
देना होगा तुझे एक दिन, गिन-गिन मोल पसीने का।

5.शोषितों को प्रेरणा– प्रगतिवादी कवि शोषित समाज को स्वावलम्बी बनाकर अपना उद्धार करने की प्रेरणा देता है-

न हाथ एक अस्त्र हो, न साथ एक शस्त्र हो।
न अन्न नीर वस्त्र हो, हटो नहीं, डटो नहीं, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

वह शोषित में शक्ति देखता है और उसे क्रांति में पूरा विश्वास है। इस प्रकार प्रगतिवादी कवि को शोषित की संगठित शक्ति और अच्छे भविष्य पर आस्था है-

मैंने उसको जब-जब देखा- लोहा देखा
लोहा जैसा तपते देखा, गलते देखा, ढ़लते देखा
मैंने उसको गोली जैसे चलते देखा
...केदारनाथ अग्रवाल

6. रूढ़ियों का विरोध- इस धारा के कवि बुद्धिवाद का हथौड़ा लेकर सामाजिक कुरीतियों पर तीखे प्रहार कर उनको चकनाचूर कर देना चाहते हैं-

गा कोकिल! बरसा पावक कण
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन ...पंत

7. तत्कालीन समस्याओं का चित्रण– प्रगति का उपासक कवि अपने समय की समस्याओं जैसे-बंगाल का अकाल आदि की ओर आंखें खोलकर देखता है और उनका यथार्थ रूप उपस्थित कर समाज को जागृत करना चाहता है-

बाप बेटा बेचता है
भूख से बेहाल होकर,
धर्म धीरज प्राण खोकर
हो रही अनरीति, राष्ट्र सारा देखता है
एक भिक्षुक की यथार्थ स्थिति-
वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ...निराला

8. मार्क्सवाद का समर्थन– इस धारा के कुछ कवियों ने मात्र साम्यवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स का तथा उसके सिद्धांतों का समर्थन करने हेतु प्रचारात्मक काव्य ही लिखा है-

साम्यवाद के साथ स्वर्ण-युग करता मधुर पदार्पण

और साथ ही साम्यवादी देशों का गुणगान भी किया है-

लाल रूस का दुश्मन साथी! दुश्मन सब इंसानों का

9. नया सौंदर्य बोध– प्रगतिवादी कवि श्रम में सौंदर्य देखते हैं। उनका सौंदर्य-बोध सामाजिक मूल्यों और नैतिकता से रहित नहीं है। वे अलंकृत या असहज में नहीं, सहज सामान्य जीवन और स्थितियों में सौंदर्य देखते हैं। खेत में काम करती हुई किसान नारी का यह चित्र इसी तरह का है-

बीच-बीच में सहसा उठकर खड़ी हुई वह युवती सुंदर
लगा रही थी पानी झुककर सीधी करे कमर वह पल भर
इधर-उधर वह पेड़ हटाती, रुकती जल की धार बहाती

10. व्यंग्य– सामाजिक, आर्थिक वैषम्य का चित्रण करने से रचना में व्यंग्य आ जाना स्वाभाविक है। व्यंग्य ऊपर-ऊपर हास्य लगता है, किंतु वह अंततः करुणा उत्पन्न करता है। इसीलिए सामाजिक व्यंग्य अमानवीय-शोषण सत्ता का सदैव विरोध करता है। प्रगतिशील कवियों में व्यंग्य तो सबके यहां मिल जाएगा किंतु नागार्जुन इस क्षेत्र में सबसे आगे हैं। एक देहाती मास्टर दुखरन, उसके शिष्यों और मदरसे की यह तस्वीर नागार्जुन ने इस प्रकार खींची है-

घुन खाए शहतीरों पर की बारह खड़ी विधाता बांचे
फटी भीत है, छत है चूती, आले पर बिस्तुइया नाचे
लगा-लगा बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पांच तमाचे
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम से सांचे।

11. प्रकृति– मानव समाज की भांति प्रकृति के क्षेत्र में भी प्रगतिवादी कवि सहज स्थितियों में सौंदर्य देखता है। उसका सौंदर्य बोध चयनवादी नहीं। प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति और ग्राम जीवन के अनुपम चित्र खींचे हैं, जिनमें रूप-रस-गंध-वर्ण के बिम्ब उभरे हैं। नागार्जुन का 'बादल को घिरते देखा है, केदारनाथ अग्रवाल का 'बसंती हवा' और त्रिलोचन का 'धूप में जग-रूप सुंदर' उत्कृष्ट कविताएं हैं।

12. प्रेम-प्रगतिवादी कवियों ने प्रेम को सामाजिक-पारिवारिक रूप में देखा है। वर्ग-विभक्त समाज में प्रेम सहज नहीं हो पाता। प्रेम वर्ग-भेद, वर्ण-भेद को मिटाता है। प्रगतिवादी कवि प्रेम की पीड़ा का एकांतिक चित्रण करते हैं। किंतु वह वास्तविक जीवन संदर्भों में होता है। अत: उनका एकांत भी समाजोन्मुख होता है, जैसे त्रिलोचन का यह अकेलापन-

आज मैं अकेला हूं, अकेले रहा नहीं जाता
जीवन मिला है यह, रतन मिला है यह
फूल में मिला है या धूल में मिला है यह
मोल-तोल इसका अकेले कहा नहीं जाता
आज मैं अकेला हूं

13. नारी-चित्रण–प्रगतिवादी कवि के लिए मजदूर तथा किसान के समान नारी भी शोषित है, जो युग-युग से सामंतवाद की कारा में पुरुष की दासता की लौहमयी जंजीरों से जकड़ी है। स्वतंत्र व्यक्तित्त्व खो चुकी है और केवल मात्र रह गई है पुरुष की वासना तृप्ति का उपकरण। इसलिए वह उसकी मुक्ति चाहता है-

योनि नहीं है रे नारी! वह भी मानवी प्रतिष्ठित
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित

अधिकांश प्रगतिवादियों का नारी-प्रेम उच्छृंखल और स्वच्छंद है-

मैं अर्थ बताता द्रोहभरे यौवन का
मैं वासना नग्न को गाता उच्छृंखल

प्रगतिवादी कवि ने नारी के सुकोमल सौंदर्य की उपेक्षा करके उसके स्थूल शारीरिक सौंदर्य को ही अधिक उकेरा है। उसने नारी की कल्पना कृषक बालाओं व मजदूरनियों में की है।

14. साधारण कला पक्ष –प्रगतिवाद जनवादी है। अतः वह जन-भाषा का प्रयोग करता है। उसे ध्येय को व्यक्त करने की चिंता है। काव्य को अलंकृत करने की चिंता नहीं। अतः वह कहता है-

तुम वहन कर सको जन-जन में मेरते विचार।
वाणी!मेरी चाहिए क्या तुम्हें अलंकार।

छंदों में भी अपने स्वछंद दृष्टिकोण के अनुसार उन्होंने मुक्तक छंद का ही प्रयोग किया है-

खुल गए छंद के बंध, प्रास के रजत पाश ....पंत

प्रगतिवादी कविता में नए उपमानों को लिया गया है और वे सामान्य जन जीवन और लोक-गीतों से ग्रहण किए गए हैं-

कोयल की खान की मजदूरिनी सी रात।
बोझ ढ़ोती तिमिर का विश्रांत सी अवदात।

मशाल, जोंक, रक्त, तांडव, विप्लव, प्रलय आदि, आदि नए प्रतीक प्रगतिवादी साहित्य की अपनी सृष्टि है। प्रगतिवादी कवि का कला संबंधी दृष्टिकोण भाषा, छंद, अलंकार, प्रतीकों तथा वर्णित भावों से स्पष्ट हो जाता है। वह कला को स्वांतः सुखाय या कला कला के लिए नहीं, बल्कि जीवन के लिए, बहुजन के लिए अपनाता है। वह कविता को जन-जीवन का प्रतिनिधि मानता है।

6

प्रयोगवाद एवं नई कविता

प्रयोगवाद व नई कविता में भेद रेखा स्पष्ट नहीं है। एक प्रकार से प्रयोगवाद का विकसित रूप ही नई कविता है। प्रयोगवाद को इसके प्रणेता अज्ञेय कोई वाद नहीं मानते। वे तार-सप्तक (1943) की भूमिका में केवल इतना ही लिखते हैं कि संगृहीत सभी कवि ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं, जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है। केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।' साथ ही अज्ञेय ने यह भी स्पष्ट किया कि 'वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं-राही नहीं, राहों के अन्वेषी। उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है। इस प्रकार केवल काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बांधता है। प्रयोगवाद नाम इस काव्य-विशेष के विरोधियों या आलोचकों द्वारा दिया गया। अज्ञेय ने प्रयोगवाद नाम का लगातार प्रतिवाद किया है। उनका कहना हैं कि 'प्रयोग कोई वाद नहीं है-फिर भी आश्चर्य की बात हैं कि यह नाम व्यापक स्वीकृति पा गया। प्रयोग शब्द जैसे-एक्सपेरिमेंट का हिंदी पर्याय है वैसा ही 'एक्सपेरिमेंटलिज्म जैसा कोई समानांतर आधार नहीं मिलता है। इस प्रकार का कोई वाद यूरोपीय साहित्य में भी नहीं चला।' प्रगतिवादियों और नंददुलारे वाजपेयी ने अज्ञेय और प्रयोग की दृष्टि पर जो आक्षेप लगाए, उनका करारा जवाब अज्ञेय ने दूसरा सप्तक(1951) और तीसरा सप्तक(1959) की भूमिकाओं में दिए हैं।

दूसरा सप्तक की भूमिका में यह स्पष्ट कहा गया कि 'प्रयोगवाद कोई वाद नहीं है। इन कवियों को प्रयोगवादी कहना इतना ही सार्थक या निरर्थक है, जितना इन्हें कवितावादी कहना।' दूसरे सप्तक के अधिकांश कवियों के वक्तव्यों में नए कवियों का उल्लेख हुआ है और स्वयं अज्ञेय ने लिखा हैं कि 'प्रयोग के लिए प्रयोग इन में से भी किसी ने नहीं किया है, पर नई समस्याओं और नए दायित्वों का तकाजा सब ने अनुभव किया है और उससे प्रेरणा सभी को मिली है। दूसरा सप्तक नए हिंदी काव्य को निश्चित रूप से एक कदम आगे ले जाता है।

सन 1951 में एक रेडियो गोष्ठी हुई थी, जिसमें सुमित्रानंदन पंत, भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय, धर्मवीर भारती और शिवमंगल सिंह सुमन जैसे कवियों ने भाग लिया। इस गोष्ठी में नवीन प्रवृत्ति वाली कविता धारा के लिए प्रयोग शब्द का प्रयोग हुआ। लेकिन अज्ञेय ने तारसप्तकीय कविता के लिए नई कविता नाम की प्रस्तावना की। इसी नाम को लेकर सन् 1953 में 'नए पत्ते' नाम से और सन् 1954 में 'नई कविता' नाम से पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। 'नए पत्ते' का संपादन डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी और डॉ लक्ष्मीकांत वर्मा ने संभाला। 'नई कविता' का संपादन दायित्व डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी और डॉ. जगदीश गुप्त ने उठाया। यहीं से प्रयोगवादी कहीं जाने वाली कविता को एक नया नाम 'नई कविता' मिल गया। 'नई कविता' 1954 से 1967 तक प्रकाशित होती रही। जो एक अर्धवार्षिक पत्रिका थी। इस पत्रिका में नए-नए कवियों को स्थान मिलने लगा। लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर, कुंवर नारायण, विपिन कुमार अग्रवाल और श्रीराम वर्मा जैसे कवि इस पत्रिका की ही देन हैं। इन कवियों की रचनाएं रघुवंश, विजयदेवनारायण साही, अज्ञेय जैसे काव्य मर्मज्ञों के लेखों के साथ प्रकाशित होती थी। जिसमें नवीन भावों को प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया जाता था। अंधा-युग और कनुप्रिया के अंश सर्वप्रथम नई कविता में ही प्रकाशित हुए, जिनमें आधुनिक संवेदना की एक विशिष्ट पहचान मौजूद थी। संचयन स्तंभ के अंतर्गत अनेक युवा कवियों को स्थान मिला।

उल्लेखनीय हैं कि नई कविता का नामकरण अज्ञेय द्वारा ही किया गया है और वे इस नाम के अंतर्गत तार-सप्तकों के कवियों या बाद में परिमल, प्रतीक, नए पत्ते, नई कविता में स्थान पाने वाले कवियों की रचनाओं के लिए करना अधिक सही पाते हैं, बजाय प्रयोगवाद के।

इस नाम को अपनाने से जहां समसामयिक युग बोध का बोध होता है वहीं पूर्ववर्ती कवियों से विषय-वस्तु और शैली की भिन्नता भी स्पष्ट हो जाती है।

वास्तव में यह नाम सन् 1930 में लंदन में ग्रियर्सन द्वारा न्यू वर्स(New Verse) नाम से संपादित पत्रिका का अक्षरश: हिंदी अनुवाद है। दूसरे महायुद्ध के कुछ वर्ष पूर्व से ही यूरोपीय साहित्य में, विशेषकर फ्रेंच और अंग्रेजी में परम्परा से मुक्त, नए ढ़ग की कविताओं का चलन शुरू हो गया था। इनमें जहां एक ओर बुद्धिवाद का आधार लिया गया वहीं दूसरी ओर वस्तुवाद पर आधारित भावात्मक प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति भी थी। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि 'इलियट' तथा 'लारेंस' में ये दोनों विशेषताएं देखी जा सकती हैं। अंग्रेजी के मार्क्सवादी कवि 'ओडेन' का नाम भी इस नए आंदोलन के साथ जुड़ा है। सन् 1950 के आसपास विदेशों में समसामयिक कविता को नई कविता(New Poetry) कहने का रिवाज चला। जी.एस.फेजर ने समसामयिक कविता को न्यूमूवमैंट्स कहा। डेनाल्ड हाल ने अमरीका की विगत 15 वर्षों की कविता में प्रगति को 'न्यू पोइट्री' कहा। अन्य यूरोपीय व एशियाई देशों में भी नई पीढ़ी की काव्य रचना को नूतन नामों द्वारा अभिहित किया गया। भारत में भी यह हवा आई और अब तक प्रयोगवादी नाम से बदनाम कविता नई कविता हो गई।

कुछ आलोचक नई कविता और प्रयोगवाद को अलग करने के लिए 'नई कविता' को समाजोन्मुख मानते हैं, जबकि प्रयोगवाद को घोर अहंनिष्ठ। उनके अनुसार नई कविता में सामाजिक तनावों। सामाजिक मूल्यों, सामाजिक वैषम्यों और कुंठाओं को स्वस्थ अभिव्यक्ति मिली है, जबकि प्रयोगवाद में यह पूर्णत: वैयक्तिक और नग्न थी और समाज से पूरी तरह कटी हुई थी। नई कविता समाज सापेक्ष बनी है, जबकि प्रयोगवादी कहीं जाने वाली कविता पूर्णत: समाज-निरपेक्ष थी। डॉ. धर्मवीर भारती ने लिखा हैं कि 'प्रयोगवादी कविता में भावना है, किंतु हर भावना के आगे प्रश्न चिह्न लगा है। इसी प्रश्न चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं।' परंतु नई कविता प्रयोगवाद की अगली कड़ी इस अर्थ में हैं कि अब कवियों ने प्रश्न-चिह्नों के उस आवरण को उतार फैंका है। अब यह कविता प्रश्न चिह्न मात्र न रहकर समाज और जीवन के व्यापक सत्यों को खंड-खंड चित्रों के रूप में ही सही साधारणीकृत होकर समग्र प्रकार की सम्प्रेषणीयता से अन्वित हो गई है। इसमें साधारणीकरण की समस्या अब नहीं रह गई है।

कविता के पुराने आचार्यों और समीक्षकों व आलोचकों ने नई कविता का बड़ा भारी विरोध किया। यह विरोध छायावाद भी झेल चुका था और प्रयोगवाद भी। लेकिन नई कविता ने मूल्यबोध की जो समस्याएं उठाई, उसके सम्मुख पुरानी पीढ़ी को पस्त होना पड़ा। डॉ.लक्ष्मीकांत वर्मा ने पुराने आलोचकों को

जवाब देने के लिए 'नई कविता के प्रतिमान' पुस्तक लिखी। जिस पर व्यापक चर्चा हुई। 'अर्थ की लय', 'रसानुभूति और सहानुभूति', श्लघुमानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस' जैसे निबंधों से आलोचना के क्षेत्र के दिग्गज आलोचक भी भौचका रह गए। रस सिद्धांत को चुनौती देकर कहा गया कि कविता का नया सोंदर्य बोध अब रस प्रतिमान से नहीं समझा-समझाया जा सकता है क्योंकि रस का आधार है अद्वंद्व, समाहिति, संविद विश्रांति जबकि नई कविता का आधार है द्वंद्व, तनाव, घिराव, संघर्ष, बेचैनी, चित्त की व्याकुलता, बौद्धिक तार्किक स्थिति। नई कविता भाव केंद्रित न होकर विभाव या विचार के तनाव की कविता है, जिससे जीवन जगत के वास्तविक दुखते-कसकते अनुभवों को स्थान मिलता है। इस प्रकार नई कविता आन्दोलन में काव्य की अंतर्वस्तु, प्रयोग-परम्परा-आधुनिकता, समसामयिकता, प्रतीक, काव्य-बिम्ब, अर्थ की लय, काव्य-यात्रा की सर्जनात्मकता, मिथक आदि पर नए ढग से विचार किया गया।

नई कविता के अधिकांश कवि तार-सप्तकों के ही कवि हैं तथा प्रयोगवादी और नई कविता में बहुत कुछ समतापरक होने पर भी साठोत्तरी कवियों ने नई कविता को प्रयोगवाद के पर्यायवाची के रूप में स्वीकार नहीं किया और उसे अनेक नाम देकर प्रयोगवाद से अलग ठहराया।

अब नई कविता पर कुछ विद्वानों की दृष्टि पर नजर डालें–

डॉ. रघुवंश– नई कविता में अन्वेषण की दिशा में नए क्षितिज उभर आए हैं, यथार्थ को नई दृष्टि मिली है, संक्रमण के बीच नए मूल्यों की संभावना आभासित हुई है, साथ ही भाव-बोध के नए स्तरों और आयामों को उद्घाटित करने के लिए उपयुक्त भाषा-शैली तथा शिल्प की उपलब्धि भी हुई है।

डॉ. यश गुलाटी– यह नया नाम वास्तव में उन कविताओं के लिए रुढ़ हो गया है, जो आजादी के बाद बदले हुए परिवेश में जिंदगी की जटिल और चकरा देने वाली वास्तविकताओं को झेल रहे मानव की परिवर्तित संवेदनाओं को नए मुहावरों में अभिव्यक्त करती हैं।

डॉ. रामदरश मिश्र– नई कविता भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गई उन कविताओं को कहा गया जिनमें परम्परागत कविता से आगे भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नए मूल्यों और नए शिल्प विधान का अन्वेषण किया गया है।

डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त– नई कविता नए समाज के, नए मानव की, नई वृत्तियों की, नई अभिव्यक्ति, नई शब्दावली में है, जो नए पाठकों के नए दिमाग पर नए ढ़ग से नया प्रभाव उत्पन्न करती है।

डॉ. जगदीश गुप्त– वह नई कविता उन प्रबुद्ध विवेकशील आस्वादकों को लक्षित करके लिखी जा रही है, जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक-चेतना नए कवि के समान है--बहुत अंशों में कवि की प्रगति ऐसे प्रबुद्ध भावुक वर्ग पर आश्रित रहती है।

प्रयोगवाद व नई कविता के कवि और उनकी रचनाएं

प्रयोगवाद के कवियों में हम सर्वप्रथम तारसप्तक के कवियों को गिनते हैं और इसके प्रवर्तक कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय ठहरते हैं। जैसा कि हम पहले कह आए हैं कि तारसप्तक 1943 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें सात कवियों को शामिल किए जाने के कारण इसका नाम तारसप्तक रखा गया। इन कवियों को अज्ञेय ने पथ के राही कहा। ये किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं, बल्कि अभी पथ के अन्वेषक हैं। इसी संदर्भ में अज्ञेय ने प्रयोग शब्द का प्रयोग किया, जहां से प्रयोगवाद की उत्पत्ति स्वीकार की जाती है। इसके बाद 1951 ई. में दूसरा, 1959 ई. में तीसरा और 1979 में चौथा तारसप्तक प्रकाशित हुए। जिनका संपादन स्वयं अज्ञेय ने किया है। आइए, सर्वप्रथम हम इन चारों तारसप्तकों के कवियों के नामों से परिचित हो लें।

1. तारसप्तक के कवि– अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, नेमिचंद्र जैन, रामविलास शर्मा।

2. दूसरे तारसप्तक के कवि– भवानीप्रसाद मिश्र, शंकुत माथुर, नरेश मेहत्ता, रघुवीर सहाय, शमशेर बहादुर सिंह, हरिनारायण व्यास, धर्मवीर भारती।

3. तीसरे तारसप्तक के कवि– प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

4. चौथे तारसप्तक के कवि– अवधेश कुमार, राजकुमार कुंभज, स्वदेश भारती, नंद किशोर आचार्य, सुमन राजे, श्रीराम शर्मा, राजेन्द्र किशोर।

प्रयोगवाद में ही शामिल है नकेनवाद या प्रपद्यवाद। नकेनवाद के कवि हैं– 1. नलिनविलोचन शर्मा 2. केसरी कुमार 3. नरेश।

अब हम इन कवियों की काव्य-रचनाओं से परिचित हों।

1. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय(1911-1987)– 1. भग्नदूत 2. चिंता 3. हरी घास पर क्षण भर 4. बावरा अहेरी 5. अरी ओ करुणा प्रभामय 6. आंगन के पार द्वार 7. इत्यलम 8. इंद्र-धनुष रौंदे हुए थे 9. सुनहले शैवाल 10.कितनी नावों में कितनी बार 11. सागर-मुद्रा 12. क्योंकि मैं उसे जानता हूं 13. पहले सन्नाटा बुनता हूं 14. महावृक्ष के नीचे 15. नदी की बांक पर छाया।

2. भारतभूषण अग्रवाल(1919-1975)– 1. छवि के बंधन 2. जागते रहो 3. मुक्ति-मार्ग 4. एक उठा हुआ हाथ 5. ओ अप्रस्तुत मन 6. कागज के फूल 7. अनुपस्थित लोग 8. उतना वह सूरज है।

3. गजानन माधव मुक्तिबोध(1917-1964)– 1. चांद का मुंह टेढ़ा है 2. भूरी-भूरी खाक धूल।

4. प्रभाकर माचवे(1917-)– 1. स्वप्न-भंग 2. अनुक्षण 3. तेल की पकौड़ियां 4. मेपल।

5. गिरिजाकुमार माथुर(1919-1994)– 1. नाश और निर्माण 2. धूप के धान 3. शिला पंख चमकीले 4. मंजीर 5. भीतरी नदी की यात्रा 6. जो बंध नहीं सका 7. छाया मत छूना मन 8. साक्षी रहे वर्तमान 9. कल्पांतर।

6. नेमिचंद्र जैन(1918-)– विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में कविताएं प्रकाशित।

7. राम विलास शर्मा( )– 1. रूप-तरंग (ये प्रयोगवादी से अधिक प्रगतिवादी कवि हैं और मार्क्सवादी समीक्षक व आलोचक हैं)

8. भवानीप्रसाद मिश्र(1914-1985)– 1. गीत-फरोश 2. अंधेरी कविताएं 3. चकित हैं दु:ख 4. त्रिकाल संध्या 5. बुनी हुई रस्सी 6. गांधी पंशशती 7. खुशबू के शिलालेख 8. त्रिकाल संध्या 9. अनाम तुम आते हो 10. परिवर्तन जिए 11. मानसरोवर दिन

9. शकुंत माथुर(1922-)– 1. चांदनी चूनर 2. सुहाग बेला 3. कूड़े से भरी गाड़ी।

10. नरेश मेहता(1927-)– 1. बोलने दो चीड़ को 2. मेरा समर्पित एकांत 3. वनपाखी सुनो 4. संशय की एक रात 5.उत्सवा।

11. रघुवीर सहाय(1929-)– 1. सीढ़ियों पर धूप में 2. आत्महत्या के विरुद्ध 3. हंसो हंसो जल्दी हंसो 4. लोग भूल गए हैं।

12. शमशेर बहादुर सिंह(1911-1993)– 1. चुका भी नहीं हूं मैं 2. ददिता 3. बात बोलेगी हम नहीं 4. कुछ कविताएं 5.कुछ और कविताएं 5. इतने पास अपने।

13. हरिनारायण व्यास( )– 1. मृग और तृष्णा 2. त्रिकोण पर सूर्योदय।

14. धर्मवीर भारती(1926-1997)– 1. कनुप्रिया 2. ठंडा लोहा 3. सात गीत वर्ष 4. अंधा-युग।

15.प्रयाग नारायण त्रिपाठी( )– विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में कविताएं प्रकाशित।

16. कीर्ति चौधरी(1935-)– 1. खुले हुए आसमान के नीचे 2. कविताएं

17. मदन वात्स्यायन( )– 1. अपथगा 2. शुक्रतारा।

18. केदारनाथ सिंह(1934-)– 1. अभी बिल्कुल अभी 2. जमीन पक रही है 3. यहां से देखो

19. कुंवर नारायण(1927-)– 1. चक्र-व्यूह 2. आत्मजयी 3. परिवेश 4. हम-तुम 5.आमने-सामने।

20. विजय देव नारायण साही(1924-)– 1. मछली-घर 2. साखी।

21. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना(1927-1984)– 1. काठ की घंटियां 2. एक सूनी नाव 3. गर्म-हवाएं 4. बांध का पुल 5.जंगल का दर्द 6. कुआनो नदी 7. बांस के पुल 8. कविताएं-1, 9. कविताएं-2, 10. खूंटियों पर टंगे लोग।

22. नलिन विलोचन शर्मा( )– नकेन प्रप।

23. केसरी कुमार( )– नकेन प्रप।

24. नरेश( )– नकेन प्रप।

तार-सप्तक परम्परा के अतिरिक्त कुछ अन्य भी प्रयोगवादी कवि हैं– चंद्रकुंवर वर्त्वाल, राजेन्द्र यादव, सूर्यप्रताप। तार सप्तक परंपरा के सभी कवि प्रयोगवादी हों, ऐसी बात भी नहीं है। रामविलास शर्मा और भवानीप्रसाद मिश्र पर प्रगतिवाद का पर्याप्त प्रभाव है। इधर मुक्तिबोध में एक अलग ही तरह का विस्फोटक तत्त्व मौजूद है।

नई कविता की प्रवृत्तियां

प्रयोगवाद और नई कविता की प्रवृत्तियों में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई देता। नई कविता प्रयोगवाद की नींव पर ही खड़ी है। फिर भी कथ्य की

व्यापकता और दृष्टि की उन्मुक्तता, ईमानदार अनुभूति का आग्रह, सामाजिक एवं व्यक्ति पक्ष का संश्लेष, रोमांटिक भावबोध से हटकर नवीन आधुनिकता से संपन्न भाव-बोध एक नए शिल्प को गढ़ता है। वादमुक्त काव्य, स्वाधीन चिंतन की व्यापक स्तर पर प्रतिष्ठा, क्षण की अनुभूतियों का चित्रण, काव्य मुक्ति, गद्य का काव्यात्मक उपयोग, नए सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति, अनुभूतियों में घनत्व और तीव्रता, राजनीतिक स्थितियों पर व्यंग्य, नए प्रतीकों-बिम्बों-मिथकों के माध्यम से तथा आदर्शवाद से हटकर नए मनुष्य की नई मानववादी वैचारिक भूमि की प्रतिष्ठा नई कविता की विशेषताएं रहीं हैं। अब इन विशेषताओं पर एक चर्चा-

1. अनुभूति की सच्चाई तथा यथार्थ बोध—अनुभूति क्षण की हो या समूचे काल की, किसी सामान्य व्यक्ति (लघुमानव) की हो या विशिष्ट पुरुष की, आशा की हो या निराशा की वह सब कविता का कथ्य है। समाज की अनुभूति कवि की अनुभूति बन कर ही कविता में व्यक्त हो सकती है। नई कविता इस वास्तविकता को स्वीकार करती है और ईमानदारी से उसकी अभिव्यक्ति करती है। इसमें मानव को उसके समस्त सुख-दुखों, विसंगतियों और विडंबनाओं को उसके परिवेश सहित स्वीकार किया गया है। इसमें न तो छायावाद की तरह समाज से पलायन है और न ही प्रयोगवाद की तरह मनोग्रंथियों का नग्न वैयक्तिक चित्रण या घोर व्यक्तिनिष्ठ अहंभावना। यह कविता ईमानदारी के साथ व्यक्ति की क्षणिक अनुभूतियों को, उसके दर्द को संवेदनापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करती है।-

आज फिर शुरू हुआ जीवन
आज मैंने एक छोटी सी सरस सी कविता पढ़ी
आज मैंने सूरज को डूबते देर तक देखा
जी भर कर शीतल जल से स्नान किया
आज एक छोटी सी बच्ची आयी
किलक मेरे कंधे पर चढ़ी
आज आदि से अंत तक एक पूरा गान किया
आज जीवन फिर शुरू हुआ
--रघुवीर सहाय

चेहरे थे असंख्य
आंखें थीं
दर्द सभी में था

जीवन का दंश सभी ने जाना था
पर दो
केवल दो
मेरे मन में कौंध गयीं
मैं नहीं जानता किसकी वे आंखें थीं
नहीं समझता फिर उनको देखूंगा
परिचय मन ही मन चाहा तो उद्यम कोई नहीं किया
किंतु उसी की कौंध
मुझे फिर फिर दिखलाती है
वहीं परिचित दो आंखें ही
चिर माध्यम हैं
सब आंखों से सब दर्दों से
मेरे चिर परिचय का
--अज्ञेय

2. कथ्य की व्यापकता और दृष्टि की उन्मुक्तता– नई कविता में जीवन के प्रति आस्था है। जीवन को इसके पूर्ण रूप में स्वीकार करके उसे भोगने की लालसा है। नई कविता ने जीवन को जीवन के रूप में देखा, इसमें कोई सीमा रेखा निर्धारित नहीं की। नई कविता किसी वाद में बंध कर नहीं चलती। इसलिए अपने कथ्य और दृष्टि में विस्तार पाती है।नई कविता का धरातल पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं से व्यापक है, इसलिए उसमें विषयों की विविधता है। एक अर्थ में वह पुराने मूल्यों और प्रतिमानों के प्रति विद्रोही प्रतीत होती है और इनसे बाहर निकलने के लिए व्याकुल रहती है। नई कविता ने धर्म, दर्शन, नीति, आचार सभी प्रकार के मूल्यों को चुनौती दी है, यदि ये मात्र फारमूलें हैं, मात्र ओढ़े हुए हैं और जीवन की नवीन अनुभूति, नवीन चिंतन, नवीन गति के मार्ग में आते हैं। इन मान्य फारमूलों को, मूल्यों की विघातक असंगतियों को अनावृत करना सर्जनात्मकता से असंबद्ध नहीं है, वरन् सर्जन की आकुलता ही है। नई कविता के कवियों में से अधिकांश प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के खेमों में रह चुके थे। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की अपेक्षा अधिक व्यापक मानवीय संदर्भ, उसकी समस्याएं और विज्ञान के नए आयाम से जुड़ कर नई कविता ने अपना विषय विस्तार किया। आम आदमी जिस पीड़ा को झेलता है, औसत आदमी(मध्य-वर्गीय) जिस जीवन को जीता है, वहीं लघु मानव इस कविता का नायक बनता है। उसे

इतिहास ने अब तक अपने से अलग ही रखा है। इसलिए नई कविता उसकी पीड़ा, अभाव और तनाव झेलती है।

तुम हमारा जिक्र इतिहासों में नहीं पाओगे
और न उस कराह का
जो तुम ने उस रात सुनी
क्योंकि हमने अपने को इतिहास के विरुद्ध दे दिया है

मनुष्य के भीतर मानवता का अंश शहर-दंश से कैसे नष्ट हो जाता है और वह स्वार्थ के संकीर्ण संसार में जीवित रहने के लिए कैसे विवश कर दिया जाता है, अज्ञेय ने इसी पीड़ा को कविता में यूं ब्यां किया है-

बड़े शहर के ढंग और हैं, हम गोटें हैं यहां
दाँव गहरे हैं उस चोपड़ के
श्रीकांत वर्मा के शब्दों में शहरी जिंदगी का सच -
चिमनियों की गंध में डूबा शहर
शाम थककर आ रही है कारखानों में

3. मानवतावाद की नई परिभाषा– नई कविता मानवतावादी है, पर इसका मानवतावाद मिथ्या आदर्श की परिकल्पनाओं पर आधारित नहीं है। उसकी यथार्थ दृष्टि मनुष्य को उसके पूरे परिवेश में समझने का बौद्धिक प्रयास करती है। उसकी उलझी हुई संवेदना चेतना के विभिन्न स्तरों तक अनुभूत परिवेश की व्याख्या करने की कोशिश करती है। नई कविता मनुष्य को किसी कल्पित सुंदरता और मूल्यों के आधार पर नहीं, बल्कि उसके तड़पते दर्दों और संवेदनाओं के आधार पर बड़ा सिद्ध करती है। यही उसकी लोक संपृक्ति है। अज्ञेय की एक कविता-

अच्छा
खंडित सत्य
सुघर नीरन्ध्र मृषा से
अच्छा
पीड़ित प्यार
अकंपित निर्ममता से
अच्छी कुंठा रहित इकाई
सांचे ढले समाज से
अच्छा

अपना ठाठ फकीरी
मंगनी के सुख साज से
अच्छा सार्थक मौन
व्यर्थ के श्रवण मधुर छंद से
अच्छा
निर्धन दानी का उघड़ा उर्वर दु:ख
धनी सूम के बंजर धुआं घुटे आनंद से
अच्छे
अनुभव की भट्ठी में तपे हुए कण, दो कण
अंतर्दृष्टि के
झूठे नुस्खे रूढ़ि उपलब्धि परायी के प्रकाश से
रूप शिव रूप सत्य सृष्टि के
(अरी ओ करुणा प्रभामय)

4. कुंठाओं और वर्जनाओं से मुक्ति का संदेश– नई कविता स्वयं को किसी विषय से अछूता नहीं समझती। नई कविता समाज की वर्जनाओं और व्यक्ति की कुंठाओं से निकल कर स्पष्ट और कोमल अनुभूतियों को यथार्थ की कसौटी पर कस कर अभिव्यक्ति देती है। उसमें यदि आदर्श के प्रति लगाव नहीं है तो अनुभूति के प्रति ईमानदारी में भी कोई कपट नहीं है। नए कवियों ने आवाज उठाई कि हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन। कम से कम वाली बात हम से न कहिए। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास में एक मार्के की बात कहीं कि नई कविता इस सारे के सारे जीवन और गरबीली गरीबी का काव्य है। जिसमें व्यक्ति की चेतना जीवन के सारे व्यापारों में, खेत-खलिहान में, नगर-गांव में व्यापक धरातल पर व्यक्ति की अनुभूतियों को स्वर देती है। मर्यादा और आस्था इस साधारण व्यक्ति के लिए कोई मायने नहीं रखते-

ज्ञान और मर्यादा
उसका क्या करें हम
उनको क्या पीसेंगे?
या उनको खाएंगे?
या उनको ओढ़ेंगे?
या उनको बिछाएंगे?

5. विवेक और विचार की कविता– नई कविता में केवल भाव-बोध की अंधी श्रद्धा नहीं है बल्कि उसमें तर्क बुद्धि, विवेक और विचार है। डॉ. लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दों में -उसकी प्रकृति है प्रत्येक सत्य को विवेक से देखना, उसके परिप्रेक्ष्य में प्रयोग के माध्यम से निष्कर्ष तक पहुंचना। बाह्य स्थितियों के प्रति सतर्क और सचेत होकर कवि मानसिक विश्लेषण की ओर बढ़ता है--

मैं खुद को कुरेद रहा था
अपने बहाने उन तमाम लोगों की असफलताओं को
सोच रहा था जो मेरे नजदीक थे
इस तरह साबुत और सीधे विचारों पर
जमी हुई काई और उगी हुई घास को
खरोंच रहा था, नोच रहा था

6. विसंगतियों का बोध– नई कविता मानव-नियति को लेकर उसकी विसंगतियों के प्रति जागरुक रहती है। भारतीय राजनीति में निरंतर जो विसंगतियां उभरी हैं, सामाजिक और आर्थिक धरातल पर जो विरोधाभास आया है, उसे यह कविता मोह भंग की स्थिति में उजागर करती है। यही कारण है इसमें आक्रोश, नाराजगी, घृणा और विद्रोह उभर आता है। आक्रोश के साथ निषेध के तेवर भी इसमें देखे गए हैं–

आदमी को तोड़ती नहीं हैं
लोकतांत्रिक पद्धतियां
केवल पेट के बल
उसे झुका देती हैं धीरे-धीरे अपाहिज
धीरे-धीरे नपुंसक बना लेने के लिए
उसे शिष्ट राजभक्त देश-प्रेमी नागरिक
बना लेती हैं

7. द्वंद्व और संघर्ष– नई कविता का आत्मसंघर्ष काव्यात्मक बनावट में सामाजिक बुनियादी मुद्दों को उठाता है। आज की व्यवस्था में और उस व्यवस्था से जुड़े हुए प्रश्नों में कविता संघर्ष का मार्ग ढूंढती है। उसका धरातल भी व्यापक है। यह संघर्ष आत्मीय प्रसंगों में भी उभरता है। उसमें सामाजिक और मानवीय व्यापार, संदर्भ उभरते हैं। ये कविताएं विषमता से जूझती हैं और नया रास्ता सुझाने

का प्रयास करती हैं। परिस्थितियों को बदलने और उनसे बाहर निकलने की छटपटाहट इनमें देखी जाती है। वह समस्याओं को पहचानती है--

जब भी मैंने उनसे कहा हैं कि देश शासन और
राशन....उन्होंने मुझे रोक दिया है
वे मुझे अपराध के असली मुकाम पर
उंगली रखने से मना करते हैं

8. परिवेश संबंधी सत्यों का प्रकटन–नई कविता ने समग्र जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को उनके जीवंत परिवेश में व्यक्त किया, विषय या अनुभूति के आभिजात्य और भिन्न-भिन्न दृष्टियों या वादों से बने हुए उनके घेरों को तोड़कर व्यक्ति द्वारा भोगे हुए जीवन के हर छोटे-बड़े सत्य को प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से उभारने में ही कविता की सार्थकता समझी। बदलते हुए संदर्भों में परिवेशगत परिवर्तन केवल नगर के जीवन में ही नहीं आए, बल्कि इस नगरीय यांत्रिकता का दबाव गांव के जीवन पर भी पड़ा। उस ओर भी मूल्यों का विखंडन हुआ और जिंदगी में तनाव बढ़ा। परिवेश के परायेपन से उपजी पीड़ा नास्टेलजिया के रूप में प्रकट हुई। नई सभ्यता ने केवल शहर के आदमी को ही नहीं तोड़ा, बल्कि गांव के आदमी को भी गांव से बेगाना कर दिया--

याद आते घर
गली चौपाल, कुत्ते, मेमने, मुर्गे, कबूतर
नीम तरु पर
सूख कर लटकी हुई कड़वी तुरई की बेल
टूटा चौंतरा
उखड़े ईंट पत्थर
बेधुली पोशाक पहने गांव के भगवान मंदिर
.....

आज की शहरी रोजमर्रा जिंदगी की अनुभूतियों को बड़ी सहजता से अभिव्यक्ति नई कविता में मिली है। उन अभिव्यक्तियों को जो पल-पल के अंतर्विरोधों की उपज हैं। ऊपर से रंगीन दिखाई देने वाली शहरी जिंदगी व्यक्ति को कितना विदेह कर देती है और विदेह होकर भी आज का आदमी दर्द से छुटकारा नहीं पाता और वह केवल दर्द बनकर रह जता है, भारत भूषण अग्रवाल की एक कविता देखिए- -

और तब धीरे-धीरे ज्ञान हुआ
भूल से मैं सिर छोड़ आया हूं दफ्तर में
हाथ बस में ही टँगे रह गए
आँखें जरूर फाइलों में ही समा गई
मुँह टेलिफोन से ही चिपटा-सटा होगा
और पैर, हो-न-हो
क्यू में रह गए हैं
तभी तो मैं आज
घर आया हूं विदेह ही
देह हीन जीवन की कल्पना तो
भारतीय परंपरा का सार है
पर उसमें क्या यह थकान भी शामिल है
जो मुझ अंगहीन को दबोचे ही जाती है

9. यथार्थ की पीड़ा का चित्रण– नई कविता वास्तव में व्यक्ति की पीड़ा की कविता है। प्रयोगवादी कविता में जहां व्यक्ति के आंतरिक तनाव और द्वंद्वों को उकेरा गया है वहीं नई कविता में वह व्यापक सामाजिक यथार्थ से जुड़ता है। जिंदगी की मारक स्थितियों को, उसकी ठोस सच्चाइयों को और राजनीतिक सरोकारों को यह कविता भुलाती नहीं है, पर यह न तो उत्तेजना बढ़ाती है और न ही कवि भावुकता का शिकार होता है। अपने अनुभव के सत्य को कवि बाहर के संसार के सत्य से भी जोड़ता है। इससे नई कविता का काव्यानुभव पुरानी कविता के काव्यानुभव से अलग तरह का हो जाता है--

एकाएक मुझे भान होता है, जग का
अखबारी दुनिया का फैलाव
फंसाव, घिराव, तनाव है सब ओर
पत्ते न खड़के
सेना ने घेर ली हैं सड़कें

10. व्यंग्य के तेवर– नई कविता ने व्यंग्य के तेवर को अधिक पैना और धारदार बनाया। समस्याओं को समझकर उसने उस पर व्याख्यान करने की अपेक्षा उसे कसे हुए सीधे शब्दों में प्रकट किया। यह व्यंग्य भी विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति पाता है और इसका क्षेत्र भी व्यापक हो जाता है। किसी भी क्षेत्र में

हो रहे शोषण फिर चाहे वह राजनीतिक हो या धार्मिक व्यक्ति, अथवा समाज, आदर्श हो या यथार्थ सब पर व्यंग्य की पैनी धार चली है।..

बड़े-बड़े आदर्श वाक्यों को
स्वर्णाक्षरों में लिखवाकर
अपने ड्राइंगरूम में सजा दो
उन्हें अपनी
आस्था, श्रद्धा एवं निष्ठा का
अर्घ्य दो

11. नई कविता वादमुक्त कविता– नई कविता किसी वाद से बंधी नहीं है। यह इस कविता की बहुत बड़ी विशेषता है। शायद यही कारण हैं कि प्रगतिवादियों ने भी नई कविता की धुन में कविता लिखनी शुरू कर दी। रांगेय राघव जैसा प्रगतिशील कवि नई कविता के युग में अपनी काव्य धारा को अक्षुण्ण रखते हुए नई कविता की शब्द योजना में कविता लिखता है।..

ठहर जा जालिम महाजन
तनिक तो तू खोल वह मदिरा विघूर्णित आँख अपनी
देख, कहाँ सौ लाया बता सम्पत्ति
कहां से लाया बता साम्राज्य।

12. नारी के प्रति दृष्टिकोण– नारी के प्रति छायावादी कवियों की दृष्टि सम्मानपूर्ण, स्नेह-वात्सल्यपूर्ण एवं श्रद्धापूर्ण थी। प्रसाद, निराला और पंत ने नारी को अत्यधिक आदर और गौरव के साथ स्मरण किया है--नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत पग नख तल में ...आदि पंक्तियों में प्रसाद ने नारी को जो उच्च स्थान दिया, वह इस युग के कवियों ने नहीं दिया। नर नारी के बीच सृष्टि के आरम्भ से चले आ रहे संबंधों पर रघुवीर सहाय की टिप्पणी--

नारी बिचारी है, पुरुष की मारी है
तन से क्षुधित है, मन से मुदित है
लपक झपककर अंत में चित्त है

13. सौंदर्यबोध– नई कविता का सौंदर्य-शास्त्र और उसका सौंदर्य-बोध निश्चय ही अनेक संदर्भों में व्यापक हुआ है। उसमें सच्चाई, टकराव और मोहभंग की स्थिति नई चेतना के रूप में आई है। यह कविता आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों से भी अब परहेज नहीं करती। इसमें फिर से पेड़, पौधे, पक्षी, बच्चे, मां,

गांव, शहर, वतन, रोमांस, प्रेम, प्रकृति-चित्रण आदि का समावेश हुआ। इससे अनुभूति को नए पंख लगे और उसने काव्य में नए रूप धरे।

14. भाषा—नई कविता भाषा के क्षेत्र में भी आधुनिक-बोध के साथ बढ़ती है और नई होती है। नया कवि पुरानी भाषा में नई संवेदना को अभिव्यक्ति के लिए समर्थ नहीं पाता, इसलिए वह भाषा के नए रूप को गढ़ने के लिए तत्पर रहता है।

शब्द अब भी चाहता हूँ
पर वह कि जो जाएं वहां जहां होता हुआ
तुम तक पहुंचे
चीजों के आर-पार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक
स्वच्छंद अर्थ दे

नई कविता की इस नई भाषा में गद्यात्मकता के प्रति विशेष लगाव बन गया है। कहीं-कहीं तो कविता गद्य का प्रतिरूप लगती है। अलंकृत भाषा को नई कविता में बहिष्कृत किया गया है। सपाट शब्दों में अभिव्यक्ति से इसमें सपाटबयानी आ गई है तो कहीं खुरदरी हो गई है। कहीं-कहीं तो कविता सिर्फ ब्यौरा बन कर रह गई है। नई कविता के कुछ कवियों ने स्वयं को मौलिक और उत्साही साबित करने के लिए स्थापित मूल्यों को भी अस्वीकार करने में अभिधा शैली से अभिव्यक्ति का दंभ भरा है। अशोक वाजपेयी ने ऐसे कवियों की सतही मुद्रा, फिकरेबाजी, चालू मुहावरेदानी और पैगम्बराना अंदाज को समर्थ कविता के लिए घातक बताया है, उन्हीं के शब्दों में-- रचनात्मक स्तर पर भाषा के संस्कार के प्रति, उसकी सांस्कृतिक जड़ों के प्रति, उदासीनता आयी है और पारम्परिक अनुगूंजों और आसंगों से कवियों के अज्ञान और अरुचि के कारण, कट जाने से काव्य भाषा में ज्यादातर युवा कवियों की भाषा में सपाटता, सतहीपन और मानवीय दरिद्रता आयी है। इस संदर्भ में मणि मधुकर की कविता का एक अंश...

श्रद्धा, सम्मान और प्रेरणा जैसे शब्दों को
पान की पीक के साथ थूकता हूं मैं
मंत्रिमंडलों में बलात्कार करनेवाले लोगों पर
मेरे थूक का रंग लाल है,
काश, मेरे खून का रंग भी लाल होता

यद्यपि नई कविता का शब्द संसार बहुत व्यापक है। इसमें संस्कृत, हिंदी, उर्दू तथा प्रांतीय भाषाओं और बोलियों के साथ-साथ अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग सामान्य हो गया है। कई जगह नए विशेषणों तथा क्रियापदों का निर्माण किया गया है, जैसे- रंगिम, चंदीले, लम्बायित, उकसती, बिलमान, हरयावल आदि। विज्ञान, धर्म, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र आदि सभी क्षेत्रों से उसने शब्दों का चयन किया है। आम आदमी के स्वर, चिर-परिचित शब्द आज की कविता में देखे जा सकते हैं। जन भाषा में सूक्तियों, लोकोक्तियों और मुहावरों का का प्रयोग कभी व्यंग्य प्रदर्शन के लिए तो कभी आम आदमी का आक्रोश व्यक्त करने के लिए। लोकगीतों व लोकधुनों के आधार पर भी कविता की रचना की गई। फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि नई कविता ने भाषा को अपनी सुविधा के अनुरूप तोड़ा-मरोड़ा है, यह भाषा के साथ खिलवाड़ है।

15. प्रतीक– नई कविता ने नवीन और प्राचीन दोनों तरह के प्रतीक चुनें हैं। परम्परागत प्रतीक नए परिवेश में नए अर्थ के साथ प्रयुक्त हुए हैं। नए प्रतीकों में भेड़, भेड़िया, अजगर जैसे शब्दों को जनता, सत्ताधारी वर्ग, व्यवस्था आदि के प्रतीक रूप में प्रयोग किया गया है। पृथ्वी, पहाड़, सूरज, चांद, किरण, सायं, कमल आदि परम्परागत अर्थ से हट कर नए अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। मुक्तिबोध के प्रतीक वैज्ञानिक जीवन से लेकर आध्यात्मिक क्षेत्र तक फैलें हैं। ओरांग-उटांग तथा ब्रह्मराक्षस जैसे प्रतीक बहुत ही सटीक और समर्थ हैं। पीपल का वृक्ष भी उनका विशेष प्रिय प्रतीक रहा। मौसम शब्द भी प्रतीक बन कर वर्तमान परिवेश को अर्थ देता है--

छिनाल मौसम की मुर्दार गुटरगूं

16. बिंब– नई कविता में बिंब कविता की मूल छवि बन गए हैं, अपनी अंतर्लयता के लिए इसमें बिंबबहुलता हो गई है। कवियों ने इन बिंबों को जीवन के बीच से चुना है। व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों तरह के बिंब इस कविता में हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक बिंब नए अर्थ और संदर्भ में लोक-संपृक्ति के साथ उदित हुए हैं। शहरी कवि के बिंब विशेषतया नागरिक जीवन के और ग्रामीण जीवन के संस्कारों से युक्त कवि के बिंब विशेषतया गांव के होते हैं। जीवन के नए संदर्भों में उभरने वाले वाली अनुभूतियों, सौंदर्य-प्रतीतियों और चिंतन आयामों से संपृक्त बिंब नई कविता ग्रहण करती है।

शाखों पर जमे धूप के फाहे
गिरते पत्तों से पल ऊब गये
हकाँ दी खुलेपन ने फिर मुझको
लहरों के डाक कहीं डूब गये
---केदारनाथ सिंह

बँधी लीक पर रेलें लादे माल
चिहुँकती और रंभाती अफराये
डागर सी
---अज्ञेय

ठिलती-चलती जाती हैं
नदिया में बाढ़ आयी
ढूह सब ढह गये
हरियाये किनारे, सूखे पत्ते सब बह गये
रस में ये डूबे पल
कानों में कह गये
तपने से डरते थे
इसलिए देखो
तुम आज सूखे रह गये
---भारत भूषण अग्रवाल

17. उपमान– नई कविता में जहां अलंकारों का बहिष्कार हुआ, वहीं नए उपमान के प्रयोग से उसका शिल्प नव्य चेतना को यथार्थ अभिव्यक्ति देने में समर्थ हो गया है। लुकमान अली और मोचीराम जैसी लंबी कविताओं के शीर्षक ही उपमान बनकर आते हैं और आदमी की व्यथा का इतिहास प्रकट करते हैं। नई कविता में आटे की खाली कनस्तर जैसी चीजें भी उपमान बनती हैं–

प्यार, इश्क खाते हैं ठोकर
आटे के खाली कनस्तर से

अपने आस-पास फैले हुए वातावरण और वस्तुओं को कवि उपमान बनाकर प्रस्तुत करता है।-

उंगलियों में अहसास दबा है
सिगरेट की तरह
तथा सन्नाटा

लटकी हुई कमरे की कमीज और हैंगर सा
झूल रहा था

18. रस –नई कविता में रस का मूल बिम्बविधान है। नई कविता के सृजेता कवि बिंब विधान में निश्चय ही समर्थ माने जा सकते हैं और उनका यह सामर्थ्य आज बुद्धि समन्वित होकर परम्परा से कटे हुए रस भावों से संयत होकर विशिष्ट एवं यथेष्ट रसों की सृष्टि कर रहा है। कुछ आलोचकों ने इसे बुद्धि रस की संज्ञा प्रदान की है।

पहले लोग सठिया जाते थे
अब कुर्सिया जाते हैं
दोस्त मेरे!
भारत एक कृषि प्रधान नहीं
कुर्सी प्रधान देश है––डॉ. मदनलाल डागा

19. छंद –छंदों के प्रति विद्रोह प्रयोगवाद से ही आरंभ हो गया था और नई कविता ने विद्रोह की इस आग को ठंडा नहीं होने दिया। हिंदी कविता आज मुक्तक छंद को ही अपनाती है। लेकिन इसमें तुकांत के प्रति युवा कवियों में आकर्षण बढ़ा है। छंद के प्रति आग्रह न होने के बावजूद भी नई कविता में प्रवाह और गति दिखाई पड़ती है। नाद सौंदर्य इसमें एक अंत:संगीत उत्पन करता है, अर्थ के धरातल पर इसमें एक अंतर्लयता की गूंज उभरती है। कभी-कभी इन कविताओं में मात्राओं का मेल दिखाई पड़ता है, लेकिन इससे इन्हें छंदोबद्ध नहीं माना जा सकता। वस्तुत: नई कविता मुक्तक छंद में नई संवेदना और नए विचार की सटीक अभिव्यंजना की एक कोशिश है।

7

साठोत्तरी कविता

साठोत्तरी हिन्दी साहित्य हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत सन् 1960 ई0 के बाद मुख्यत: नवलेखन (नयी कविता, नयी कहानी आदि) युग से काफी हद तक भिन्नता की प्रतीति कराने वाली ऐसी पीढ़ी के द्वारा रचित साहित्य है, जिनमें विद्रोह एवं अराजकता का स्वर प्रधान था। हालाँकि इसके साथ-साथ सहजता एवं जनवादी चेतना की समानान्तर धारा भी साहित्य-क्षेत्र में प्रवहमान रही जो बाद में प्रधान हो गयी। साठोत्तरी लेखन में विद्रोही चेतनायुक्त आन्दोलन प्राथमिक रूप से कविता के क्षेत्र में मुखर हुई। इसलिए इससे सम्बन्धित सारे आन्दोलन मुख्यत: कविता के आन्दोलन रहे। हालाँकि कहानी एवं अन्य विधाओं पर भी इसका असर पर्याप्त रूप से पड़ा और कहानी के क्षेत्र में भी 'अकहानी' जैसे आन्दोलन ने रूप धारण किया।

साठोत्तरी कविता की नयी कविता से भिन्नता

सन् साठ के आसपास नयी कविता की धारा अपने से कुछ अलग होती दिखने लगीं। साठ के बाद जो नया मोड़ लक्षित होता है वह एकाएक दीखने वाली कोई नवीन वस्तु नहीं, वरन् नयी कविता से ही फूटा हुआ है। साठ के बाद की कविता में असंतोष, अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर बहुत साफ तौर पर उभरा है। नयी कविता में भी असंतोष और अस्वीकृति का स्वर विद्यमान है, किन्तु साठ के बाद इस स्वर ने और तीखे व्यंग्य और विद्रोह का रूप धारण कर

लिया है, जीवन की टूटती मूर्तियों के बहुत करीब जाकर उनकी टूटने की तल्खी, व्यथा और उसमें से फूटती अस्वीकृति की उग्रता को पहचाना है।

नयी कविता की सबसे बड़ी विशेषता यही हैं कि उसने समग्र जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को उनके जीवन्त परिवेश में व्यक्त किया। विषय या अनुभूति के आभिजात्य और भिन्न-भिन्न दृष्टियों या वादों से बने हुए उनके घेरों को तोड़कर व्यक्ति द्वारा भोगे जाते हुए जीवन के हर छोटे-बड़े सत्य को प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से उभारने में ही उसने कविता की सार्थकता समझी। लेकिन कुल मिलाकर नयी कविता के कवियों में पीड़ा के बावजूद भविष्य निर्माण के प्रति सकारात्मक आशा भी बनी रही। स्वातंत्योत्तर भारत की तत्कालीन परिस्थितियों के कारण उनमें हताशा और टूटन का भाव काफी था परंतु सपने पूरे होने की एक क्षीण आशा भी बची रही थी। मोहभंग या डिसइल्यूजनमेंट पूरे रूप में नहीं हुआ था, इसलिए नयी कविता में यातना-बोध है, अस्वीकृति का स्वर भी है, किन्तु विद्रोह का उभार नहीं है। धीरे-धीरे 'इल्यूजन' एक दम टूट गये, मोहभंग हो गया। व्यक्ति का सामाजिक परिवेश और भी कुरूप लगने लगा, भविष्य के सपने टूटते गये। डॉ0 बच्चन सिंह के शब्दों में कवियों के उगाए हुए सूरज में रोशनी नहीं आयी-- सूर्य का स्वागत व्यर्थ चला गया। अनेक साहित्यकारों को दो ही रास्ते नजर आने लगे कि या तो वे नयी कविता के प्रधान स्वर में स्वर मिलाकर पीड़ा की मुक्त अनुभूति को और गहनता से व्यक्त करते अथवा ये सारी परिस्थितियाँ उनके संवेदनशील मन को झकझोरकर और यातना के बीच से उभर कर उन्हें विद्रोही बनाती हुई सब-कुछ अस्वीकार करने को प्रेरित करने लगीं। साहित्य में ये दोनों धाराएँ रहीं, परन्तु सन् साठ के तुरंत बाद विद्रोही धारा प्रधान रही जिनमें से अधिकांश निर्लक्ष्य या यौन-विकृतिलक्षी थीं। निर्लक्ष्य होने से ये कविताएँ सुविधात्मक रूप से विद्रोह करने वाली हुईं यानि जहाँ विद्रोह करने में खतरा अनुभव हो वहाँ नहीं, जहाँ सुविधा हो वहाँ विद्रोह होता रहा।

प्रभाव एवं प्रकृति

साठोत्तरी हिन्दी साहित्य का पहला दशक (1960-70) आधुनिकतावाद से विशेष प्रभावित है। इस संदर्भ में ध्यातव्य हैं कि आधुनिक और आधुनिकता में अन्तर है। 'आधुनिक' 'मध्यकालीन' से अलग होने की सूचना देता है। 'आधुनिक' वैज्ञानिक आविष्कारों और औद्योगीकरण का परिणाम है, जबकि

'आधुनिकता' औद्योगीकरण की अतिशयता, महानगरीय एकरसता, दो महायुद्धों की विभीषिका का फल है। डॉ0 बच्चन सिंह के अनुसार 'वस्तुतः नवीन ज्ञान-विज्ञान, टेक्नोलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न विषम मानवीय स्थितियों के नये, गैर-रोमैंटिक और अमिथकीय साक्षात्कार का नाम 'आधुनिकता' है।

आधुनिकतावादी साहित्य एक विशेष प्रकार का साहित्य है। यह स्थापित संस्कृति, मूल्य और संवेदना को अस्वीकार करती है। यह दुनिया की मान्यताओं को मंजूर नहीं करती, परम्परा को बेड़ी के रूप में लेती है। आधुनिकतावादी अन्तर्यात्रा करता है, मूल्यों का मखौल उड़ाता है, वह विद्रोही होता है। भीड़ का विरोध करता है, वह व्यक्ति की मुक्ति का विश्वासी है। वह अपने को अ-मानव की स्थिति में पाता है, और स्नेह, कृतज्ञता आदि को निष्कासित कर देता है। संयम की कमी, प्रयोग, साहित्य रूपों की तोड़-फोड़, शॉक देने की मनोवृत्ति, आक्रोश-क्षोभ-हिंसा की आकांक्षा आदि इसकी विशेषताएँ या 'मोटिफ' हैं।

नयी कविता से विलगाव अनुभव करते हुए काव्य-क्षेत्र में जो अनेक प्रवृतियाँ सक्रिय रहीं, उनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय है गिन्सबर्ग आदि अमेरिकी बीटनिकों तथा उनसे प्रभावित बंगाल के मलय राय चौधुरी और सुबिमल बसाक जैसे भूखी पीढ़ी के कवियों के समानांतर हिंदी में उभरने वाले राजकमल चौधरी तथा अकविता और अस्वीकृत कविता से सम्बद्ध कुछ अन्य कवि जिन्होंने 'हेटरो सेक्सुअलिटी' एवं 'ओपन सीक्रेसी' की बीट धारणाओं को अपनाकर समाज से अपने को 'डिसएफिलिएट' करने का प्रयत्न किया। उनकी कविता में यौन शब्दावली का नंगा प्रयोग, अपने विक्षोभ और आक्रोश को व्यक्त करने के लिए प्रायः एक संस्कारहीनता एवं विकृति के रूप में मिलता है।

राजकमल चौधरी को इस दशक की अगुवाई करने वाला कवि माना गया है। राजकमल चौधरी में आधुनिकता अपनी समग्रता में दिखाई पड़ती है। इस समय की अधिकांश रचनाओं पर चौधरी की छाप देखी जा सकती है।

बीटनिक आन्दोलन हिन्दी में एक फैशन की तरह आया और कुछ ही समय में निष्प्रेरक हो गया क्योंकि उसकी जड़ें देश के यथार्थ में नहीं थीं। वस्तुतः ये गुस्से के कवि थे। अपनी आक्रोशपूर्ण वाणी में ये अपना गुस्सा उतारते रहे। पूर्ववर्ती समस्त मूल्यों और परम्पराओं को नकार कर वे अपनी चीखों, जख्मों और यौन-विद्रूपताओं को कविता में व्यक्त करते रहे। परन्तु, युयुत्सावादी, नव प्रगतिशील या नव प्रगतिवादी कवियों ने सामाजिक मूल्यों पर बल देते हुए इन बीटनिकों से अपनी असहमति व्यक्त की।

आन्दोलनों का बाहुल्य

नयी कविता के उपरान्त हिन्दी काव्य के क्षेत्र में थोड़ी सी ही अवधि में इतने अधिक नारे सुनाई दिये, इतने अधिक आन्दोलन आये कि विश्व के किसी अन्य साहित्य में इतनी कम अवधि में इतने अधिक नारे और आंदोलन कभी नहीं उत्पन्न हुए। इनमें से कुछ आंदोलन और नारे तो समय की गर्द में ही दब गये किंतु कुछ विकास के पथ पर बढ़े भी। वस्तुतः इन आंदोलनों की पोषक रचनाएँ एक-दूसरे से मिलती-जुलती भी रहीं तथा कभी-कभी तो एक ही कवि कई आंदोलनों का अनुगामी रहा। साहित्य-रचना का यह समय आंदोलनों की अराजक बाढ़ का समय रहा।

आन्दोलनों के नाम

मुख्यतः कविता-प्रधान इन आंदोलनों के नाम इस प्रकार हैं–

सनातन सूर्योदयी कविता
अपरंपरावादी कविता
अन्यथावादी कविता
सीमांत कविता
युयुत्सावादी कविता
अस्वीकृत कविता
अकविता
सकविता
अभिनव कविता
अधुनातन कविता
नूतन कविता
नाटकीय कविता
एंटी कविता
निर्दिशायामी कविता
लिंग्वादलमोतवादी कविता
एब्सर्ड कविता
गीत कविता
नव प्रगतिवादी कविता
सांप्रतिक कविता
बीट कविता

ठोस कविता
विद्रोही कविता
क्षुत्कातर कविता
समाहारात्मक कविता
कबीरपंथी कविता
उत्कविता
विकविता
बोध कविता
द्वीपांतर कविता
अति कविता
टटकी कविता
ताजी कविता
प्रतिबद्ध कविता
अगली कविता
शुद्ध कविता
नंगी कविता
स्वस्थ कविता
गलत कविता
सही कविता
प्राप्त कविता
सहज कविता
नवगीत
अगीत
एंटी गीत

प्रमुख आन्दोलनों का परिचय

इस दशक में बाढ़ की तरह आये कविता-आंदोलनों में व्यवस्था-विरोधी आंदोलनों के साथ-साथ व्यवस्था-समर्थक कई आंदोलन भी थे, परंतु प्रायः इन सभी आंदोलनों में सुव्यवस्थित चिंतन का अभाव था, जिसके कारण प्रायः ये सभी लघुजीवी सिद्ध हुए। इन दोनों प्रकार के मुख्य आंदोलनों का सामान्य परिचय अग्रांकित शीर्षकों में द्रष्टव्य है।

सनातन सूर्योदयी कविता

मार्च 1962 के 'भारती' के अंक में श्री वीरेंद्रकुमार जैन ने 'सनातन सूर्योदयी' नयी कविता की घोषणा की। अपना मंतव्य व्यक्त करते हुए उनका कहना था कि '(कविता) पतन-पराजय, कुंठा, आत्मपीड़ना और जीवित आत्मघात के असूझ अंधकार में आत्महारा दिशाहारा होकर भटक रही आज की अनाथ काव्य चेतना के सम्मुख हम- अल्प से महत् में ले जाने वाली, अंधकार से प्रकाश में ले जाने वाली, मृत्यु से अमृत में ले जाने वाली और सीमा में असीम की लीला को उतार लाने वाली-- आगामी कल की अनिवार्य सनातन सूर्योदयी नूतन कविता धारा का द्वार मुक्त करते हैं।' इस प्रकार इस आंदोलन का मुख्य स्वर व्यवस्था का ही था, परंतु लगभग 3 साल बाद ही 'भारती' के ही फरवरी 1965 ई0 के अंक में 'सनातन सूर्योदयी कविता' के स्थान पर 'नूतन कविता' का स्वर सुनाई देने लगा। गंगाप्रसाद विमल जैसे 'सनातन सूर्योदयी कविता' के भूतपूर्व समर्थक स्वयं 'अकविता' वर्ग में सम्मिलित हो गये।

युयुत्सावादी कविता

युयुत्सावादी कविता का संबंध 'युयुत्सा' नामक पत्रिका से रहा है। युयुत्सावादी कविता के प्रवर्तक शलभ श्रीराम सिंह थे। उनकी मान्यता रही हैं कि आदिम युयुत्सा ही साहित्यसर्जन की मूल प्रेरणा है। उनका कहना हैं कि 'मैं साहित्यसर्जन की मूल प्रेरणा के रूप में उसी आदिम युयुत्सा को स्वीकारता हूँ जो कहीं न कहीं प्रत्येक क्रांति, परिवर्तन अथवा विघटन के मूल में प्रमुख रही है। वह युयुत्सा जिजीविषावादी, मुमूर्षावादी, विद्रोहात्मक अथवा प्लैटोनिक कुछ भी हो सकती है।' अप्रैल 1965 की 'रूपाम्बरा' में 'प्रारंभ' के अंतर्गत स्वदेश भारतीय द्वारा 'सबका एक मात्र कारण युयुत्सा' की घोषणा करते हुए शलभ श्रीराम सिंह का यह उद्धरण दिया गया था। 'रूपाम्बरा' के ही अगस्त 1966 के 'अधुनातन कविता अंक' में 'युयुत्सावादी नवलेखन प्रधान सहकारी प्रयास' के रूप में सामने आया, तीन कवियों के वक्तव्य सहित। संपादक ने नयी संवेदनशीलता की बात भी उठायी। विमल पांडेय, रामेश्वरदत्त मानव, ओम् प्रभाकर, बजरंग बिश्नोई आदि ने भी अपने आप को इस आंदोलन से संबंधित किया। विमल पांडेय ने 'युयुत्सावाद' को 'एंग्री यंग मैन' से संबद्ध करने का प्रयत्न किया। श्री ओम् प्रभाकर ने 'युद्धेच्छा' को सनातन वृत्ति मानते हुए युयुत्सा को जिजीविषा का पर्याय माना है। बजरंग बिश्नोई ने प्रतिबद्धता के प्रश्न को युयुत्सा से जोड़ दिया है।

अस्वीकृत कविता

'उत्कर्ष' पत्रिका के जुलाई, 66 के अंक में श्रीराम शुक्ल ने 'अस्वीकृत कविता' का नारा बुलंद किया और 'एक लंबी अस्वीकृत कविता' 'मरी हुई औरत के साथ संभोग' शीर्षक से प्रस्तुत की। शुक्ल जी के लिए 'संभोग का अनुभव ही पर्याप्त है-- सात महाकाव्य लिख ले जाने के लिए।' अस्वीकृत कविता के प्रवक्ता कवि की मान्यता है-- 'सत्य को सत्य न कह पाने की विषमता कभी न कभी अवरोध तोड़कर बह निकलती है और तभी जन्म होता है अस्वीकृत कविता का।' तथा 'प्रस्तुत युग में व्याप्त, यथार्थ होते हुए भी अस्वीकृत विशिष्ट प्रवृतियों, संवेगों, स्थितियों, मूल्यों, असंगतियों और मूड की संप्रेषक कविता है।' अस्वीकृत कविता यौन विकृतियों की कविता है। अश्लील शब्दों का प्रयोग इनके लिए सहज स्वीकृत है तथा इनके अनुसार ये 'नापसंद व्यवस्थाओं को बदलने के लिए' व्यग्र हैं। हल न प्रस्तुत कर सके तो भी 'उन पर प्रश्न चिह्न लगाकर बेसुध लोगों का ध्यान आकर्षित करना' ये अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

अकविता

'अकविता' का सूत्रधार डॉ0 श्याम परमार को माना गया है, परंतु जगदीश चतुर्वेदी भी उनके साथ बराबर के भागीदार थे और 'अकविता' के आरंभिक प्रस्तावकों में थे। वस्तुतः 'अकविता' पत्रिका के तीन संपादक थे-- जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार और रवींद्रनाथ त्यागी। 'अकविता' पत्रिका में अकविता के समर्थन में सैद्धांतिक लेख प्रायः नहीं छापे जाते थे। उन लोगों की मान्यता थी की 'बात बोलेगी हम नहीं'। परंतु, डॉ0 श्याम परमार ने अकविता के समर्थन में 'अकविता और कला-सन्दर्भ' शीर्षक से बाकायदा पुस्तक भी लिखी, जिसमें बहुविध अकविता को परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया। जगदीश चतुर्वेदी इस वर्ग के कवियों के द्वारा बौद्धिक स्तर पर जीये गये जीवन की एकांगिता, विसंगति तथा कचोट को सप्राण अभिव्यक्ति प्रदान करने की सचेतनता के कारण तथा काव्य की पुरातन परंपरा से पृथकता के कारण इस काव्य को 'अभिनव काव्य' की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि 'उन्हें 'एंटी-काव्य' के सार्थ-वाहकों के रूप में परिगणित किया जा सकता है।' परन्तु श्याम परमार अकविता को एंटी कविता या कविता विरोधी नहीं मानते। वे अकविता को 'अंतर्विरोधों की अन्वेषक कविता' मानते हैं। उनके अनुसार इस काव्यांदोलन की विशेषता इस तथ्य में हैं

कि 'कवियों की प्रवृत्तियाँ अलग-अलग मन:स्थितियों से जुड़ी हैं।' 'अकविता कालधर्मी कविता है। वह सीमित समय की कविता होगी, क्योंकि उसे भविष्य में झंडे नहीं गाड़ना होगा।' तथा 'अकविता में अभिव्यक्ति के अनेक स्तर संभव हैं। भाषा और कथ्य में वह प्रतिबद्ध नहीं है, इसलिए 'फ्लेक्जीबल' है। उसमें जटिल और 'टिप्सी' प्रक्रियाएँ हैं-- सीधी और टूटी बातें हैं।' अकविता के प्रवक्ता कवि ने यह भी उल्लेख किया हैं कि 'अकविता के लिए नयी कविता या नवगीत विरोध योग्य नहीं हैं। आन्दोलन वृत्ति के लोग व्यर्थ ही इसे गुट या षड्यंत्र की संज्ञा देते हैं।'

अकविता के आंदोलन को भी बीटनिक आन्दोलन के साथ जुड़े होने का आरोप लगाया गया। परंतु, इसके प्रस्तावकों जगदीश चतुर्वेदी एवं श्याम परमार ने बीटनिकों के व्यवहार को स्पष्टत: निन्दनीय बताया तथा उससे 'अकविता' के जुड़ाव से बिल्कुल इनकार किया।

सन् 1965 से 67 तक निकलने वाली 'अकविता' पत्रिका के प्रस्तावकों में गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, भारत भूषण अग्रवाल, विमल और अतुल आदि के नाम भी सामने आये थे। इस संदर्भ में सौमित्र मोहन तथा मुद्राराक्षस की रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं।

बीट कविता

अमेरिकी बीटनिक प्रभाव के कारण डॉ0 प्रभाकर माचवे, बांग्ला प्रभाव के कारण राजकमल चौधरी (भूखी पीढ़ी का प्रभाव) तथा गिन्सवर्ग के प्रभाव के कारण त्रिलोचन और शमशेर बहादुर सिंह ने भी बीट कविता से अपने आप को संबद्ध किया था। 'कृति' और 'अभिव्यक्ति' नामक पत्रिकाओं में माचवे जी ने अपनी धारणा को घोषित भी किया। इलाहाबाद से प्रकाशित 'विद्रोही पीढ़ी' के कवियों पर भी अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रभाव दिखा।

ताजी कविता

'ताजी कविता' के प्रवर्तक लक्ष्मीकांत वर्मा थे। वर्मा जी पहले 'नयी कविता' के बड़े समर्थकों में से थे। उन्होंने नयी कविता के सैद्धांतिक विश्लेषण से संबंधित पहली महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी थी 'नयी कविता के प्रतिमान'। परंतु, बाद में मान्यता बदलने पर वे 'ताजी कविता' के प्रवर्तक बने। उन्होंने 'ताजी कविता' का आंदोलन इसलिए चलाया कि नयी कविता में अब कुछ 'नयापन'

भी शेष न रह गया था और वह एक खास रूप में प्रतिष्ठित भी हो चुकी थी। वर्मा जी का यह भी कहना था कि 'नयी कविता का अधिकांश परोक्ष रूप से नाभिनाल द्वारा छायावाद से जीवनशक्ति लेता रहा था।' हालाँकि 'ताजी कविता' का यह आंदोलन भी आगे चल नहीं सका। जुलाई 1965 तक में ही वर्मा जी का साथ निभाने वाला कोई एक कवि या लेखक भी सामने नहीं आया और 'बिना किसी शोर-गुल के, 'ताजी कविता' के ताजिए अपने आप दफ्न हो गये।'

प्रतिबद्ध कविता

प्रतिबद्ध कविता के साथ डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव का नाम जुड़ा हुआ है। डॉ0 श्रीवास्तव की धारणा है– 'मैं मानता हूँ कि कविता के सामने इसके सिवाय दूसरा विकल्प नहीं हैं कि वह आज की संपूर्ण मानवनियति का साक्षात्कार करे और पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा प्रेरित अमानवीकरण के विरुद्ध संघर्ष करे।' तथा 'प्रतिबद्ध कविता के दायरे में 'भाषा' एक महत्त्वपूर्ण अस्त्र है-- उपर्युक्त संघर्ष का।' डॉ0 श्रीवास्तव ने संघर्ष के स्वरूप को भी आगे परिभाषित किया है-- 'प्रतिबद्ध कविता में संघर्ष सीधा और सार्थक शब्द है-- उसका कोई छद्मवेश नहीं है-- जो लोग किसी किस्म की प्रतिबद्धता को स्वीकार नहीं करते वे झूठा संघर्ष रचते हैं और उस में मजा लेते हैं।

इस प्रकार यह आंदोलन आधुनिकतावाद अथवा अराजकता से दूर व्यवस्था का ही आंदोलन था और मार्क्सवाद का ही एक रूप था। इसके पीछे एक विचारधारा, एक राजनीतिक दृष्टि थी।

सहज कविता

सहज कविता का सूत्रधार डॉ0 रवीन्द्र भ्रमर को माना गया है। इस आंदोलन का भी आधुनिकतावाद या अराजकता से दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं था। इसके समर्थकों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, अज्ञेय, दिनकर, डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 देवराज, डॉ0 इन्द्रनाथ मदान, डॉ0 प्रभाकर माचवे और रामदरश मिश्र के नाम शामिल थे। डॉ0 श्याम परमार तथा राजकमल चौधरी ने भी इसे समर्थन दिया था। मार्च 1967 में सहज कविता की विज्ञप्ति प्रकाशित हुई। विज्ञप्ति के कुछ अंश इस प्रकार हैं-- 'सन् '60 के बाद एक वर्ग में मैनरिज्म का क्राफ्टमैनशिप को ही मूल लक्ष्य माना और हिन्दी कविता कुल मिलाकर टेढ़ी रेखाओं के व्यापार के रूप में सामने आयी। इसीलिए वह फैशन

रही है और बहुत अर्थपूर्ण भी नहीं...।' अतः यह कविता का लक्ष्य 'नये सिरे से कविता की खोज करना' है। डॉ0 परमानंद श्रीवास्तव, राजेंद्र प्रसाद सिंह, डॉ0 कुमार विमल, श्रीकांत जोशी, डॉ0 श्यामसुंदर घोष, डॉ0 विश्वंभरनाथ उपाध्याय, डॉ0 गणपतिचन्द्र गुप्त तथा शिवप्रताप सिंह ने 1968 ई0 में प्रकाशित 'सहज कविता' नामक संग्रह के अपने लेखों में सहज कविता का समर्थन किया। डॉ0 रवीन्द्र भ्रमर ने अपने लेख में सहज कविता को इस प्रकार परिभाषित किया-- 'प्रस्तुत संदर्भ में 'सहज' शब्द का व्युत्पत्तिमूल्क अर्थ लेना होगा 'सह जायते इति सहजः।' अर्थात् जो रचना यथार्थ अनुभूति संवेग के साथ वाणी के मूर्त माध्यम में जन्म लेती है, वह सहज है। इस दृष्टि से अनुभूति की प्रामाणिकता प्राथमिक वस्तु है। अनुभूति प्रत्यक्ष तथा प्रामाणिक हुई तो अभिव्यक्ति अकृत्रिम और अजटिल होगी।' तथा 'सहज की माँग व्यष्टिमूलक होते हुए भी समाजसापेक्ष है।' डॉ0 भ्रमर ने प्रतिबद्धता के प्रश्न को भी सहज कविता के साथ संबद्ध करके देखा है– 'अपने युग के जीवन और सर्जनात्मक दायित्व से सहज कविता पूरी तरह प्रतिबद्ध है। उसके मूल में सहज संपूर्ण जीवन की प्रतीति और सहज सुगठित शिल्प के माध्यम की खोज का एक ईमानदार प्रयत्न निहित है।'

नवगीत

नवगीत का नाम फरवरी 1958 में मुजफ्फरपुर से प्रकाशित 'गीतांगिनी' नामक पत्रिका में दिखाई दिया। इस पत्रिका में कुछ नवगीत भी संकलित थे। कुछ लेखक नवगीत का विकास नयी कविता के ही समानांतर मानते हैं और उसे नयी कविता की एक विशेष शैली मानते हैं। 'नवगीत' का प्रथम समवेत संकलन 'कविता' 1964 में ओम प्रभाकर के संपादन में प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही डॉ0 रवींद्र भ्रमर, रामदरश मिश्र तथा डॉ0 रमेश कुंतल मेघ नवगीत के प्रवक्ताओं के रूप में सामने आये। इस संकलन में निराला से लेकर नयी पीढ़ी तक के अनेक गीतकारों के गीत संकलित थे। नवगीत का यह आंदोलन अन्य साठोत्तरी क्षणजीवी आंदोलनों से बिल्कुल भिन्न रहा। न तो इसे अराजकता आदि से कोई लेना-देना था और न ही वैसी शॉक आदि देने की कोई प्रवृत्ति। यह विधा अपने आप को स्थापित कर चुकी है।

धूमिल का योगदान

हिंदी साहित्य की साठोत्तरी कविता के शलाका पुरुष स्व. सुदामा प्रसाद पाण्डेय धूमिल अपने बागी तेवर व समग्र उष्मा के सहारे संबोधन की मुद्रा में

ललकारते दिखते हैं। तत्कालीन परिवेश में अनेक काव्यान्दोलनों का दौर सक्रिय था, परंतु वे किसी के सुर में सुर मिलाने के कायल न थे। उन्होंने तमाम ठगे हुए लोगों को जुबान दी। कालांतर में यही बुलन्द व खनकदार आवाज का कवि जन-जन की जुबान पर छा गया।

9 नवंबर 1936 को बनारस के खेवली गांव में जन्मे सुदामा पाण्डेय की प्रारंभिक शिक्षा गांव की प्राथमिक पाठशाला में हुई। हरहुआ के कूर्मि क्षत्रिय इण्टर कालेज से सन् 1953 ई. में हाईस्कूल की परीक्षा पास की। आगे की पढ़ाई के लिए बनारस गये तो, मगर अर्थाभाव के चलते उसे जारी न रख सके। फिर क्या, आजीविका की तलाश में वे काशी से कलकत्ता तक भटकते रहे। नौकरी भी मिली तो लाभ कम, मानसिक यंत्रणा उन पर ज्यादा भारी पडी। वर्षों का सिरदर्द अंततः ब्रेनट्यूमर बनकर मात्र उनतालिस वर्ष की अल्पायु में ही, उनकी मृत्यु का कारण बना।

सबसे पहली रचना धूमिल ने कक्षा 7 में पढ़ते हुई की। इनकी प्रारंभिक रचनाएं गीत के रूप में मिलती हैं-बांसुरी जल गयी इनके फुटकर व शुरुआती गीतों का संग्रह है, जो आज उपलब्ध नहीं है। उनकी दो कहानियां फिर भी वह जिंदा हैं और कुसुम दीदी, उनकी मृत्युपरांत 1984 में प्रकाशित हुई। वैसे उनकी अक्षय कीर्ति की आधार बना संसद से सड़क तक नामक कविता संग्रह, जो सन् 1971 में प्रकाश में आया।

भय, भूख, अकाल, सत्तालोलुपता, अकर्मण्यता और अन्तहीन भटकाव को रेखांकित करती, आक्रामकता से भरपूर इस संग्रह की सभी कविताएं अपने में बेजोड़ हैं। पच्चीस कविताओं के इस संग्रह में लगभग सभी रचनाएं तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक परिदृश्य का भी गहराई से परिचय कराती हैं। इस संदर्भ में कवि की समूची राजनैतिक समझ प्रखरता से उभरती है क्योंकि उनकी कविताओं में देहात और शहर, कविकर्म और राजनीति, आस्था और अनास्था, सामाजिकता और असामाजिकता, अहिंसा-हिंसा, ईमानदारी और बेईमानी, जिजीविषा और निराशा आदि प्रायः सभी मानव जीवन से सभ्य-असभ्य अंगों का चित्रण हुआ है। ये सभी चित्रण ठोस सामाजिक यथार्थ के दुर्लभ दस्तावेज हैं। इन कविताओं को पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता हैं कि मानो कवि हाथ पकडकर कह रहा है- लो, यह रहा तुम्हारा चेहरा, यह जुलूस के पीछे गिर पड़ा था। (संसद से सडक तक, पृष्ठ 10)

अकाल दर्शन शीर्षक कविता में कवि प्रश्न करता है- भूख कौन उपजाता है? चतुर आदमी जवाब दिए बगैर बेतहाशा बढ़ती आबादी की ओर इशारा करता है। कवि इस कविता के मार्फत उन लोगों को तलाशता है, जो देश के जंगल में भेड़िये की तरह लोगों को खा रहे हैं और शोषित उन्हीं की जय-जयकार करने में जुटे हैं। एक-दूसरी जोरदार कविता मित्र कवि राजकमल चौधरी के लिए लिख देश का नग्न यथार्थ प्रस्तुत किया है। धूमिल ने राजकमल की हिम्मत के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त करते हुए लिखा है- वह एक ऐसा आदमी था जिसका मरना कविता से बाहर नहीं है। (वहीं, पृष्ठ 73)

इस कृति की सर्वाधिक चर्चित व असरदार रचना मोचीराम है। इस कविता को धूमिल की प्रतिनिधि कविता माना जाता है। जनपक्षधरता के हिमायती कवि ने प्रतीक व बिम्बों के माध्यम से इसे जन-जन से जोड़ा है- मेरी निगाह में न कोई छोटा है 'न कोई बडा है'.. (वहीं, पृष्ठ 36) मोचीराम के भीतर एक सजग समाजवेत्ता बैठा है, जो महसूस करता हैं कि जीने के पीछे एक सार्थक उद्देश्य व तर्क तो होना ही चाहिए। वह जिंदगी को किताबों से नापने का कायल नहीं है।

भाषा की रात भी इस संग्रह की एक प्रखर कविता है। इसमें कवि उन चतुर लोगों को अपना निशाना बनाता है, जो तलवार को कलम के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इनकी उदारता में अवसरवाद की गंध है। इसी बहाने वे पूर्व एवं दक्षिण में भाषाई स्तर पर पड़ी दरार को भी उद्घाटित करते हैं- चंद चालाक लोगों ने.. बहस के लिए, भूख की जगह, भाषा को रख दिया है। (वहीं, 98 पृष्ठ)

धूमिल की अधिकांश कविताओं में कुछ ऐसे शब्द हैं, जो अक्सर मिल जाते हैं, जैसे- जंगल, भूख, विदेशी मुद्रा, अमीन, लाल-हरी झण्डियां, फाइलें, विज्ञापन, वारण्ट आदि। ये सीधे तौर पर कवि के राजनीतिक-सामाजिक विमर्श की ओर संकेत करते हैं।

धूमिल अपने परिवेश और जटिल परिस्थितियों के प्रति अत्यन्त सक्रिय हैं। वे कविता के शाश्वत मूल्यों की तलाश करते हैं। वे भाषा, मुहावरों व उक्तियों की सीमाओं से टकराते नजर आते हैं, ताकि कुछ नया दे सकें। इस दृष्टि से वे महत्वपूर्ण हैं कि उन्होंने अपने दौर की कविता को भीड़ से निकाल जनतांत्रिक बनाया। उसका रुख ही बदल दिया। जनतंत्र का सूर्योदय, मुनासिब कार्यवाई, बारिश में भीगकर और सर्वाधिक लम्बी कविता पटकथा इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनाएं हैं।

कल सुनना मुझे सन् 77 में धूमिल के मृत्योपरान्त प्रकाश में आया दूसरा और सशक्त काव्यसंग्रह है। वे हमेशा आत्मसम्मोहन और लेखकीय दादागीरी के खिलाफ रहे। किसी भी कविता को वे पहले सूक्तियों में लिखते थे। असल में बहुत ही अव्यवस्थित और बिखरा-बिखरा उनका कवि कर्म उन्हें अन्य साहित्यकारों से अलग करता है।

इसकी पृष्ठभूमि में उनका गंवई जीवन था। वे घर-घर की समस्याओं, मुकदमेबाजी, पारिवारिक असंगतियों, अंधविश्वास और पिछड़ेपन का दंश झेलते हुए कविता-रचना के लिए समय निकाल उसी ऊब, उसी हताशा को रेखांकित करते हैं- मेरे गांव में, वहीं आलस्य, वहीं ऊब, वहीं कलह, वहीं तटस्थता, हर जगह और हर रोज..

(कल सुनना मुझे, पृष्ठ 76)

वे शहर की चतुराई, बेहयाई, छल प्रपंच से परिचित हैं। पूंजीवादी बाजार व्यवस्था को वे अकेले चुनौती देते हैं। वे पहले ऐसे कवि हैं, जो आत्महीनता के खिलाफ, पूरे आत्मविश्वास के साथ, कविता के द्वारा जरूरी हस्तक्षेप करते हैं। उनकी कविता जिंदगी के ताप से भरती चलती है और ठहरे हुए आदमी को हरकत में लाकर ही दम लेती है।

सन् 1984 में धूमिल की तीसरी और अंतिम अनूठी काव्यकृति सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र आने पर पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुकी थी। यह संग्रह तत्कालीन साम्राज्यवादी ताकतों को बेनकाब करती है। कवि एक ठोस सैद्धांतिक धरातल पर खड़ा होकर अव्यवस्था और अमानवीयता के प्रति मुखर हो उठता है। इस अव्यवस्था की जड़ों को उखाड़ फेंकने के लिए वह विचारधारा के माध्यम से संघर्ष करता है-

न मैं पेट हूं, न दिवार हूं, न पीठ हूं, अब मैं विचार हूं (सुदामा प्र. पाण्डेय का प्रजातंत्र, पृ. 43)

कवि तमाम तरह की विद्रूपताओं को खुलकर कहता और लिखता है। इसीलिए उन पर आरोप हैं कि विशेष रूप से नारी के प्रति वितृष्णा से भरा है। ध्यान रहे- यह उनकी सभी कविताओं के साथ जोड़कर न देखें तो न्याय होगा। मां और पत्नी के प्रति उनका आत्मीय संबंध लाजवाब है। सच तो यह हैं कि अतिशय यथार्थ सामने रखकर उन बातों से अश्लीलता के प्रति वितृष्णा पैदा करने की कोशिश भर की है।

इस संबंध में आचार्य प्रवर स्व. विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं- धूमिल के काव्य में काम नहीं है बल्कि कामुकता के प्रति गहरी वितृष्णा है। वह पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की तरह गरिमा के लिए ही कुछ तीखा होना चाहता है। धूमिल के काव्य की जांच इसलिए धूमिल की वास्तविक चिंता की दृष्टि से की जानी शेष है, भाषा के तेवर की, विचार की तीक्ष्णता की चर्चा तो बहुत हो चुकी है।

कवि धूमिल का शिल्प-विधान और भाषा अपने समकालीन सरोकारों, गंवई सुगंध, ईमानदार व्यक्ति की बगैर लपछप की एक अनूठी झलक है। उनकी नजर में कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है। वे मानते हैं- एक सही कविता पहले एक सार्थक व्यक्तव्य होती है। यह भी सच है, कि वे भाषा का भ्रम तोड़ना चाहते हैं। वे जनता की यातना और दुख से उभरी तेजस्वी भाषा में कविताई करना पसंद करते हैं। वे कहते हैं- आज महत्व शिल्प का नहीं, कथ्य का है, सवाल यह नहीं कि आपने किस तरह कहा है, सवाल यह हैं कि आपने क्या कहा है। (कविता पर एक वक्तव्य-धूमिल, नया प्रतीक- 78 पृष्ठ 5)

धूमिल की भाषा का संबोधनात्मक प्रयोग भी उन्हें तमाम समकालीन मुलम्मेदार व पाण्डित्य-प्रदर्शन-प्रिय कवियों से अलग व एक विशिष्ट पहचान देता है। उनकी कविता नये विम्ब विधान व नये संदर्भो में जनता के संघर्ष के स्वर में स्वर मिलाती है। इस दृष्टि से उनकी काव्यभाषा सामाजिक संरचना के औचित्य को चुनौती देती है। उनके काव्य बिंब अपने परवर्ती कवियों से पृथक हैं। वे अपनी प्रकृति और प्रस्तुति में अद्‌भुत हैं-धूप मां की गोद सी गर्म थी। कहकर कवि मां की महिमा को सिर माथे स्वीकारता है। छंदविधान की दृष्टि से उनकी लगभग सभी कविताएं गद्यात्मक लय की ओर झुकी हुई हैं। कविता की एकरसता और लंबाई तोड़ने के उद्देश्य से वे पंक्तियों को छोटा-बड़ा करते हैं और तुकों द्वारा तालमेल एवं लय स्थापित करते हैं। हिंदी कविता को नए तेवर देने वाले इस जनकवि का योगदान चिरस्मरणीय है और रहेगा।

साठोत्तरी युवालेखन

नामवर सिंह को युवालेखन पसंद है। युवाओं को प्रोत्साहित करना उनके स्वभाव का सामान्य अंग है। लेकिन युवा संस्कृति को वे सरलीकरणों के जरिए व्याख्यायित करते हैं। युवाओं को सरलीकरणों के जरिए नहीं समझा जा सकता। युवाओं के साहित्य को परिवार, स्कूली शिक्षा के दर्शन, मासकल्चर और मासमीडिया के प्रभाव के बिना नहीं समझा जा सकता।

युवामन का सारा ताना-बाना परिवार और शिक्षा के मूल्यों से गुजरते हुए बनता है। इसको पूंजीवादी आग्रहों-पूर्वाग्रहों के जरिए गति मिलती है। वह एक व्यापक जटिल लोकतांत्रिक प्रक्रिया में समझ में आ सकता है। विद्रोही युवामन को फार्मूलों से नहीं समझा जा सकता। नामवरसिंह का एक महत्वपूर्ण लेख 'युवा लेखन पर बहसष्(1968) हमारे सामने है। यह युवा फार्मूलेबाजी के आधार पर लिखा गया आदर्श लेख है। नेट पर यह पाखी पत्रिका के नामवरसिंह विशेषांक में उपलब्ध है। यह लेख 1968 में लिखा गया। यानी नामवरसिंह उस समय युवा थे। इस लेख में नामवरसिंह ने कई महत्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान खींचा है। पहली मार्के की बात यह कहीं हैं कि 'बहुतों के लिए आज भी युवा पीढ़ी 'काल्पनिक' नहीं तो 'अमूर्त' अवश्य है।' लेकिन युवाओं के बारे में अमूर्तन तो इस लेख में भी है।

सवाल यह हैं कि यह अमूर्तबोध कहां से आता है ? यह अमूर्तबोध युवाओं के यथार्थजगत अज्ञान से पैदा होता। युवाओं के प्रति अमूर्तनता का गहरा संबंध बच्चे के प्रति पिता-माता के उपेक्षाभाव से है। यह उपेक्षाभाव हिन्दीभाषी परिवारों में बच्चे के प्रति बचपन से ही व्यक्त होना शुरू हो जाता है। जिस जमाने में नामवर सिंह ने यह लेख लिखा था उस समय हिन्दीभाषी समाज में बच्चों के प्रति उपेक्षा का भावबोध चरम पर था। आज भी है। हिन्दीभाषी परिवार बच्चे की देखभाल सही ढंग से नहीं करते। बच्चा रामभरोसे बड़ा होता है। घनघोर उपेक्षा और प्यार का अभाव हिन्दी युवा मानस को किस रूप में बनाता होगा इस ओर नामवर सिंह ने एकदम ध्यान नहीं खींचा है।

हमारे युवालेखकों की मनोदशाएं परिवार और स्कूली शिक्षा के ढांचे से गहरे प्रभावित हैं। युवामन कैसा होगा, यह फैसला इस आधार पर होगा कि परिवार और स्कूली शिक्षा का बच्चे के प्रति नजरिया क्या है ? जिन युवा विद्रोही लेखकों की नामवर सिंह ने विवेचना की है। आश्चर्य की बात है उनके विद्रोह के भावबोध में स्कूली शिक्षा और परिवार की भूमिका को नामवरसिंह एकदम भूल गए। क्या यह भूलना अनायास है ?

हमें यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि व्यक्तित्त्व निर्माण में परिवार और स्कूली शिक्षा की बड़ी भूमिका होती है। हिन्दी आलोचना की मुश्किल यह हैं कि वह कहानी से कहानी, कविता से कविता की ओर विचरण करती है। नामवर सिंह की समूची सैद्धांतिकी रूपवादी है। वह एक विद्रोहीभाव से दूसरे विद्रोही भाव की ओर विचरण करती है। उसमें युवाओं के बारे में सरलीकरण

और पापुलिज्म एक साथ चले आया है। युवाओं की पीठ थपथपाकर, प्रशंसा करके या महज उनके लिखे के आधार पर नहीं समझा जा सकता। युवा के मन की संरचनाओं का परिवार और स्कूली शिक्षा के ताने-बाने और मूल्यबोध के साथ गहरा संबंध है।

किसी भी लेखक को जानने के लिए बचपन बहुत बड़ा आईना है। बागी लेखक उन्हीं परिवारों में जन्म लेते हैं, जहां बच्चे उपेक्षा के शिकार हैं या जहां पर शिक्षा से बच्चे को मानसिक संतोष और सुख नहीं मिलता। शिक्षा जब अशांत रखती है तो बागी भावबोध पैदा होने की संभावनाएं ज्यादा होती हैं। अत:प्रत्येक कवि की अलग- अलग विवेचना की जानी चाहिए। इस मामले में सरलीकरण से काम नहीं लेना चाहिए।

हमारी स्कूली शिक्षा बच्चों को स्मार्ट कम और भोंदू ज्यादा बनाती है। साठोत्तरी दौर के लेखकों की स्कूली शिक्षा पर ध्यान दें, उस जमाने में शिक्षा में हुनर नहीं सिखाया जाता था। सत्तर के बाद के वर्षों में हुनर की शिक्षा का तंत्र व्यापक पैमाने पर सामने आता है। विभिन्न लेखक अलग-अलग पृष्ठभूमि से आए हैं, इसका उनकी भाषा, विचार, आचार-संहिता आदि पर भी असर पड़ा।

मध्यवर्गीय परिवार और गरीब परिवार के बच्चे की मनोदशा एक जैसी नहीं होती। इनका व्यक्तित्त्व विकास भी भिन्न ढंग से होता है। प्रत्येक बच्चा अपने साथ परिवार के सांस्कृतिक वातावरण से बनता है। यदि एक जैसी पृष्ठभूमि से दो लेखक आ रहे हैं तो उनकी व्यक्तिगत क्षमताएं और सर्जनात्मकता तय करेगी कि कौन किससे बेहतर है, कितनी लंबी रेस का घोड़ा है।

हमारी स्कूली शिक्षा छोटे-बड़े, अमीर-गरीब के भेद को बच्चों के जेहन में बिठाती है। वर्गीय पूर्वाग्रहों और वर्गीय प्रवृत्तियों को जीवन का अंग बनाती है। कुलीन, खेतमजदूर, किसान, ज्ञानी, अज्ञानी आदि में विभाजित करके देखने की बुद्धि देती है। बच्चों में आरंभ से ही अहंकारबोध पैदा किया जाता है।स्कूली शिक्षा में संघर्षभावना का एकसिरे अभाव है। गरीब और निम्नमध्यवर्ग के बच्चों को हमेशा सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया जाता है। इस सहिष्णुता से वास्तव जिंदगी का कोई मेल नहीं है।

हमारी स्कूली शिक्षा बच्चे में प्रश्नाकुलता पैदा नहीं करती। वह बच्चों को अधीनता और आलोचनारहित भावना की शिक्षा देती है। स्कूलों में इतिहास के नाम पर छद्म-देशभक्ति का पाठ पढ़ाया जाता है। लोकतंत्र का पाठ कम उपयोगितावाद का पाठ ज्यादा पढ़ाया जाता है। देश को देने की बजाय पाने की

भावना पैदा की जाती है। यही वह परिवेश है, जो हिन्दी लेखक के मनोजगत को मथता रहा है।

लोकतंत्र हमेशा बच्चों की शिक्षा में उपदेशधर्मी भाव से पढ़ाया जाता है। निषेध एक स्थायी भाव है। यह करो और यह न करो। बच्चे के मन में आरंभ से एक ही शिक्षा दी जाती हैं कि वह अधीन है। कहा जाता है वह माता-पिता के अधीन है, शिक्षक के अधीन है। अधीन भावबोध को पैदा करने में स्कूली मास्टर का अनुशासन सबसे बड़ा स्रोत है। बच्चे को कोई ऐसी चीज करने नहीं दी जाती जो वह करना चाहता है, क्योंकि वह अधीन है।

असल में बच्चा ऐसी सामग्री है, जिसके जरिए राज्य अपने काम पूरे करेगा और उसे लूटेगा। यही वह स्कूली शिक्षा का पुराना परिवेश है, जिसमें साठोत्तरी युवालेखन पैदा हुआ है। साठोत्तरी युवा लेखकों में अधिकतर गैर-अभिजन पृष्ठभूमि से आए थे। उनके अंदर जो आक्रोश था वह देशज शैक्षणिक और पारिवारिक अंतर्विरोधों की देन था।

नामवर सिंह के अनुसार 'कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रायः हर दशक बाद साहित्यों में एक नयी पीढ़ी का उदय होता है। युवा-सुलभ विद्रोह भर पीढ़ी में दिखता है। विद्रोह के ये अंदाज भी उतने ही जाने-पहचाने हो चले हैं, जितने प्रतिरोध के प्रयास, जैसे परंपराद्रोह, विदेशी अनुकरण, असाहित्यिकता, असामाजिकता अश्लीलता आदि। आरोप-प्रत्यारोप का ढाँचा वहीं रहता है, मुहावरे अलबत्ता बदल जाते हैं। मजा उस ढाँचे को दुहराने में नहीं, नए मुहावरों में है, क्योंकि हर पीढ़ी के साथ साहित्य में जो कुछ नया आता है वह इन्हीं मुहावरों के सहारे समझा जा सकता है।'

'युवा लेखन के संदर्भ में इस्तेमाल किये जाने वाले विद्रोह, आक्रोश, अस्वीकृति, असहमति, आक्रामकता आदि अमूर्त भाव वाचक संज्ञाए इसी प्रकार के नये मुहावरे हैं। इतिहास में जिस प्रकार युवा पीढ़ी के साथ ये नये मुहावरे आए उनसे और कुछ नहीं तो इतना तो स्पष्ट हो ही जाता हैं कि सोचने समझने की दिशा में परिवर्तन हो रहा है।'

नामवर सिंह साठोत्तरी पीढ़ी को पुराने किस्म के वर्गीकरण में बाँधकर देखते हैं। वे पीढ़ियों का अंतर देखते हैं इसमें पुरानी पीढ़ी वह है, जो आजादी की जंग में तपकर आयी थी, नई पीढ़ी आजादी के बाद आई है। नामवर सिंह ने लिखा है, ''नाम' की तलाश से स्पष्ट हैं कि यह युवा पीढ़ी भी हर पीढ़ी की तरह अपनी भिन्नता और विशिष्टता के लिये आग्रहशील है। विभिन्नता का

आग्रह यदि पहले से अधिक है तो इसलिए कि इतिहास में उसकी स्थिति पहले की सभी पीढ़ियों से नितान्त भिन्न है यदि औरों का एक पाँव आजादी के पहले भारत में है तो युवा पीढ़ी ने एकदम आजादी के बाद के भारत में ही आँखें खोलीं। और मामूली मालूम होने वाला यह अंतर मानसिक गठन के स्तर पर बहुत बड़ा अन्तर डाल देता है। व्यक्ति के रूप में युवा लेखकों का मानस-संस्कार स्वातंत्योत्तर भारत में बना तो इतिहास के रूप में फैलने को मिला साठोत्तरी युग-परिवर्तन! व्यक्तित्त्व भी भिन्न, परिवेश भी भिन्न। परिवेश और व्यक्तित्त्व का यह विशिष्ट घात-प्रतिघात ही युवा लेखन की भिन्नता का आधार है।'

इस अमूर्त पीढ़ी भेद में सबसे मूल्यवान चीज है लोकतंत्र और स्वाधीनता का वातावरण। नामवर सिंह लोकतंत्र का उल्लेख नहीं करते। नयी पीढ़ी के पास लोकतंत्र का माहौल था। लोकतंत्र में मानसिक गठन एकदम भिन्न किस्म का होता है। लोकतंत्र अभिव्यक्ति, कार्य-व्यापार, साहित्य आदि में असंख्य विकल्प देता है। प्रतिवाद उसका अन्तर्ग्रथित हिस्सा है। लोकतंत्र में उनके लिए भी जगह है, जो उसे स्वीकारते हैं और उनके लिए भी जगह है, जो उसे अस्वीकार करते हैं। खासकर अल्पसंख्यकों को, जिनमें लेखक भी आता है, उसे लोकतंत्र इफरात में स्थान देता है। अभिव्यक्ति के अनंत चैनल और मीडियम प्रदान करता है।

भारत के लोकतंत्र का वातावरण पुराने साम्राज्यवादी शासन से एकदम भिन्न था। वहां पराएपन का माहौल था, इसलिए उस समय हर व्यक्ति देश खोज रहा था। अपने लिए जगह खोज रहा था। लोकतंत्र में यह माहौल बुनियादी तौर पर बदल जाता है। आजादी के भारत पुराने भारत से भिन्न रूप में सामने आता है। नया संविधान, नई आजादी, नई स्वाभिमान की भाषा, नए किस्म का औद्योगिक विकास और नए किस्म का कल्याणकारी पूंजीवादी राज्य, स्वतंत्र मीडिया और न्यायपालिका।

लोकतंत्र के माहौल ने सामाजिक जीवन में एक छलांग का काम किया है, व्यक्ति के विवेक और परिवेश को बुनियादी रूप से बदला है। साठोत्तरी प्रतिवादी साहित्यिक तेवर, लोकतंत्र के बदले माहौल के साथ युवालेखक की कशमकश की देन हैं। यह कशमकश कमोबेश उन लेखकों में भी है, जो बतर्ज नामवरजी पुरानी पीढ़ी के हैं। युवालेखकों ने नए बदले लोकतांत्रिक माहौल को जल्दी समझा और उसके साथ सामंजस्य बिठाया है बनिस्पत पुरानी पीढ़ी के।

लोकतंत्र और लोकतांत्रिक माहौल बुनियादी प्रस्थान बिंदु है साठोत्तरी साहित्य का। सारी मुठभेड़ें लोकतंत्र से हैं और लोकतंत्र के साथ एडजेस्टमेंट या

सामंजस्य-विरोध के आधार पर विकसित हुई हैं। साठोत्तरी साहित्य का प्रस्थान बिंदु लोकतंत्र है यह बात नामवरजी स्पष्ट ढंग से नहीं मानते बल्कि गोलमोल बातें कहते हैं। यहां वे पीढ़ियों का संघर्ष देखते हैं। लिखा है, 'यह व्यक्तिगत दुर्घटना नहीं बल्कि एक ऐतिहासिक अंतर है, जिसे स्वीकार किए बिना परिस्थिति को समझना असंभव है। इसी तरह साठोत्तरी युग-परिवर्तन को लेकर उलझना भी कठमुल्लापन है।'

नामवरसिंह ने साठोत्तरी साहित्य के प्रस्थान बिंदु का निर्धारण करते हुए लिखा है, 'युवा लेखक के मिजाज को समझने का एक तरीका यह हो सकता हैं कि उसमें सम्मूर्तित आदमी की ठोस तस्वीर से शुरू किया जाय, जैसे कुछ लोगों ने 'लघु मानव' के द्वारा 'नयी कविता' को परिभाषित करने का प्रयास किया। इस दृष्टि से इतना तो तुरन्त कहा जा सकता हैं कि युवा लेखन उस 'लघु मानव' का साहित्य नहीं है। केदारनाथ सिंह ने इस दिशा में एक संकेत दिया हैं कि ''आज के कवि का 'मैं' एक वचन उत्तम पुरुष का 'मैं' न होकर 'हम' की तरह अमूर्त और व्यापक हो गया है। और ऐसा किसी बड़े आदर्श के प्रति आग्रह के कारण नहीं, बल्कि अमानवीयकरण की एक बृहत्तर प्रक्रिया के अंतर्गत अपने आप और बहुत कुछ कवि के अनजान में ही हो गया है।'' कहानियों में यही 'मैं' व्याकरण की दृष्टि से उत्तम पुरुष एकवचन होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से प्राय: अन्य पुरुष एकवचन 'वह' के रूप में आता है। हर हालत में नियामक है अमानवीकरण की प्रक्रिया। 'महामानव', 'साधारण मानव' और 'लघु मानव' की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए चाहें तो इसे 'नगण्य मानव' भी कह सकते हैं। कविता हो या कहानी- अधिकांश युवा-लेखन में निहित मानव में गहरे स्तर पर अपनी नगण्यता का बोध बद्धमूल है। आत्मदया, असहायता, आक्रोश, जिज्ञासा, उदासीनता आदि सभी मन:स्थितियाँ इस नगण्यता से ही उत्पन्न और परिचालित होती है।'

असल में नयी पीढ़ी को आजादी मिलते ही लगा कि देश आजाद हुआ है तो अब तो सारी जिम्मेदारी राज्य उठाएगा। जबकि लोकतंत्र में राज्य कभी व्यक्ति का बोझ नहीं उठाता। बल्कि व्यक्ति को अपने जीवन को अपने आप तैयार करना होता है। कहीं न कहीं यह धारणा थी कि आजादी मिलते ही दूध-घी की नदियाँ बहने लगेंगी। राज्य संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करेगा। कला और साहित्य को फलने-फूलने का आधार प्रदान करेगा। इस काल्पनिक धारणा का लोकतंत्र के माहौल से कोई संबंध नहीं था। लोकतंत्र मनुष्य को संघर्ष के लिए

लंबे पंजे और तेज दांत प्रदान करता है। व्यक्ति को अपना व्यक्तित्त्व प्रतिस्पर्धी। पैना और धारदार बनाना होता है। लोकतंत्र में हर चीज अर्जित करनी होती है। यहां तक कि अपनी पहचान भी अर्जित करने के लिए संघर्ष करना होता है। लोकतंत्र में न तो शिक्षा अपने आप मिलती है, न नौकरी मिलती है और न मान-सम्मान मिलता है और न लेखक की पहचान ही अपने आप मिलती है। हर चीज पाने के लिए पहल और संघर्ष करनी होती है।

लोकतंत्र में कोई भी चीज खैरात में नहीं मिलती। लोकतांत्रिक हक या लोकतांत्रिक माहौल धर्मादा दान-पुण्य में भी नहीं मिलते। वे मात्र सदइच्छा या आशीर्वाद या काव्यलेखन से भी नहीं मिलते। उन्हें संघर्ष करके अर्जित करना पड़ता है। हिन्दी लेखकों की बड़ी संख्या इस तथ्य से उस समय तक अनभिज्ञ थी।

एक चीज और वह यह कि लोकतंत्र नारेबाजी या विचारधारा या आंदोलन मात्र से अर्जित नहीं होता आपको अपना निजी कौशल पेशेवराना ढंग से विकसित करना होता है। व्यक्तित्त्व को सजाना-संवारना होता है। व्यक्तित्त्व को सजाए-संवारे बिना और परजीविता को त्यागे बिना यदि कोई लोकतंत्र में पाना चाहता है तो उसे असफलता मिलने के चांस ज्यादा हैं।

दूसरी एक बड़ी आयरनी यह थी कि युवालेखकों में बुर्जुआ लोकतंत्र को व्यापक असंतोष था वे इसमें कोई भी सकारात्मक तत्त्व देख ही नहीं पा रहे थे। इस असंतोष के तीन प्रधान कारण हैं। पहला, लेखकों पर शीतयुद्धीय राजनीति के तहत समाजवादी विचारों का प्रभाव और दूसरा लोकतंत्र के अनुरूप निजी संसार को रूपान्तरित करने में असमर्थता, तीसरा, शार्टकट में हासिल करने का नजरिया। लोकतंत्र में कोई चीज शार्टकट से नहीं मिलती। लोकतंत्र शार्टकट नहीं है बल्कि एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में यदि आप अधीर हो जाएंगे तो गहरी निराशा, कुण्ठा, पराजयबोध आदि की भावना पैदा होगी। साठोत्तरी युवालेखकों में ये तीनों लक्षण मिलते हैं।

साठोत्तरी दौर के युवालेखन में नगण्यताबोध खूब है। नामवर सिंह ने लिखा है, 'नगण्यता का यह बोध युवा-लेखन के संदर्भ को देखते हुए बेमेल नहीं लगता। यह तथ्य हैं कि युवा पीढ़ी को न तो आजादी की लड़ाई में हिस्सा लेने का मौका मिला और न स्वाधीन भारत के निर्माण में योग देने की सुविधा ही मिली। अतीत से बाहर वर्तमान से बाहर और भविष्य तो अनिश्चित होने के कारण यों भी बाहर है। इस प्रकार युवा पीढ़ी इतिहास से 'बाहर' रही। बाहर मैं कर दिया गया हूँ,

भीतर पर भर दिया गया हूँ –निराला की यह पंक्ति जैसे आज के युवक की ओर से ही कहीं गई है। बाहर कर दिए जाने के कारण ही वह भीतर से भर दिया गया है। यही नहीं, बल्कि वह इतिहास के बाहर रहकर ही इतिहास में हिस्सा भी ले रहा है। इतिहास में वह बाहर से शरीक है। नितांत 'बाहरी' होने की यह मन:स्थिति युवा–लेखन के हर स्तर पर सक्रिय दिखाई पड़ती है। अपने–आपको 'फालतू पुर्जा' और बाकी साथियों को भी एक ही भाग के फालतू पुर्जों का ढेर समझना इसी बोध का सूचक है। जो 'अंदर' है और जो काम में लगे हैं उनकी नजर में यह स्थिति भले ही अजीब हो, लेकिन जिस राष्ट्र के निर्माण कार्य में भाग लेने से समूची जनता को बाहर रखा गया हो और जिसमें बेकार तो बेकार, राजकाज की मशीन में काम से लगे पुर्जे भी किसी स्पष्ट उद्देश्य के अभाव में अपने–आपको बेकार समझ रहे हों, यह मन:स्थिति अनपहचानी नहीं हो सकती।'

इस प्रसंग में पहली बात यह कि लोकतंत्र में देश–निर्माण का जज्बा पैदा करने में शासकवर्ग को सफलता तब तक नहीं मिलती जब तक वह शिक्षा की आधारभूत संरचनाएं तैयार न कर दे। साठोत्तरी दौर में जिस चीज ने तकलीफ पैदा की है और पुराने पिछड़े मानसिक सोच को बनाए रखा, वह है फैक्ट्री और उससे जुड़े तंत्र का विरोध। पंडित नेहरू ने आह्वान किया था नए भारत के लिए हमें ज्यादा से ज्यादा इंजीनियर, कुशल कारीगर और पेशेवर लोग चाहिए। उनकी नजर तकनीकी प्रगति पर थी। मुश्किल यहां पर हैं कि तकनीकी प्रगति का अर्थ हमने वैज्ञानिक प्रगति लगा लिया। बल्कि होता यह हैं कि तकनीकी प्रगति, वैज्ञानिक प्रगति का प्रतिवाद करती है। नेहरूयुग में जो शिक्षातंत्र खड़ा किया गया उसका लक्ष्य था बुर्जुआ सामाजिक प्रतिस्पर्धा के लिए जुझारू व्यक्ति तैयार करना। मसलन् जब एक बच्चे से पूछा गया कि आप पढ़ते क्यों हैं तो उसका जबाव होता हैं कि 'मैं विश्वविद्यालय में दाखिला ले सकूँ', 'विश्वविद्यालय में दाखिला किसलिए ?', 'ताकि आवश्यक पद पा सकूँ।' यानी शिक्षा को आसानी से पद पाने में मदद करनी चाहिए। यानी व्यक्ति इस या उस पद को पाने के लिए प्रयास करता रहता है। पद पाने के लिए शिक्षा की उपाधियों के तमगे हम अपने सीने पर लगाए घूमते रहते हैं. यह एक तरह से नागरिकचेतना से उलट चेतना है। भारत में शासकवर्ग ने एक ओर उपाधियों और पदों की भूख पैदा की तो दूसरी ओर ऐसे व्यक्ति का निर्माण किया जो नागरिकचेतना से शून्य है। इस प्रक्रिया में लोकतंत्र तो फला–फूला लेकिन बगैर लोकेतांत्रिक नागरिकचेतना के।

नामवर सिंह ने सही लिखा है, 'नगण्यता के इस बोध ने जागरूक युवक लेखक को नगण्य-से-नगण्य वस्तु और व्यक्ति को देख सकने की क्षमता दी है। यदि बारीक-से-बारीक ब्यौरे की दृष्टि से युवा लेखन समृद्धतर है तो इसी क्षमता के कारण। इसे यथार्थ-चित्रण और वस्तु-अंकन की दिशा में विकास कहा जाएगा। इस लेखन में गली-कूचे, खेत-खलिहान के मामूली आदमी अपनी सारी नगण्यता के साथ सजीव रूप में जिस प्रकार आए हैं वह इसी दृष्टि का परिणाम है। वैसे, ये प्रतिमाएँ पिछले प्रगतिशील दौर में भी दिखाई पड़ी थीं किन्तु इनके निर्माण में प्रायः 'दृष्टि' से ज्यादा 'कोण' उभर जाता था।'

'पहले के लेखक जहाँ सत्य की तलाश में सतह पर तैरने वाली वस्तुओं और घटनाओं को पार करके तल में डुबकी लगाते थे, युवा-लेखक तथाकथित सतही वस्तुओं और घटनाओं को ही सत्य की व्यंजकता में समर्थ मानते हैं। पूर्ववर्ती लेखकों के मानस में वेदान्त का मायावाद कुछ इस तरह बद्धमूल था कि उनके लिए 'तत्त्व तल से ही निकलता' था तथा सोनेवाली मछली निस्तल जल में ही रहती थी' और प्रयोग का 'मोती' लाने के लिए गोताखोर पनडुब्बी होने की आवश्यकता महसूस होती थी। इसके विपरीत युवा लेखक सतह पर सुलभ वस्तुओं को ही सत्य का वाचक मानता है और इस दृष्टि से युवा लेखन 'सुपरफिशलिटी' या 'सतहीपन' का सार्थक साहित्य है। कहने वाले इस आधार पर इसे एकदम सतही और 'सुपरफिशल' भी कह सकते हैं और ऐसी व्याख्या के लिए रोक कौन सकता है।'

'नगण्यता-बोध का प्रभाव युवा-लेखन की भाषा पर भी देखा जा सकता है। अनेक कृतियों में नगण्य -से -नगण्य शब्दों से सारी रचना का विधान किया गया है कभी-कभी शब्दों की उस नगण्यता को 'कृत्रिमता' की हद तक भी पहुँचा दिया जाता है—एक विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए। यह प्रवृत्ति कविता और कहानी दोनों क्षेत्रों में देखी जा सकती है। इसके साथ ही प्रभामंडित बड़े शब्दों से परहेज भी साफ है। निश्चय ही सर्वत्र ऐसा नहीं हो सका है, लेकिन जहाँ ऐसा हुआ है वहाँ नगण्य शब्दों के जरिए भी ऐसे भयावह वातावरण की सृष्टि कर दी गई है, जो बड़े-बड़े शब्दों के भी वश से बाहर है। छोटे-से-छोटे शब्द द्वारा बड़े-से-बड़ा विस्फोटक प्रभाव उत्पन्न करके युवा-लेखकों ने दिखला दिया कि साहित्य के अंदर भी परमाणु युग आ गया। कहते हैं कि युवा-लेखकों ने शब्द और अर्थ का संबंध तोड़ दिया। हुआ यह कि जिंदगी में जिन शब्दों का संबंध अपने अर्थ से टूट गया था और फिर भी उनके जुड़े होने

का ढोंग किया जाता था, उस ढोंग को इन लेखकों ने तोड़ दिया। उन्होंने कुछ पूर्ववर्ती लेखकों की तरह शब्द में नए अर्थ भरने के नाम पर मुलम्मा चढ़ाने का काम नहीं किया। इसी से भाषा में यथातथ्यता की भी प्रवृत्ति बढ़ी है, यहाँ तक कि तथ्य ही भाषा बन गया।'

साठोत्तरी लेखकों में सेक्स एक प्रमुख विषय है। नामवरजी ने सेक्स के चित्रण को लेखकों के इतिहास से पलायन और आदिम मनोभाव से जोड़ा है। लिखा है-'अपने इतिहास से बाहर रहने के कारण ही कुछ युवा-लेखकों में इतिहास से एकदम बाहर चले जाने की आकांक्षा दिखाई पड़ती है। संपूर्ण परंपरा को एकदम नकार देने के मूल में यही आकांक्षा है। उधर भविष्य का दरवाजा पहले ही से बंद है, इसीलिए इतिहास से बाहर जाने की चेष्टा अदबदाकर उन्हें 'आदिमपन' में ला छोड़ती है। जब इतिहास एक व्यर्थ का भार है और सभ्यता एक अभिशाप, तो आदिम अवस्था ही काम्य बच रहती है। इस आदिम मनोदशा में सारा संसार जंगल मामूल होता है और सारे आदमी पशु। कवि का मन ''चिड़ियों का व्याकरण'' सीखने के लिए बेचैन हो उठता है। इसी मनोदशा का एक रूप है ''अपनी जड़ों की खोज'', जिसका संकेत 'आरंभ'-2 के इस उद्धरण में देखा जा सकता है 'श्आज इस वक्त की कविता अपनी जड़ों की खोज की बेचैन कविता है।' इस दृष्टि से युवा-लेखन को 'मूलगामी' कहा जा सकता है। शायद हर नई शुरुआत के लिए एक बार जड़ों में जाने की जरूरत पड़ती है। इतिहास की अभीष्ट व्याख्या करने के लिए मार्क्स ने भी इतिहास से बाहर छलांग लगाई थी और प्रागैतिहासिक साम्यवादी समाज के मूल तत्त्वों की खोज की, इतिहास के बाहर एक बार अतीत की दिशा में तो दूसरी बार भविष्य की दिशा में किन्तु उनके पाँव बराबर इतिहास के अंदर वर्तमान की ठोस जमीन पर टिके रहे। 'आदिमपन' की दिशा में युवा-लेखन का मूलगामी प्रयास भी बहुत-कुछ वर्तमान का ही सृजनात्मक रूपांतर है और इससे सृजन के धरातल पर निश्चय ही नई संभावनाएँ व्यक्त हुई हैं।'

साठोत्तरी कवि की सेक्स अभिव्यक्तियां, सेक्सुअल अंग-प्रत्यंगों का अभिव्यक्ति के उपकरण के रूप में इस्तेमाल विभिन्न किस्म की व्याख्याओं की संभावनाएं पैदा करता है। इस प्रसंग में पहली बात कि यह सेक्स और कामुक अंगों और क्रीड़ाओं की ओर हिन्दी का लेखक पहली बार नहीं आया बल्कि पहले भी मध्यकाल में हिन्दी और संस्कृत में इसका विषय के रूप में खूब प्रयोग मिलता है।

सेक्स का सर्जना में सार्वजनिक प्रयोग एक ओर अवचेतन को अभिव्यक्त करता है। तो दूसरी ओर सामाजिक जीवन में ऐहिकतामूलक नजरिए को विस्तार देता है। इसे आज की भाषा में धर्मनिरपेक्ष नजरिया कहते हैं। मध्यकालीन शृंगार साहित्य की इसी ऐहिकतामूलक भूमिका की ओर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ध्यान खींचा है। सेक्स की ओर जाने का अर्थ है आदिम मन या आदिम गुफाओं में जाना नहीं है और न यह इतिहास से पलायन है। सेक्स की थीम रवीन्द्रनाथ टैगोर की सबसे प्रिय थीम थी। उन्होंने 60साल की उम्र के बाद कई हजार न्यूड चित्र बनाए और स्त्री के मांसल शरीर का सबसे सुंदर कलात्मक चित्रण किया।

सेक्स पर लिखने का अर्थ है स्त्री के शरीर को सार्वजनिक बहस के केन्द्र में लाना, उस पर पड़े हुए सामंती पर्दों को गिराना। सेक्स के प्रति अकुण्ठित भावबोध पैदा करना। सेक्स पर खुली बहस लोकतांत्रिक मनोभावों के पुष्ट होने का संकेत है। यह लोकतंत्र का बाइ-प्रोडक्ट है। सेक्स के चित्रण के बहाने युवालेखकों ने कविताओं में सेक्स का प्रसार नहीं किया। कविता या कलाओं में सेक्स जैसी कोई चीज नहीं होती।

सेक्स जब कविता या नाटक या चित्रकला में अपने को व्यक्त करता है तो वह सेक्स नहीं रह जाता। सेक्स का रूपान्तरण हो जाता है। नामवर सिंह की मुश्किल यह हैं कि सेक्स को एक विषय के रूप में यांत्रिकतौर पर देखते हैं। सेक्स के सर्जना के क्षेत्र में आने का एक अर्थ यह भी हैं कि परिवार, शादी, शारीरिक संबंध आदि को लेकर सामाजिक संस्कारों में बदलाव आ रहा है। सेक्स की थीम का प्रवेश सामाजिक एटीट्यूट में आ रहे बदलाव की सूचना है। यह इतिहास से पलायन नहीं है। बल्कि सेक्स के प्रति धर्मनिरपेक्ष-लोकतांत्रिक भावबोध की अभिव्यक्ति है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने यह काम पेंटिंग के जरिए किया, साठोत्तरी कवियों ने कविता के जरिए किया।

सेक्स का चित्रण प्रकारान्तर से कंजरवेटिव राजनीति को सीधे चुनौती देता है। उल्लेखनीय है सेक्स का चित्रण करने वाले अधिकांश युवालेखक धर्मनिरपेक्षता में आस्था रखने वाले थे।

नामवर सिंह का मानना है, सेक्स-चित्रण में अतिरिक्त रुचि इसी आदिम मनोदशा का दूसरा परिणाम है। 'एलिएनेशन' अथवा निर्वासन के परिणामों का वर्णन करते हुए मार्क्स ने लिखा हैं कि ''निर्वासन की स्थिति में जब तमाम सामाजिक और मानवीय संबंध व्यर्थ प्रतीत होने लगते हैं तो जो पाशव है वहीं मानवीय हो जाता है और मानवीय पाशव। इसलिए संभोग की शारीरिक क्रिया-जैसा 'पाशव' कर्म

एकमात्र ऐसा कर्म बच रहता है, जिसमें निर्वासित व्यक्ति अपने-आपको 'मानव' समझता है, अगर्चे स्तर गिरकर पशुता तक पहुँच जाता है।'' युवा-लेखन में जहाँ नग्न सेक्स-चित्रण दिखाई पड़ता है, उसका रहस्य यही है।'

इसका एक अन्य पहलू भी है, जिस पर ध्यान देने की जरूरत है। साठोत्तरी लेखक बड़े पैमाने पर सामाजिक-पारिवारिक संबंधों में आ रहे तनाव और टूटन को दर्ज करते हैं। वे सेक्स के चित्रण को आदिम जिज्ञासा या अलगाव के कारण नहीं उठाते। यदि ऐसा ही है तो साठोत्तरी लेखक को जितना सामाजिक अलगाव झेलना पड़ रहा था आज तो उससे कई गुना ज्यादा सामाजिक अलगाव है, जो लेखक से लेकर नागरिक सभी झेल रहे हैं। लेकिन सेक्सुअल विषयों पर कोई भी कविता नहीं लिख रहा और न कहानी या उपन्यास में सेक्स की बाढ़ आई है। सेक्स के विषय का सामाजिक अलगाव से कम और लोकतंत्र के विस्तार और सेक्स के ऊपर से पर्दा हटाने के सामंतवाद विरोधी भावबोध से ज्यादा संबंध है। जिस समाज में लोकतंत्र नए परिवेश को बनाने का प्रयास करेगा वहां पर सेक्स एक प्रमुख थीम बनेगा। लोकतंत्र में नए एटीट्यूट और नए कम्युनिकेशन के रूपों का जब भी प्रवेश होगा सेक्स प्रधान थीम बनेगा। कम्युनिकेशन की छटपटाहट और बेचैनी या अवरोध, सेक्स की थीम की ओर ठेलते हैं, फलतः नई कलात्मक ऊर्जा की बाढ़ आ जाती है।

हिन्दी में सेक्सुअल औपनिवेशिकता को तोड़ने में साठोत्तरी लेखकों की बड़ी भूमिका है। कायदे से यह काम काफी पहले होना था लेकिन, खैर, बाद में हुआ जो सही था। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से कामुक औपनिवेशिकता, दमनात्मक भावबोध और सीमित कामुक प्राथमिकताओं के प्रचलित टेबुओं को नष्ट करते हैं। यह सारी प्रक्रिया इतिहास से भागे हुए आदिम मनोभाव की देन नहीं है बल्कि लेखक की टेबुओं से लड़ने की मनोकांक्षा की अभिव्यक्ति है। वह सेक्स की थीम पर रचनाएं लिखकर शारीरिक औपनिवेशिकता से मुक्ति चाहता है। वे यह भी संदेश दे रहे हैं कि कामुकता नियंत्रण की चीज नहीं है।

साठोत्तरी सेक्सचित्रण को नैतिकता के आधार पर भी नहीं देखा जाना चाहिए। सेक्स में नैतिक-अनैतिक, श्लील-अश्लील की दीवारों को इन लेखकों ने नष्ट किया है। वे हिन्दी कविता में सेक्सक्रांति की पहली पीढ़ी के नायक हैं। वे अवसाद, हताशा या अलगाव के कारण सेक्स की ओर मुखातिब नहीं हुए बल्कि सेक्सचित्रण के माध्यम से बताना चाहते हैं कि सेक्स उनका लोकतांत्रिक हक है और यह सार्वजनिक विवाद-विमर्श का विषय है। पहले सेक्स अंदर की चीज था।

सार्वजनिक बहस का विषय नहीं था। यह समझ कामुक गुलामी के तानेबाने से जुड़ी है। साठोत्तरी लेखक एक ही झटके में इस ताने-बाने को तोड़ देते हैं। एक अन्य चीज जिसे नामवर सिंह से लेकर राजकमल चौधरी तक नोटिस ही नहीं लेते, वह यह कि कविता में सेक्स का मतलब यांत्रिक तौर पर सेक्स का रूपायन नहीं है। कविता में सेक्स की अभिव्यक्ति सेक्स को रूपान्तरित करती है।

कला में सेक्स का रूपायन सेक्स की नहीं, स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है। वहां सेक्स का स्वतंत्रता में रूपान्तरण होता है। नियंत्रणों का निषेध है। सेक्स की खुली अभिव्यक्ति को यांत्रिक रूप में देखेंगे तो गलत निष्कर्ष निकलने का खतरा है। ऐसा ही एक पत्र नामवरसिंह ने राजकमल चौधरी का अपने लेख में उद्धृत किया है। नामवर सिंह ने लिखा है 'खुले सेक्स-चित्रण के लिए 'बदनाम' राजकमल चौधरी ने इसी प्रकार के एक अन्य युवतर लेखक श्रीराम शुक्ल को 1. 7. 66 के पत्र में लिखा था ''स्त्री- शरीर बहुत स्वास्थ्यप्रद वस्तु है-लेकिन कविता के लिए नहीं, संभोग करने के लिए। कविता में स्त्री-शरीर अन्य सभी विषयों की तरह मात्र एक विषय है-कविता का कारण या कविता का प्रतिफल नहीं, मैं ऐसा ही मानता हूँ।... अब कविता के लिए हमारी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मान्यताएँ अधिक आवश्यक विषय हैं। स्त्री-शरीर को राजनीतिज्ञों, सेठों, बनियों और इनके प्रचारकों ने अपना हथियार बनाया है-हम लोगों को अपना क्रीतदास बनाए रखने के लिए। बेहतर हो, हम पत्रिकाओं के कवर पर छपी हुई, कैलेंडरों पर छपी हुई अधनंगी स्त्रियों और अपने पब्लिक सेक्टर और प्राइवेट सेक्टर के मालिकों के लिए हमारा ईमान, हमारा जेहन, हमारी ताकत खरीदकर हमें नपुंसक बनानेवाली अधनंगी स्त्रियों को अब अपने साहित्य में उसी प्रकार प्रश्रय नहीं दें, न आत्मरति के लिए और न पर-पीड़ा के लिए! मैं श्लील-अश्लील नहीं मानता हूँ, लेकिन हम कवि हैं, हमें न तो नपुंसक, और न स्त्री-अंगों का वकील बनना चाहिए।'' (युयुत्सा, अगस्त' 67, पृष्ठ 187-88)'

नामवर सिंह का यह भी मानना है, 'वैसे, सेक्स-नैतिकता के मामले में सामान्यत: आज के युवा लेखक पूर्ववर्ती पीढ़ियों की तुलना में अधिक वर्जना-मुक्त हैं। युवा -लेखकों के इस दावे में काफी सच्चाई हैं कि उनमें अपने पूर्वजों का-सा ढोंग नहीं है। औरों ने जो किया लेकिन कहाँ नहीं, उसे स्वीकार करने का साहस आज के युवक में है, क्योंकि वह ढोंग को अनैतिक कार्य-विशेष से भी अधिक अनैतिक मानता है। अतिरिक्त साहसिकता और आत्म-प्रदर्शन के बावजूद यह मानसिक खुलापन कुल मिलाकर साहित्य के लिए स्वास्थ्यप्रद है।'

सवाल उठता है साठोत्तरी कविता में तथाकथित रेडीकल भावबोध, सेक्सचित्रण के साथ या उसके बाद ही क्यों आया ? पहले कभी यह रेडीकल भावबोध व्यक्त क्यों नहीं हुआ। सेक्सचित्रण की सामान्य विशेषता है, जिसे नामवरसिंह पुराने लेखकों की तुलना में 'स्वास्थ्यप्रद' मानते हैं। यह 'स्वास्थ्यप्रद' मनोदशा निर्मित करने और बड़े सामाजिक-राजनीतिक सवालों की ओर ठेलने में सेक्सचित्रण की बड़ी भूमिका रही है।

सेक्स बुरी और खतरनाक चीज नहीं है। सेक्स पर लिखना और बात करना भी बुरा और खतरनाक नहीं है। सेक्स हिन्दी में टेबू था और उसे तोड़ने का अर्थ यह भी था कि स्त्री शरीर को सार्वजनिक बहस के केन्द्र में लाया जाए। स्त्री शरीर को केन्द्र में लाए बिना लोकतंत्र के बड़े कैनवास का विकास नहीं होता। कामुक औपनिवेशिकता वस्तुतः राजनीतिक औपनिवेशिकता का अंग है। 15 अगस्त 1947 को राजनीतिक औपनिवेशिकता से मुक्ति मिली लेकिन कामुक औपनिवेशिकता से साठोत्तरी साहित्य ने मुक्ति दिलाई। इस अर्थ में साठोत्तरी साहित्य दूसरी आजादी का साहित्य है।

एक अन्य पहलू ध्यान में रखें, स्त्री को चित्रित किए बिना महान रचनाओं का जन्म नहीं होता। कालिदास की कामुक कल्पनाएं और संभोग का चित्रण अभिज्ञान शाकुंतलम् और कुमारसंभव जैसी महान रचनाओं को जन्म देता है। संभोग के चित्रण के बिना कुमारसंभव लिखा नहीं जा सकता। शरीर और कामाग्नि की पीड़ा ने बिंदास वर्णन के बिना अभिज्ञान शाकुन्तम् में शकुन्तला का सौन्दर्य चरमोत्कर्ष पर नहीं पहुँचता।

साठोत्तरी युवालेखक सेक्स लेखक नहीं है, बल्कि प्रतिवादी लेखक है, यह ऐसा लेखक है, जिसके अंदर लोकतंत्र को लेकर विभ्रम है, जो लोकतंत्र को संशय की नजर से देखता है। लेकिन यह लेखक इस दौर में पैदा हुए राष्ट्रवाद, भाषायी उन्माद, अंधक्षेत्रीयतावाद, हिन्दीवाद से तकरीबन मुक्त है। वह देश की बृहत्तर समस्याओं को उठाता है, लेकिन उन्माद के सवालों से दूरी रखता है। उसकी भाषा और मुहावरे में एकदम ताजगी है और लोकतांत्रिक बेचैनी है। साठोत्तरी कवियों की जिन कविताओं में पूंजीवाद और लोकतंत्र विरोध की अनुगूंज सुनाई देती है वे कविताएं मूलतः लोकतांत्रिक भावबोध और स्वस्थ बुर्जुआ परिवेश की मांग करने वाली कविताएं हैं।

❐❐❐